क्ष्णु, शीङ्, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डीङ्, श्रिञ्, वृङ्, वृञ्—इन सबको छोड़कर शेष सभी अनुदात्त (अर्थात् अनिट्) माने गये हैं॥ ७७॥ शक्लृ, पच्, मुच्, रिच्, वच्, विच्, सिच्, प्रच्छ, त्यज्, निजिर्, भज्, भञ्ज्, भुज्, भ्रस्ज्, मस्ज्, यज्, युज्, रुज्, रञ्ज्, विजिर्, स्वञ्ज्, सञ्ज्, सृज्॥ ७८॥ अद्, क्षुद्, खिद्, छिद्, तुद्, नुद्, पद्, भिद्, विद् (सत्ता), विद् (विचारणे), शद्, सद्, स्विद्, स्कन्द्, हद्, क्रुध्, क्षुध्, बुध्॥ ७९॥ बन्ध्, युध्, रुध्, राध्, व्यध्, शुध्, साध्, सिध्, मन् (दिवादि), हन्, आप्, क्षिप्, क्षुप्, तप्, तिप्, स्तृप्, दृप्॥ ८०॥ लिप्, लुप्, वप्, शप्, स्वप्, सृप्, यभ्, रभ्, लभ्, गम्, नम्, यम्, रम्, क्रुश्, दंश्, दिश्, दृश्, मृश्, रिश्, रुश्, लिश्, विश्, स्पृश्, कृष्॥ ८१॥ त्विष्, तुष्, द्विष्, दुष्, पुष्, पिष्, विष्, शिष्, शुष्, श्लिष्, घस्, वस्, दह्, दिह्, दुह्, नह्, मिह्, रुह्, लिह् तथा वह्॥ ८२॥ ये हलन्तोंमें एक सौ दो धातु अनुदात्त माने गये हैं। 'च' आदिकी निपात संज्ञा होती है। 'प्र' आदि उपसर्ग 'गति' कहलाते हैं। भिन्न-भिन्न दिशा, देश और कालमें प्रकट हुए शब्द अनेक अर्थोंके बोधक होते हैं। विप्रवर! वे देश-कालके भेदसे सभी लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं। यहाँ गणपाठ, सूत्रपाठ, धातुपाठ तथा अनुनासिकपाठ—'पारायण' कहा गया है। नारद! वैदिक और लौकिक सभी शब्द नित्यसिद्ध हैं॥ ८३—८५॥ फिर वैयाकरणोंद्वारा जो शब्दोंका संग्रह किया जाता है, उसमें उन शब्दोंका पारायण ही मुख्य हेतु है (पारायण-जनित पुण्यलाभके लिये ही उनका संकलन होता है)। सिद्ध शब्दोंका ही प्रकृति, प्रत्यय, आदेश और आगम आदिके द्वारा लघुमार्गसे सम्यक् निरूपण किया जाता है। इस प्रकार तुमसे निरुक्तका यत्किंचित् ही वर्णन किया गया है। नारद! इसका पूर्णरूपसे वर्णन तो कोई भी कर ही नहीं सकता॥ ८६—८८॥ (पूर्वभाग द्वितीयपाद अध्याय ५३)

त्रिस्कन्ध ज्यौतिषके वर्णन-प्रसङ्गमें गणितविषयका प्रतिपादन

सनन्दन उवाच

ज्यौतिषाङ्गं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा।
यस्य विज्ञानमात्रेण धर्मसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ १॥
त्रिस्कन्धं ज्यौतिषं शास्त्रं चतुर्लक्षमुदाहृतम्।
गणितं जातकं विप्र संहितास्कन्धसंज्ञितम्॥ २॥
गणिते परिकर्माणि खगमध्यस्फुटक्रिये।
अनुयोगश्चन्द्रसूर्यग्रहणं चोदयास्तकम्॥ ३॥
छाया शृङ्गोन्नतियुती पातसाधनमीरितम्।

श्रीसनन्दनजी कहते हैं—देवर्षे! अब मैं ज्यौतिष नामक वेदाङ्गका वर्णन करूँगा, जिसका पूर्वकालमें साक्षात् ब्रह्माजीने उपदेश किया है तथा जिसके विज्ञानमात्रसे मनुष्योंके धर्मकी सिद्धि हो सकती है॥ १॥ ब्रह्मन्! ज्यौतिषशास्त्र चार लाख श्लोकोंका बताया गया है। उसके तीन[1] स्कन्ध हैं, जिनके नाम ये हैं—गणित (सिद्धान्त), जातक (होरा) और संहिता॥ २॥ गणितमें परिकर्म[2], ग्रहोंके मध्यम एवं स्पष्ट करनेकी रीतियाँ बतायी गयी हैं। इसके सिवा अनुयोग (देश, दिशा और कालका ज्ञान), चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, उदय, अस्त, छायाधिकार, चन्द्र-शृङ्गोन्नति[3], ग्रहयुति (ग्रहोंका योग) तथा पात (महापात-सूर्य-

१. किसी-किसीके मतसे ज्यौतिषके पाँच स्कन्ध हैं—सिद्धान्त, होरा, संहिता, स्वर और सामुद्रिक। सिद्धान्तको ही गणित कहते हैं। होराका ही दूसरा नाम जातक है।

२. योग, अन्तर, गुणन, भजन, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल—ये परिकर्म कहे गये हैं।

३. द्वितीयाको जो चन्द्रोदय होता है, उसमें कभी चन्द्रमाका दक्षिण सींग और कभी उत्तर सींग (नोक) ऊपरको उठा रहता है, उसीको 'चन्द्रशृङ्गोन्नति' कहा गया है। ज्यौतिषमें उसके परिणामका विचार किया गया है।

चन्द्रमाके क्रान्तिसाम्य)-का साधन-प्रकार कहा गया है ॥ ३$\frac{१}{२}$ ॥

जातके राशिभेदाश्च ग्रहयोनिवियोनिजे ॥ ४ ॥
निषेकजन्मारिष्टानि ह्यायुर्दायो दशाक्रमः ।
कर्माजीवं चाष्टवर्गो राजयोगाश्च नाभसाः ॥ ५ ॥
चन्द्रयोगाः प्रव्रज्याख्या राशिशीलं च दृक्फलम् ।
ग्रहभावफलं चैवाश्रययोगप्रकीर्णके ॥ ६ ॥
अनिष्टयोगाः स्त्रीजन्मफलं निर्याणमेव च ।
नष्टजन्मविधानं च तथा द्रेष्काणलक्षणम् ॥ ७ ॥

जातकस्कन्धमें राशिभेद, ग्रहयोनि, (ग्रहोंकी जाति, रूप और गुण आदि) वियोनिज (मानवेतर-जन्मफल), गर्भाधान, जन्म, अरिष्ट, आयुर्दाय, दशाक्रम, कर्माजीव (आजीविका), अष्टकवर्ग, राजयोग, नाभसयोग, चन्द्रयोग, प्रव्रज्यायोग, राशिशील, ग्रहदृष्टिफल, ग्रहोंके भावफल, आश्रययोग, प्रकीर्ण, अनिष्टयोग, स्त्रीजातक-फल, निर्याण (मृत्युविषयक विचार), नष्ट-जन्म-विधान (अज्ञात जन्म-कालको जाननेका प्रकार) तथा द्रेष्काणों[१]के स्वरूप—इन सब विषयोंका वर्णन है ॥ ४—७ ॥

संहिताशास्त्ररूपं च ग्रहचारोऽब्दलक्षणम् ।
तिथिवासरनक्षत्रयोगतिथ्यर्द्धसंज्ञकाः ॥ ८ ॥
मुहूर्तोपग्रहाः सूर्यसंक्रान्तिर्गोचरः क्रमात् ।
चन्द्रताराबलं चैव सर्वलग्नार्तवाह्वयः ॥ ९ ॥
आधानपुंससीमन्तजातनामान्नभुक्तयः ।
चौलं कर्णच्छिदा मौञ्जी क्षुरिकाबन्धनं तथा ॥ १० ॥
समावर्तनवैवाहप्रतिष्ठासद्मलक्षणम् ।
यात्रा प्रवेशनं सद्योवृष्टिः कर्मविलक्षणम् ॥ ११ ॥
उत्पत्तिलक्षणं चैव सर्वं संक्षेपतो ब्रुवे ।

अब संहितास्कन्धके स्वरूपका परिचय दिया जाता है। उसमें ग्रहचार (ग्रहोंकी गति), वर्षलक्षण, तिथि, दिन, नक्षत्र, योग, करण, मुहूर्त, उपग्रह, सूर्य-संक्रान्ति, ग्रहगोचर, चन्द्रमा और ताराका बल, सम्पूर्ण लग्नों तथा ऋतुदर्शनका विचार, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्न-प्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, उपनयन, मौञ्जीबन्धन (वेदारम्भ), क्षुरिकाबन्धन, समावर्तन, विवाह, प्रतिष्ठा, गृहलक्षण, यात्रा, गृहप्रवेश, तत्काल वृष्टिज्ञान, कर्मवैलक्षण्य तथा उत्पत्तिका लक्षण—इन सब विषयोंका संक्षेपसे वर्णन करूँगा ॥ ८—११$\frac{१}{२}$ ॥

एकं दश शतं चैव सहस्रायुतलक्षकम् ॥ १२ ॥
प्रयुतं कोटिसंज्ञा चार्बुदमब्जं च खर्वकम् ।
निखर्वं च महापद्मं शङ्कुर्जलधिरेव च ॥ १३ ॥
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च संज्ञा दशगुणोत्तराः ।
क्रमादुत्क्रमतो वापि योगः कार्योऽन्तरं तथा ॥ १४ ॥
हन्याद्गुणेन गुण्यं स्यात् तेनैवोपान्तिमादिकान् ।
शुद्धयेद्धरो यद्गुणश्च भाज्यान्त्यात् तत्फलं मुने ॥ १५ ॥

[अब गणितका प्रकरण प्रारम्भ किया जाता है—]

एक (इकाई), दश (दहाई), शत (सैकड़ा), सहस्र (हजार), अयुत (दस हजार), लक्ष (लाख), प्रयुत (दस लाख), कोटि (करोड़), अर्बुद (दस करोड़), अब्ज (अरब), खर्व (दस अरब), निखर्व (खर्व), महापद्म (दस खर्व), शङ्कु (नील), जलधि (दस नील), अन्त्य (पद्म), मध्य (दस पद्म), परार्ध (शङ्कु) इत्यादि संख्याबोधक संज्ञाएँ उत्तरोत्तर दसगुनी मानी गयी हैं। यथास्थानीय अङ्कोंका योग या अन्तर क्रम या व्युत्क्रमसे करना चाहिये[२] ॥ १२—१४ ॥

१. राशिके तृतीय भाग (१० अंश)-की 'द्रेष्काण' संज्ञा है।

२. यथा—२+५+३२+१९३+१८+१०+१००—इन्हें क्रम या व्युत्क्रम (इकाई या सैकड़ाकी ओर)-से जोड़ा जाय, समान स्थानीय अङ्कोंका परस्पर योग किया जाय—अर्थात् इकाईको इकाईके साथ और दहाई आदिके दहाई आदिके साथ जोड़ा जाय तो सर्वथा योगफल ३६० ही होगा। इसी प्रकार १०००० — ३६० इसमें ३६० को १०००० के नीचे लिखकर पूर्ववत् समान स्थानीय अङ्कमेंसे उसी स्थानवाले अङ्कको क्रम या व्युत्क्रमसे भी घटाया जाय तो शेष सर्वथा ९६४० ही होगा।

गुण्यके अन्तिम अङ्कको गुणकसे गुणना चाहिये। फिर उसके पार्श्ववर्ती अङ्कको भी उसी गुणकसे गुणना चाहिये। इस तरह आदि अङ्कतक गुणन करनेपर गुणनफल प्राप्त हो जाता है[1], मुने! इसी प्रकार भागफल जाननेके लिये भी यत्न करे। जितने अङ्कसे भाजकके साथ गुणा करनेपर भाज्यमेंसे घट जाय, वही अङ्क लब्धि अथवा भागफल होता है[2] ॥ १५ ॥

समाङ्कघातो वर्गः स्यात् तमेवाहुः कृतिं बुधाः।
अन्त्यात्तु विषमात्त्यक्त्वा कृतिं मूलं न्यसेत्पृथक्॥ १६ ॥
द्विगुणेनामुना भक्ते फलं मूले न्यसेत् क्रमात्।
तत्कृतिं च त्यजेद्विप्र मूलेन विभजेत् पुनः ॥ १७ ॥
एवं मुहुर्वर्गमूलं जायते च मुनीश्वर।

दो समान अङ्कोंके गुणनफलको वर्ग कहा गया है। विद्वान् पुरुष उसीको कृति कहते हैं। (जैसे ४ का वर्ग ४×४ = १६ और ९ का वर्ग ९×९=८१ होता है)[3] [वर्गमूल जाननेके लिये दाहिने अङ्कसे लेकर बायें अङ्कतक अर्थात् आदिसे अन्ततक विषम और समका चिह्न कर देना चाहिये। खड़ी लकीरको विषमका और पड़ीको समका चिह्न माना गया है]। अन्तिम विषममें जितने वर्ग घट सकें उतने घटा देना चाहिये। उस वर्गका मूल लेना और उसे पृथक् रख देना चाहिये ॥ १६ ॥ फिर द्विगुणित मूलसे सम अङ्कमें भाग दे और जो लब्धि आवे उसका वर्ग विषममें घटा दे, फिर उसे दूना करके पङ्क्तिमें रख दे। मुनीश्वर! इस प्रकार बार-बार करनेसे पङ्क्तिका आधा वर्गमूल[4] होता है ॥ १७$\frac{१}{२}$ ॥

१. यहाँपर 'अङ्कानां वामतो गतिः' इस उक्तिके अनुसार आदि-अन्त समझने चाहिये। जैसे—'१३५×१२' इसमें १३५ गुण्य है और १२ गुणक है। गुण्यका अन्तिम अङ्क हुआ १ उसमें १२ से गुणा पहले होगा, फिर उसके बादवाले ३ के साथ फिर ५ के साथ। यथा— $\frac{\overset{१२}{१३५}}{१६२०}$ वास्तवमें यह गुणन-शैली उस समयकी है, जब लोग धूल बिछाकर उसपर अङ्गुलिसे गणित किया करते थे। आधुनिक शैली उससे भिन्न है। रूप-विभाग और स्थान-विभागसे इस गुणनके अनेक प्रकार हो जाते हैं; इसका विस्तार लीलावतीमें देखना चाहिये।

२. १६२०÷१२=१३५ भागफल हुआ। जैसे—

```
भाजक भाज्य भागफल
 १२)१६२०(१३५
    १२
    ---
     ४२
     ३६
     ---
      ६०
      ६०
      ---
       ×
```

३. वर्ग या कृति निकालनेके और भी बहुत-से प्रकार लीलावतीमें दिये गये हैं।

४. जैसे १६३८४ का वर्गमूल उपर्युक्त विधिसे निकालनेपर १२८ आता है—

```
 |_|_|
 १६ ३ ८४        १२८
 १              ----
 ---            २५६ पंक्ति
 ×६
  ४             अङ्कोंको स्थापनकर दायेंसे बायें
  ---       तरफ खड़ी-पड़ी रेखा देकर विषम-
  २३        सम अङ्क समझना चाहिये।
   ४
  ---
  १९८
  १९२
  ---
    ६४
    ६४
    ---
     ×
```

समत्र्यङ्कहतिः प्रोक्तो घनस्तत्र विधिः पदे ॥ १८ ॥
प्रोच्यते विषमं त्वाद्यं समे द्वे च ततः परम्।
विशोध्यं विषमादन्त्याद्घनं तन्मूलमुच्यते ॥ १९ ॥
त्रिनिघ्न्यामं मूलकृत्या समं मूले न्यसेत् फलम्।
तत्कृतिञ्चान्त्यनिहतान्त्रिघ्नीं चापि विशोधयेत् ॥ २० ॥
घनं च विषमादेवं घनमूलं मुहुर्भवेत्।

समान तीन अङ्कोंके गुणनफलको 'घन'[1] कहा गया है। अब घनमूल निकालनेकी विधि बतायी जाती है—दाहिनेके प्रथम अङ्कपर घन या विषमका चिह्न (खड़ी लकीरके रूपमें) लगावे, उसके वामभागमें पार्श्ववर्ती दो अङ्कोंपर (पड़ी लकीरके रूपमें) अघन या समका चिह्न लगावे। इसी प्रकार अन्तिम अङ्कतक एक घन (विषम) और दो अघन (सम)-के चिह्न लगाने चाहिये। अन्तिम या विषम घनमें जितने घन घट सकें उतने घटा दे। उस घनको अलग रखें। उसका घनमूल ले और उस घनमूलका वर्ग करे, फिर उसमें तीनसे गुणा करे। उससे आदि अङ्कमें भाग दे, लब्धिको अलग लिख ले, उस लब्धिका वर्ग करे और उसमें अन्त्य (प्रथम मूलाङ्क) एवं तीनसे गुणा करे, फिर उसके बादके अङ्कमें उसे घटा दे तथा अलग रखी हुई लब्धिके घनको अगले घन अङ्कमें घटा दे, इस प्रकार बार-बार करनेसे घनमूल[2] सिद्ध होता है ॥ १८—२० $\frac{१}{२}$ ॥

अन्योन्यहारनिहतौ हरांशौ तु समच्छिदा ॥ २१ ॥
लवा लवघ्नाश्च हरा हरघ्ना हि सवर्णनम्।
भागप्रभागे विज्ञेयं मुने शास्त्रार्थचिन्तकैः ॥ २२ ॥
अनुबन्धेऽपवाहे चैकस्य चेदधिकोनकः।
भागास्तलस्थहारेण हारं स्वांशाधिकेन तान् ॥ २३ ॥
ऊनेन चापि गुणयेद्धनर्णं चिन्तयेत् तथा।
कार्यस्तुल्यहरांशानां योगश्चाप्यन्तरो मुने ॥ २४ ॥
अहारराशौ रूपं तु कल्पयेद्धरमप्यथ।
अंशाहतिश्छेदघातहृद्भिन्नगुणने फलम् ॥ २५ ॥
छेदं चापि लवं विद्वन् परिवर्त्य हरस्य च।
शेषः कार्यो भागहारे कर्तव्यो गुणनाविधिः ॥ २६ ॥

भिन्न अङ्कोंके परस्पर हरसे हर (भाजक) और अंश (भाज्य) दोनोंको गुण देनेसे सबके नीचे बराबर हर[3] हो जाता है। भागप्रभागमें अंशको अंशसे और हरको हरसे गुणा करना चाहिये। भागानुबन्ध एवं भागापवाहमें[4] यदि एक अङ्क अपने अंशसे अधिक या ऊन होवे तो तलस्थ हरसे ऊपरवाले हरको गुण देना चाहिये। उसके बाद अपने अंशसे अधिक ऊन किये हुए हरसे (अर्थात् भागानुबन्धमें हर अंशका योग

---

१. जैसे ३ का घन हुआ ३×३×३=२७।

२. उदाहरण इस प्रकार है—

१९६८३ का घनमूल निकालना है। मूलोक्त विधिके अनुसार इसकी क्रिया इस प्रकार होगी—

```
                 |   |
                १९ ६८३
                 ८
२×२×३=     १२)११६(२७ = घनमूल
                 ८४
                 ३२८
७×७×२×३          २९४
                 ३४३
७×७×७=           ३४३
                 ०००
```

```
)८ घन, उसका मूल २(
)२ का वर्ग   = ४
 ४ × ३       = १२
 ७ का वर्ग     ४९
 ४९ × २      = ९८
 ९८ × ३      = २९४
```

३. यथा—$\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{४}$ यहाँ परस्पर हरसे हर और अंश दोनोंको गुणित किया जाता है। जिस हरसे गुणा करते हैं, वह अपने सिवा दूसरे हर और अंशको ही गुणित करता है। जैसे—

$\frac{१}{२}$,	$\frac{२}{६}$,	$\frac{२}{८}$
$\frac{३}{६}$,	$\frac{२}{६}$,	$\frac{६}{२४}$
$\frac{१२}{२४}$,	$\frac{८}{२४}$,	$\frac{६}{२४}$

इस प्रकार यहाँ सबका हर समान हो गया। ऐसा करके ही भिन्नाङ्कोंका योग या अन्तर किया जाता है। यथा—

$$\frac{१}{२}+\frac{१}{३}+\frac{१}{४}=\frac{१२+८+६}{२४}=\frac{२६}{२४}=\frac{१३}{१२}$$

४. किसी भागको जोड़नेको भागानुबन्ध और घटानेको भागापवाह कहते हैं।

करके और भागापवाहमें हर अंशका अन्तर करके) अंशको गुण देना चाहिये। ऐसा करनेसे भागानुबन्ध और भागापवाहका फल सिद्ध होगा[१]। जिसके नीचे हर न हो उसके नीचे एक हरकी कल्पना करनी चाहिये। भिन्न गुणन-साधनमें अंश-अंशका गुणन करना और हर-हरके गुणनसे भाग देना चाहिये। इससे भिन्न गुणनमें फलकी सिद्धि होगी। (यथा २/७×३/८ यहाँ २ और ३ अंश हैं और ७, ८ हर हैं, इनमें अंश-अंशसे गुणा करनेपर २×३=६ हुआ और हर-हरके गुणनसे ७×८=५६ हुआ। फिर ६÷५६ करनेसे ६/५६ जिसे दोसे काटनेपर ३/२८ उत्तर हुआ) ॥ २१—२५ ॥ विद्वन्! भिन्न संख्याके भागमें भाजकके हर और अंशको परिवर्तित कर (हरको अंश और अंशको हर बनाकर) फिर भाज्यके हर-अंशके साथ गुणन-क्रिया करनी चाहिये, इससे भागफल सिद्ध होता है। (यथा ३/८ ४/५ में हर और अंशके परिवर्तनसे ३/८×५/४=१५/३२ यही भागफल हुआ) ॥ २६ ॥

हरांशयोः कृती वर्गे घनौ घनविधौ मुने।
पदसिद्ध्यै पदे कुर्यादथो खं सर्वतश्च खम्॥ २७॥

भिन्नाङ्कके वर्गादि-साधनमें यदि वर्ग करना हो तो हर और अंश दोनोंका वर्ग करे तथा घन करना हो तो दोनोंका घन करे। इसी प्रकार वर्गमूल निकालना हो तो दोनोंका वर्गमूल और घनमूल निकालना हो तो भी दोनोंका घनमूल निकालना चाहिये। (यथा—३/७ का वर्ग हुआ ९/४९ और मूल हुआ ३/७, इसी प्रकार ३/७ का घन हुआ २७/३४३ और मूल हुआ ३/७) ॥ २७ ॥

छेदं गुणं गुं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम्।
ऋणं स्वं स्वमृणं कुर्याद्दृश्ये राशिप्रसिद्धये॥ २८॥
अथ स्वांशाधिकोने तु लवाढ्योनो हरो हर।
अंशस्त्वविकृतस्तत्र विलोमे शेषमुक्तवत्॥ २९॥

विलोमविधिसे राशि जाननेके लिये दृश्यमें हरको गुणक, गुणकको हर, वर्गको मूल, मूलको वर्ग, ऋणको धन और धनको ऋण बनाकर अन्तमें उलटी क्रिया करनेसे राशि (इष्ट संख्या) सिद्ध होती है। विशेषता यह है कि जहाँ अपना अंश जोड़ा गया हो वहाँ हरमें अंशको जोड़कर और जहाँ अपना अंश घटाया गया हो, वहाँ हरमें अंशको घटाकर हर कल्पना करे और अंश ज्यों-का-त्यों रहे। फिर दृश्य राशिमें विलोम क्रिया उक्त रीतिसे करे तो राशि सिद्ध होती है[२] ॥ २८-२९ ॥

---

१. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—१/८ का १/३ उसमेंसे घटाओ और शेषका १/२ उसी शेषमें जोड़ो, इसकी न्यास-विधि (लिखनेकी रीति) इस प्रकार होगी—

१/८	$\frac{१×३×२}{८×२×३} = \frac{१}{८}$	उत्तर हुआ।
१/३		
+१/२		

२. उदाहरणके लिये यह प्रश्न लीजिये—वह कौन-सी संख्या है, जिसको तीनसे गुणा करके उसमें अपना ३/४ जोड़ देते हैं, फिर सातका भाग देते हैं, पुनः अपना १/३ घटा देते हैं, फिर उसका वर्ग करते हैं, पुनः उसमें ५२ घटाकर उसका मूल लेते हैं, उसमें ८ जोड़कर १० का भाग देते हैं तो २ लब्धि होती है। उस संख्या अथवा राशिको निकालना है। इसमें मूलोक्त नियमके अनुसार इस प्रकार क्रिया की जायगी—

गुणक	३	हर	८४÷३=२८ राशि
धन	३/४	अपना ३/७ ऋण	१४७-६३=८४
हर	७	गुणक	२१×७=१४७
ऋण	१/३	अपना १/२ धन	१४+७=२१
वर्ग	-	मूल	१९६=१४
ऋण	५२	धन	१४४+५२=१९६
मूल	-	वर्ग	१२=१४४
धन	८	ऋण	२०-८=१२
हर	१०	गुणक	२×१०=२०
		दृश्य	२

अतः विलोम गणितकी विधिसे वह संख्या २८ निश्चित हुई।

उद्दिष्टराशिः संक्षुण्णो हृतोंऽशै रहितो युतः।
इष्टघ्नदृष्टमेतेन भक्तं राशिरितीरितम्॥ ३०॥

अभीष्ट संख्या जाननेके लिये इष्ट राशिकी कल्पना करनी चाहिये। फिर प्रश्नकर्ताके कथनानुसार उस राशिको गुणा करे या भाग दे। कोई अंश घटानेको कहा गया हो तो घटावे और जोड़नेको कहा गया हो तो जोड़ दे अर्थात् प्रश्नमें जो-जो क्रियाएँ कही गयी हों, वे इष्टराशिमें करके फिर जो राशि निष्पन्न हो, उससे कल्पित इष्ट-गुणित दृष्टमें भाग दे, उसमें जो लब्धि हो, वही इष्ट राशि है[1]॥ ३०॥

योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितो राशी तु संक्रमे।
राश्यन्तरहृतं वर्गान्तरं योगस्ततश्च तौ॥ ३१॥

संक्रमण-गणितमें (यदि दो संख्याओंका योग और अन्तर ज्ञात हो तो) योगको दो जगह लिखकर एक जगह अन्तरको जोड़कर आधा करे तो एक संख्याका ज्ञान होगा और दूसरी जगह अन्तरको घटाकर आधा करे तो दूसरी संख्या ज्ञात होगी—इस प्रकार दोनों राशियाँ (संख्याएँ) ज्ञात हो जाती हैं[2]। वर्गसंक्रमणमें (यदि दो संख्याओंका वर्गान्तर तथा अन्तर ज्ञात हो तो) वर्गान्तरमें अन्तरसे भाग देनेपर जो लब्धि आती है, वही उनका योग है; योगका ज्ञान हो जानेपर फिर पूर्वोक्त प्रकारसे दोनों संख्याओंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये[3]॥ ३१॥

गजघ्नीष्टकृतिर्व्येका दलिता चेष्टभाजिता।
एकोऽस्य वर्गो दलितः सैको राशिः परो मतः॥ ३२॥
द्विगुणेष्टहृतं रूपं सेष्टं प्राग्रूपकं परम्।
वर्गयोगान्तरे व्येके राश्योर्वर्गौ स्त एतयोः॥ ३३॥
इष्टवर्गकृतिश्चेष्टघनोऽष्टघ्नौ च सैककः।
आद्यः स्यातामुभे व्यक्ते गणितेऽव्यक्त एव च॥ ३४॥

वर्गकर्मगणितमें[4] इष्टका वर्ग करके उसमें आठसे गुणा करे, फिर एक घटा दे, उसका आधा करे। तत्पश्चात्—उसमें इष्टसे भाग दे तो एक राशि ज्ञात होगी। फिर उसका वर्ग करके आधा करे और उसमें एक जोड़ दे तो दूसरी संख्या ज्ञात होगी[5]॥ ३२॥ अथवा कोई इष्ट-कल्पना करके उस द्विगुणित इष्टसे १ में भाग देकर लब्धिमें इष्टको जोड़े तो प्रथम संख्या होगी और दूसरी संख्या १ होगी। ये दोनों संख्याएँ वे ही होंगी, जिनके वर्गोंके योग और अन्तरमें एक घटानेपर भी वर्गाङ्क ही शेष रहता है[6]॥ ३३॥ किसी इष्टके वर्गका वर्ग तथा पृथक् उसीका घन करके दोनोंको पृथक्-पृथक् आठसे गुणा करे। फिर पहलेमें एक जोड़े तो दोनों संख्याएँ ज्ञात होंगी। यह विधि व्यक्त और अव्यक्त दोनों गणितोंमें उपयुक्त है[7]॥ ३४॥

---

१. इसको स्पष्टरूपसे जाननेके लिये यह उदाहरणात्मक प्रश्न प्रस्तुत किया जाता है—वह कौन-सी संख्या है, जिसे ५ से गुणा करके उसमें उसीका तृतीयांश घटाकर दससे भाग देनेपर जो लब्धि हो उसमें राशिके १/३, १/२, १/४ भाग जोड़नेसे ६८ होता है। इसमें गुणक ५। ऊन १/३। हर १०। युक्त होनेवाले राश्यंश १/३, १/२, १/४ और दृश्य संख्या ६८ है। कल्पना कीजिये कि इष्ट राशि ३ है। इसमें प्रश्नकर्ताके कथनानुसार ५ से गुणा किया तो १५, इसमें अपना १/३ अर्थात् ५ घटा दिया तो १० हुआ। इसमें दससे भाग दिया तो १ लब्धि अङ्क हुआ, उसमें कल्पित राशि ३ के १/३, १/२, १/४ जोड़नेसे $१/१+३/३+३/२+३/४=\frac{१२+१२+१८+९}{१२}=५१/१२=१७/४$ हुआ। फिर दृश्य ६८ में कल्पित इष्ट ३ से गुणा किया और १७/४ से भाग दिया तो $\frac{६८\times३\times४}{१७}=४८$ यही इष्ट संख्या हुई।

२. जैसे किसीने पूछा—वे दोनों कौन-सी संख्याएँ हैं, जिनका योग १०१ और अन्तर २५ है? यहाँ योगको दो जगह लिखा—

१०१	१०१
२५ जोड़ा	२५ घटाया
१२६÷२=६३	७६÷२=३८ उत्तर—वे दोनों संख्याएँ ६३ एवं ३८ हैं।

३. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—जिन दो संख्याओंका अन्तर ८ और वर्गान्तर ४०० है, उन्हें बताओ। ४००÷८=५० यह योग हुआ ५०+८०÷२=२९ एक संख्या। ५०-८÷२=२१ दूसरी संख्या हुई। अथवा वर्गान्तरमें राशियोगका भाग देनेसे अन्तर ज्ञात होगा। यथा—४००÷५०=८ यह राश्यन्तर है। फिर पूर्वोक्त प्रक्रियासे दोनों राशियाँ ज्ञात होंगी।

४. जहाँ किन्हीं दो संख्याओंका वर्गयोग और वर्गान्तर करके दोनोंमें पृथक्-पृथक् १ घटानेपर भी वर्गाङ्क ही शेष रहता है उसको 'वर्गकर्म' कहते हैं।

५. कल्पना कीजिये कि इष्ट १/२ है, उसका वर्ग हुआ १/४ उसको आठसे गुणा किया तो २ हुआ। उसमें १ घटाकर आधा किया तो १/२ हुआ, उसमें इष्ट १/२ से भाग दिया तो १ हुआ—यह प्रथम संख्या है। उसका वर्ग किया तो एक ही हुआ। इसका आधा करनेसे १/२ हुआ। इसमें एक जोड़नेसे ३/२ हुआ यह दूसरी संख्या हुई।

६. कल्पना कीजिये कि इष्ट १ है, उसको दोसे गुणा किया तो २ हुआ, उससे १ में भाग दिया तो १÷२/१=१×१/२=१/२ हुआ। उसमें इष्ट १ जोड़ दिया तो १ १/२=३/२ प्रथम संख्या निकल आयी और दूसरी संख्या १ है ही।

७. कल्पना कीजिये कि इष्ट २ है। इसके वर्गका वर्ग हुआ १६ और उसका घन हुआ ८। दोनोंको अलग-अलग ८ से गुणा करने-

गुणघ्नमूलोनयुते सगुणार्धकृतेः पदम्।
दृष्टस्य च गुणार्धोनयुतं वर्गीकृतं गुणः॥ ३५॥
यदा लवोनयुग्राशिर्दृश्यं भागोनयुग्भुवा।
भक्तं तथा मूलगुणं ताभ्यां साध्योऽथ व्यक्तवत्॥ ३६॥

गुणकर्म अपने इष्टाङ्कगुणित मूलसे ऊन या युक्त होकर यदि कोई संख्या दृश्य हुई हो तो मूल गुणकके आधेका वर्ग दृश्य-संख्यामें जोड़कर मूल लेना चाहिये। उसमें क्रमसे मूल गुणकके आधा जोड़ना और घटाना चाहिये। (अर्थात् जहाँ इष्टगुणितमूलसे ऊन होकर दृश्य हो वहाँ गुणकार्धको जोड़ना तथा यदि इष्टगुणितमूलयुक्त होकर दृश्य हो तो उक्त मूलमें गुणकार्ध घटाना चाहिये) फिर उसका वर्ग कर लेनेसे प्रश्नकर्ताकी अभीष्ट राशि (संख्या) सिद्ध होती है[1]। यदि राशि मूलोन या मूलयुक्त होकर पुनः अपने किसी भागसे भी ऊन या युत होकर दृश्य होती हो तो उस भागको १ में ऊन या युत कर (यदि भाग ऊन हुआ हो तो घटा करके और यदि युत हुआ हो तो जोड़ करके) उसके द्वारा पृथक्-पृथक् दृश्य और मूल गुणकमें भाग दे; फिर इस नूतन दृश्य और मूलगुणकसे पूर्ववत् राशिका साधन करना चाहिये॥ ३५-३६॥

प्रमाणेच्छे सजातीये आद्यन्ते मध्यगं फलम्।
इच्छाघ्नमाद्यहृत्स्वेष्टं फलं व्यस्ते विपर्ययात्॥ ३७॥

(त्रैराशिकमें) प्रमाण और इच्छा ये समान जातिके होते हैं, इन्हें आदि और अन्तमें रखे, फल भिन्न जातिका है, अतः उसे मध्यमें स्थापित करे। फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणके द्वारा भाग देनेसे लब्धि इष्टफल होती है। (यह क्रम त्रैराशिक बताया गया है।) व्यस्त त्रैराशिकमें इससे विपरीत क्रिया करनी चाहिये। अर्थात् प्रमाण-फलको प्रमाणसे गुणा करके इच्छासे भाग देनेपर लब्धि इष्टफल होती है। (प्रमाण, प्रमाण-फल और इच्छा—इन तीन राशियोंको जानकर इच्छाफल जाननेकी क्रियाको त्रैराशिक कहते हैं।)[2] ॥३७॥

पर एक हुआ १२८ और दूसरा हुआ ६४। यहाँ पहलेमें १ जोड़नेसे १२९ हुआ, यह पहली संख्या है और ६४ दूसरी संख्या हुई।

१. यदि कोई पूछे—किसी हंस-समूहके मूलका सातगुणित आधा (७/२) भाग सरोवरके तटपर चला गया और बचे हुए २ हंस जलमें ही क्रीड़ा करते देखे गये तो उन हंसोंकी कुल संख्या कितनी थी? यहाँ मूल गुणक ७/२ है। दृष्ट संख्या २ है। गुणार्ध हुआ ७/४ उसका वर्ग हुआ ४९/१६ उससे दृष्ट २ का योग करनेपर ८१/१६ हुआ। इसका मूल हुआ ९/४ फिर इसे गुणार्ध ७/४ से युक्त किया तो १६/४=४ हुआ, इसका वर्ग किया तो १६ हुआ, यही हंसकुलका मान है। (यह मूलोन दृश्यका उदाहरण है।)

भागोन दृश्यका उदाहरण इस प्रकार है—किसी व्यक्तिने अपने धनका आधा १/२ अपने पुत्रको दिया और धन-संख्याके मूलका १२ गुना भाग अपनी स्त्रीको दे दिया। इसके बाद उसके पास १०८०) बच गये तो बताओ उसके सम्पूर्ण धनकी संख्या क्या है?

उत्तर—इस प्रश्नमें मूलगुणक १२ है और १/२ भागसे ऊन दृष्ट १०८० है। अतः मूल श्लोकमें वर्णित रीतिके अनुसार भागको एकमें घटानेसे १—१/२=१/२ हुआ। इससे मूल गुणक १२ और दृश्य १०८० में भाग देनेसे क्रमशः नवीन मूलगुणक २४ और नवीन दृश्य २१६० हुआ। पुनः उपर्युक्त रीतिसे इस मूलगुणकके आधे १२ के वर्ग १४४ को दृश्यमें जोड़नेसे २३०४ हुआ। इसके मूल ४८ में गुणक २४ के आधे १२ को जोड़नेसे ६० हुआ और उसका वर्ग ३६०० हुआ; यही उत्तर है।

भागयुत दृश्यका उदाहरण—एक भगवद्भक्त प्रातःकाल जितनी संख्यामें हरिनामका जप करते हैं; उस संख्याके पञ्चमांशमें उसी जपसंख्याके मूलका १२ गुना जोड़नेसे जो संख्या हो, उतना जप सायंकालमें करते हैं, यदि दोनों समयकी जपसंख्या मिलकर १३२०० है तो प्रातःकाल और सायंकालकी पृथक्-पृथक् जपसंख्या बताइये।

उत्तर—यहाँ मूलगुणक १२ और भाग १/५से युत दृष्ट १३२०० है। अतः उक्त रीतिके अनुसार भागको १ में जोड़ा गया तो ६/५ हुआ। इससे मूलगुणक १२ और दृश्य १३२०० में भाग देनेपर नवीन मूलगुणक १० और नवीन दृश्य ११००० हुआ। उपर्युक्त रीतिके अनुसार गुणकके आधे ५ के वर्ग २५ को नवीन दृश्यमें जोड़नेपर ११०२५ हुआ। इसका मूल १०५ हुआ। इसमें नवीन गुणकके आधे ५ को घटानेसे १०० हुआ। इसका वर्ग १०००० है। यही प्रातःकालकी जपसंख्या हुई। शेष ३२०० सायंकालकी जपसंख्या हुई।

२. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—यदि पाँच रुपयेमें १०० आम मिलते हैं तो सात रुपयेमें कितने मिलेंगे? इस प्रश्नमें ५ प्रमाण है, १०० प्रमाण-फल है और ७ इच्छा है। प्रमाण और इच्छा एक जाति (रुपया) तथा प्रमाण-फल भिन्न जाति (आम) है। आदिमें प्रमाण, मध्यमें फल और अन्तमें इच्छाकी स्थापना की गयी—५) में १०० आम तो ७) में कितने? यहाँ प्रमाण-फल १०० को इच्छासे गुणा करके प्रमाणसे भाग दिया जायगा तो $\frac{१००\times७}{५}$ = १४० यह इच्छाफल हुआ (अर्थात् सात रुपयेके १४० आम हुए)।

जहाँ इच्छाकी वृद्धिमें फलकी वृद्धि और इच्छाके ह्रासमें फलका ह्रास हो, वहाँ क्रम-त्रैराशिक होता है। जहाँ इच्छाकी वृद्धिमें फलका ह्रास और इच्छाके ह्रासमें फलकी वृद्धि हो, वहाँ व्यस्तत्रैराशिक होता है। वैसे स्थलोंमें प्रमाणफलको प्रमाणसे गुणा करके उसमें इच्छाके द्वारा भाग देनेसे इच्छाफल होता है। इस प्रकारके व्यस्त-त्रैराशिकके कुछ परिगणित स्थल हैं—'जीवानां वयसो मौल्ये तौल्ये वर्णस्य हैमने। भागहारे च राशीनां व्यस्तं त्रैराशिकं भवेत्॥' अर्थात् जीवोंकी वयस्के मूल्यमें, उत्तमके साथ अधम मोलवाले सोनेके तौलमें तथा किसी संख्यामें भिन्न-भिन्न भाजकसे भाग देनेमें व्यस्तत्रैराशिक होता है। एक उदाहरण लीजिये—३ आदमी मिलकर १० दिनमें एक काम पूरा करते हैं तो

पञ्चराश्यादिकेऽन्योन्यपक्षं कृत्वा फलच्छिदाम्।
बहुराशिवधे भक्ते फलं स्वल्पवधेन च॥ ३८॥
इष्टकर्मविधेर्मूलं च्युतं मिश्रात् कलान्तरम्।
मानघ्नकालश्चातीतकालघ्नफलसंहृताः ॥ ३९॥
स्वयोगभक्ता मिश्रघ्नाः सम्प्रयुक्तदलानि च।

पञ्चराशिक, सप्तराशिक (नवराशिक, एकादशराशिक) आदिमें फल और हरोंको परस्पर पक्षमें परिवर्तन करके (प्रमाण-पक्षवालेको इच्छा-पक्षमें और इच्छा-पक्षवालेको प्रमाण-पक्षमें रखकर) अधिक राशियोंके घातमें अल्पराशिके घातसे भाग देनेपर जो लब्धि आवे, वही इच्छाफल है[1]॥ ३८॥ मिश्रधनको इष्ट मानकर इष्टकर्मसे मूलधनका ज्ञान करे, उसको मिश्रधनमें घटानेसे कलान्तर (सूद) समझना चाहिये।[2] अपने-अपने प्रमाण धनसे अपने-अपने कालको गुणा

१५आदमी कितने दिनमें करेंगे? यहाँ १०×३÷१५ करनेसे उत्तर आया २; अतः २ दिनमें काम पूरा करेंगे।

१. इसका प्रश्नात्मक उदाहरण इस प्रकार है—यदि १ मासमें १००) के ५) ब्याज होते हैं तो १२ महीनेमें १६) के कितने होंगे? इसका न्यास इस प्रकार है—

प्रमाण-पक्ष	इच्छा-पक्ष		अल्प	बहुत
१	१२	परस्पर पक्षनयन करके इस प्रकार न्यास किया गया।	१	१२
१००	१६		१००	१६
५	०		०	५

बहुराशिके घात (गुणन) से—१२×१६×५=९६०
अल्पराशिके घात (गुणन) से—१×१००=१००
९६०÷१००=९ $\frac{६०}{१००}$=९ $\frac{३}{५}$ रुपये ब्याज हुए।

इसी तरह मूलधन तथा ब्याज जानकर काल बताना चाहिये और काल तथा ब्याज जानकर मूलधन बताना चाहिये।

सप्तराशिकका उदाहरण इस प्रकार है—यदि ४ हाथ चौड़ी और ८ हाथ लम्बी १० दरियोंका मूल्य १००) रुपया है तो ८ हाथ चौड़ी तथा १० हाथ लम्बी २० दरियोंका मूल्य क्या होगा?

प्रमाण-पक्ष	इच्छा-पक्ष		अल्पराशि	बहुराशि
४	८	अन्योन्य पक्ष-नयनसे	४	८
८	१०		८	१०
१०	२०		१०	२०
१००				१००

श्लोकोक्त रीतिके अनुसार $\frac{८×१०×२०×१००}{४×८×१०}$ = ५००) पाँच सौ रुपये। यही उत्तर हुआ। इसी प्रकार नवराशिक आदिको भी जानना चाहिये।

२. उदाहरण यह है—१ मासमें १००) के ५) ब्याजके हिसाबसे यदि बारह मासमें मूलधनसहित ब्याज १०००) हुए तो अलग-अलग मूलधन और ब्याजकी संख्या बताओ। इष्टकर्मसे मूलधन जाननेके लिये इष्ट ५ कल्पित मूलधन और दृश्य १००० मिश्रधन है। यहाँ कल्पित मूलधनसे पञ्चराशिकद्वारा ब्याज जाननेके लिये न्यास—

१	१२	परस्पर पक्षनयनसे	१	१२	बहुराशिके घात (गुणन)-में स्वल्पराशिके
१००	५		१००	५	घात (गुणन) से भाग देनेपर
५	×		×	५	$\frac{१२×५×५}{१००}$ = ३

३. कल्पित ब्याज हुआ। कल्पित मिश्रधन ५+३=८, इससे इष्टगुणित दृश्यमें भाग देनेसे उद्दिष्ट मूलधन $\frac{१०००×५}{८}$=६२५) इसको मिश्रधन १००० में घटानेसे ३७५) ब्याजके हुए। संक्षेपसे इस प्रकार न्यास करना चाहिये—

१	१२	लब्धिक्रमसे मूल ६२५)
१००	१०००	ब्याज ३७५)
५	०	

अथवा इष्टकर्मसे कल्पित इष्ट १
पूर्वोक्त रीतिसे कलान्तर (सूद) ३/५ इससे युक्त १=८/५
१०००÷$\frac{८}{५}$ = $\frac{१०००×५}{८}$=६२५) मूलधन १०००—६२५=३७५) ब्याज

करना, उसमें अपने-अपने व्यतीत काल और फलके घात (गुणा)-से भाग देना, लब्धिको पृथक् रहने देना, उन सबमें उन्हींके योगका पृथक्-पृथक् भाग देना तथा सबको मिश्रधनसे गुणा कर देना चाहिये। फिर क्रमसे प्रयुक्त व्यापारमें लगाये हुए धनखण्डके प्रमाण ज्ञात होते हैं[२] ॥ ३९ $\frac{१}{२}$ ॥

बहुराशिफलात् स्वल्पराशिमासफलं बहु ॥ ४० ॥
चेद्राशिजफलं मासफलाहतिहृतं चयः।

पञ्चराशिकादिमें फल और हरको अन्योन्य पक्षनयन करनेसे इच्छा-पक्षमें फलके चले जानेसे इच्छापक्ष बहुराशि और प्रमाण-पक्ष स्वल्पराशि माना गया है। इसी गणितके उदाहरणमें जब इच्छाफल जानकर मूलधन जानना होगा तो फलोंको परस्पर पक्षमें परिवर्तन करनेसे प्रमाण-पक्ष (स्वल्पराशि) का फल ही बहुराशि (इच्छापक्ष)-से अधिक होगा। यहाँ राशिजफलको इष्टमास और प्रमाण-फलके गुणनसे भाग देनेपर मूलधन होता है[२] ॥ ४० $\frac{१}{२}$ ॥

क्षेपा मिश्रहताः क्षेपयोगभक्ताः फलानि च ॥ ४१ ॥
भजेच्छिदोंऽशैस्तैर्मिश्रे रूपं कालश्च पूर्तिकृत्।

---

१. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—किसीने अपने ९४) रुपये मूलधनके तीन भाग करके एक भागको माहवारी पाँच रुपये सैकड़े ब्याज, दूसरे भागको तीन रुपये और तीसरे भागको चार रुपये सैकड़े ब्याजपर दिया। क्रमशः तीनों भागोंमें सात, दस और पाँच मासमें बराबर ब्याज मिले तो तीनों भागोंकी अलग-अलग संख्या बताओ।

भाग १	भाग २	भाग ३	मिश्रधन (सम्मिलित मूलधन)
प्रमाणकाल १ व्यतीतकाल ७	प्र० का० १ व्य० का० १०	प्र० का० १ व्य० का० ५	९४
प्रमाण धन १००	प्रमाण धन १००	प्रमाण धन १००	
प्रमाण फल ५	प्रमाण फल ३	प्रमाण फल ४	

अपने प्रमाणकाल और प्रमाणधनके गुणनफलमें व्यतीतकाल और प्रमाण-फलके गुणनफलसे भाग देनेपर—

$\frac{१००\times१=१००}{७\times५=३५}=\frac{२०}{७}$ | $\frac{१००\times१}{३\times१०}=\frac{१००}{३०}=\frac{१०}{३}$ | $\frac{१००\times१}{४\times५}=\frac{१००}{२०}=\frac{५}{१}$

इनमें इनके योग २३५/२१ से भाग देने और मिश्रधन (९४)-से गुणा करनेपर पृथक्-पृथक् भाग इस प्रकार होते हैं—

$\frac{२०}{७}\div\frac{२३५}{१},\ \frac{२०}{७}\times\frac{२१}{२३५}\times९४=२४$ यह प्रथम भाग हुआ।

$\frac{१०}{३}\div\frac{२३५}{२१},\ \frac{१०}{३}\times\frac{२१}{२३५}\times९४=२८$ यह द्वितीय भाग हुआ।

$\frac{५}{१}\div\frac{२३५}{२१},\ \frac{५}{१}\times\frac{२१}{२३५}\times९४=४२$ यह तृतीय भाग हुआ।

२. उदाहरण—एक मासमें १००) मूलधनका ५) रुपया ब्याज होता है तो १२ मासमें १६ रुपयेका कितना होगा?

उत्तरार्थ न्यास—

प्रमाण	इच्छा
१	१२
१००	१६
५	×

अन्योन्य पक्षनयनसे

स्वल्प राशि	बहुराशि
१	१२
१००	१६
	५

श्लोकोक्त रीतिके अनुसार—$\frac{१२\times१६\times५}{१००}=\frac{४८}{५}=$इच्छाफल।

प्रक्षेप (पूँजीके टुकड़े)-को पृथक्-पृथक् मिश्रधनसे गुण देना और उसमें प्रक्षेपके योगसे भाग देना चाहिये। इससे पृथक्-पृथक् फल ज्ञात होते हैं।[१] वापी आदि पूरणके प्रश्नमें—अपने-अपने अंशोंसे हरमें भाग देना, फिर उन सबके योगसे १ में भाग देनेपर वापीके भरनेके समयका ज्ञान होता है[२] ॥ ४१ $\frac{१}{२}$ ॥

गुणो गच्छेऽसमे व्येके समे वर्गोऽर्धितेऽन्ततः ॥ ४२ ॥
यद् गच्छअन्तफलं व्यस्तं गुणवर्गभवं हि तत्।
व्येकं व्येकगुणाप्तं च प्राग्घ्नं मानं गुणोत्तरे ॥ ४३ ॥

(द्विगुणचयादि-वृद्धिमें फलका साधन)—(जहाँ द्विगुण-त्रिगुण आदि चय हो वहाँ) पद यदि विषम संख्या (३, ५, ७ आदि) हो तो उसमें १ घटाकर गुणक लिखे। यदि पद सम हो तो आधा करके वर्गचिह्न लिखे। इस प्रकार एक घटाने और आधा करनेमें भी जब विषमाङ्क हो तब गुणकचिह्न, जब समाङ्क हो तब वर्गचिह्न करना एवं जबतक पदकी कुल संख्या समाप्त न हो जाय तबतक करते रहना चाहिये। फिर अन्त्य चिह्नसे उलटा गुणज और वर्गफल साधन करके

इसी उदाहरणमें मूलधन जाननेके लिये—

न्यास—

प्रमाण-पक्ष	इच्छा-पक्ष
मास १	१२ मास
धनराशि १००	×
फल ५	$\frac{४८}{५}$=इच्छाफल (५ वीं राशि)

यहाँ फल और हरके अन्योन्य पक्षनयन करनेसे—

बहुराशि	स्वल्पराशि
प्रमाण	इच्छा
मास १	१२
धन १००	×
४८	५
	५

'बहुराशिफलात्' इत्यादि ४० वें श्लोकके अनुसार—

$$\frac{१×१००×४८}{१२×५×५} = १६ = \text{मूलधन।}$$

१. मान लीजिये कि ३ व्यापारियोंके क्रमसे ५१, ६८, ८५ रुपये मूलधन हैं। तीनोंने एक साथ मिलकर व्यापारसे ३००) रुपये प्राप्त किये तो इन तीनोंके पृथक्-पृथक् कितने धन होंगे? यहाँ मूलोक्त नियमके अनुसार प्रक्षेपों (५१, ६८, ८५)-को मिश्रधन ३०० से गुणाकर प्रक्षेपोंके योग २०४ के द्वारा भाग देनेपर लब्धिक्रमसे तीनोंके पृथक्-पृथक् भाग हुए। यथा—प्रथमका

भाग=$\frac{५१×३००}{२०४}$=७५। द्वितीयका भाग=$\frac{६८×३००}{२०४}$=१००। तृतीयका भाग=$\frac{८५×३००}{२०४}$=१२५।

२. कल्पना कीजिये कि एक झरना या नल किसी तालाबको १ दिन (१२ घंटे) में, दूसरा $\frac{१}{२}$ दिनमें, तीसरा $\frac{१}{३}$ दिनमें और चौथा १/६ दिनमें अलग-अलग खोलनेपर भर देता है तो यदि चारों एक ही साथ खोल दिये जायँ तो दिनके कितने भागमें तालाबको भरेंगे।

मूलोक्त रीतिसे अपने-अपने अंशसे हरमें भाग देनेसे $\frac{१}{१}, \frac{२}{१}, \frac{३}{१}, \frac{६}{१}$, इनके योग १२/१ से १ में भाग देनेपर $\frac{१}{१२}$ हुआ। अर्थात् १ दिनके १२ वें भागमें (१ घंटेमें) तालाब भर जायगा।

आद्य चिह्नतक जो फल हो, उसमें १ घटाकर शेषमें एकोन गुणकसे भाग देना चाहिये। लब्धिको आदि अङ्कसे गुणा करनेपर सर्वधन होता है[१] ॥ ४२-४३ ॥

भुजकोटिकृतेर्योगमूलं कर्णश्च दोर्भवेत्।
श्रुतिकोटिकृतेरन्तः पदं दोःकर्णवर्गयोः ॥ ४४ ॥
विवराद् यत्पदं कोटिः क्षेत्रे त्रिचतुरस्रके।
राश्योरन्तरवर्गेण द्विघ्ने घाते युते तयोः ॥ ४५ ॥
वर्गयोगोऽथ योगान्तर्हतिर्वर्गान्तरं भवेत्।

(क्षेत्रव्यवहार-प्रकरण)—भुज और कोटिके वर्गयोगका मूल कर्ण होता है, भुज और कर्णके वर्गान्तरका मूल कोटि होता है तथा कोटि एवं कर्णके वर्गान्तरका मूल भुज होता है—यह बात त्रिभुज अथवा चतुर्भुज क्षेत्रके लिये कही गयी है[२]। अथवा राशिके अन्तरवर्गमें उन्हीं दोनों राशियोंका द्विगुणित घात (गुणनफल) जोड़ दें तो वर्गयोग होता है अथवा उन्हीं दोनों राशियोंके योगान्तरका घात वर्गान्तर होता है[३] ॥ ४४-४५ $\frac{१}{२}$ ॥

---

१. कल्पना कीजिये कि किसी दाताने किसी याचकको पहले दिन २ रुपये देकर उसके बाद प्रतिदिन द्विगुणित करके देनेका निश्चय किया तो बताइये कि उसने ३० दिनमें कितने रुपये दान किये।

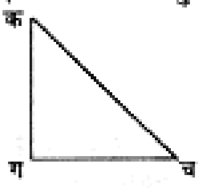
उत्तर—यहाँ आदि=२, गुणात्मकचय=२, पद=३० है। पद सम अंक है। अतः आधा करके १५ के स्थानमें वर्गचिह्न लगाया, यह विषमाङ्क हुआ, अतः उसमें १ घटाकर १४ के स्थानमें गुणकचिह्न लिखा। फिर यह सम हो गया, अतः आधा ७ करके वर्गचिह्न किया, इस प्रकार पद-संख्याकी समाप्तिपर्यन्त न्यास किया। न्यास देखिये—

न्यास—

१५	वर्ग	१०७३७४१८२४
१४	गुण	३२७६८
७	वर्ग	१६३८४
६	गुण	१२८
३	वर्ग	६४
२	गुण	८
१	वर्ग	४
०	गुण	२

अन्तमें गुणचिह्न हुआ। वहाँ गुणकाङ्क २ को रखकर उलटा प्रथम चिह्नतक गुणक-वर्गज फल-साधन किया तो १०७३७४१८२४ हुआ।
इसमें एक घटाकर एकोनगुण (१)-से भाग देकर आदि (२)-से गुणा किया तो २,१४,७४,८३,६४६ रुपये सर्वधन हुआ।

२. लीलावती (क्षेत्रव्यवहार श्लोक १,२)-में इस विषयको इस प्रकार स्पष्ट किया है—'त्रिभुज या चतुर्भुजमें जब एक भुजपर दूसरा भुज लम्बरूप हो, उन दोनोंमें एक (नीचेकी पड़ी रेखा)-को 'भुज' और दूसरी (ऊपरकी खड़ी रेखा)-को 'कोटि' कहते हैं। तथा उन दोनोंके वर्गयोग मूलको 'कर्ण' कहते हैं। भुज और कर्णका वर्गान्तर मूल कोटि तथा कोटि और कर्णका वर्गान्तर मूल भुज होता है। यथा—'क, ग, च' यह एक त्रिभुज है। 'क, ग' इस रेखाको कोटि कहते हैं। 'ग, च' इस रेखाका नाम भुज है, 'क, च' का नाम कर्ण है।



उदाहरण—जैसे प्रश्न हुआ कि जिस जात्य त्रिभुजमें कोटि=४, भुज=३ है वहाँका कर्णमान क्या होगा? तथा भुज और कर्ण जानकर कोटि बताओ और कोटि, कर्ण जानकर भुज बताओ।

उक्त रीतिसे ४ का वर्ग १६ और ३ का वर्ग ९, दोनोंके योग २५ का मूल ५ यह कर्ण हुआ। एवं कर्ण ५ और भुज ३, इन दोनोंके वर्गान्तर २५-९=१६, इसका मूल ४ कोटि हुई तथा कर्णके वर्ग २५ में कोटिके वर्ग १६ को घटाकर शेष ९ का मूल ३ भुज हुआ।

इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये।

३. जैसे ३ और ४ ये दो राशियाँ हैं। इन दोनोंके दूने गुणनफलमें ३×४×२=२४ में दोनों राशियोंका अन्तर वर्ग (४-३)^{२}=(१)^{२}=१ मिलानेसे २४+१=२५ यह दोनों राशियोंके वर्गयोग (३)^{२}+(४)^{२}=९+१६=२५ के बराबर है तथा उन्हीं दोनों राशियोंके योगान्तर घात (३+४)×(४-३)=७×१=७ यह दोनों राशियोंके वर्गान्तर १६-९=७ के बराबर है। (^{२}यह निशान वर्गका है।

व्यास आकृतिसंक्षुण्णोऽद्र्यासः स्यात् परिधिर्मुने ॥ ४६ ॥[1]
ज्याव्यासयोगविवराहतमूलोनितोऽर्धितः ।
व्यासः शरः शरोनाच्च व्यासाच्छरगुणात् पदम् ॥ ४७ ॥
द्विघ्नं जीवाथ जीवार्धवर्गे शरहृते युते।
व्यासो वृत्ते भवेदेवं प्रोक्तं गणितकोविदैः ॥ ४८ ॥

मुने! व्यासको २२ से गुण देना और ७ से भाग देना चाहिये, इससे स्थूल परिधिका ज्ञान होता है[2] ॥ ४६ ॥ ज्या (जीवा) और व्यासका योग एक जगह रखना और अन्तरको दूसरी जगह रखना चाहिये। फिर इन दोनोंका घात (गुणा) करना

१. नारदपुराणके इस गणितविभागमें क्षेत्रव्यवहारकी चर्चामात्र होकर दूसरे विषय आ गये हैं; त्रिभुजादि क्षेत्रफलका विवेचन न होनेसे यह प्रकरण अधूरा-सा लगता है। जान पड़ता है, इस विषयके श्लोक लेखकके प्रमादसे छूट गये हैं; अतः टिप्पणीमें संक्षेपतः उक्त न्यूनताकी पूर्ति की जाती है।

त्रिभुजे भुजयोर्योगस्तदन्तरगुणो हृतः । भुवा लब्ध्या युतोना भूर्द्विघ्ना च दलिता पृथक् ॥
आबाधे भुजयोर्ज्ञेये क्रमशश्चाधिकाल्पयोः । स्वाबाधाभुजयोर्वर्गान्तरान्मूलं च लम्बकः ॥
लम्बभूमिहतेरर्धं प्रस्फुटं त्रिभुजे फलम् । ततो बहुभुजान्तःस्थत्रिभुजेभ्यश्च तत्फलम् ॥

(त्रिभुजादि क्षेत्रफलानयन) त्रिभुजका फल जानना हो तो उसके तीन भुजोंमें एक को भूमि और शेष दोको भुज मानकर क्रिया करे। यथा—दोनों भुजके योगको उन्हीं दोनोंके अन्तरसे गुणा करके गुणनफलमें भूमिसे भाग देनेपर जो लब्धि हो, उसको भूमिमें जोड़कर आधा करे तो बड़े भुजकी 'आबाधा' होती है और उसी लब्धिको भूमिमें घटाकर आधा करनेसे लघुभुजकी 'आबाधा' होती है। अपने-अपने भुज और आबाधाके 'वर्गान्तर' करके शेषका मूल लेनेसे लम्बका मान प्रकट होता है। लम्ब और भूमिके गुणनफलका आधा त्रिभुजका क्षेत्रफल होता है।

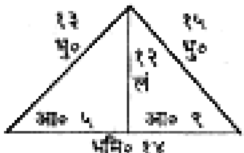
उदाहरण—कल्पना कीजिये कि किसी त्रिभुजमें तीनों भुजोंके मान क्रमसे १३, १४, १५ हैं तो उस त्रिभुजका क्षेत्रफल क्या होगा? तो यहाँ १४ को भूमि और १३, १५ को भुज मानकर क्रिया होगी। यथा—दोनों भुजके योग २८ को उन्हीं दोनोंके अन्तर २ से गुणा करनेपर ५६ हुआ। इसमें भूमि १४ के द्वारा भाग देनेसे लब्धि ४ हुई। इस चारको भूमि १४ में जोड़कर आधा करनेसे ९ हुआ—यह बड़े भुजकी 'आबाधा' का मान है। एवं भूमिमें लब्धिको घटाकर आधा करनेसे ५ हुआ। यह लघुभुजकी 'आबाधा' हुई। भुज और आबाधाके वर्गान्तर (२२५-८१=१४४) अथवा (१६९-२५=१४४) का मूल १२ हुआ। यह लम्बका मान है। लम्ब और भूमिके गुणनफल (१२×१४)=१६८ का आधा ८४ हुआ, यह उक्त त्रिभुजका क्षेत्रफल है।

इस प्रकार त्रिभुज फलानयनकी रीति जानकर बहुभुजक्षेत्रमें एक कोणसे दूसरे कोणतक कर्णरेखाको भूमि और उसके आश्रित दो भुजोंको भुज मानकर फल निकाला जायगा। चतुर्भुजमें दोनों त्रिभुजोंके फलको जोड़नेसे क्षेत्रफलकी सिद्धि होगी एवं पञ्चभुजमें ३ त्रिभुज बनेंगे और उन तीनों त्रिभुजोंके फलोंका योग करनेसे फल सिद्ध होगा। इसी प्रकार षड्भुज आदिमें भी समझना चाहिये।

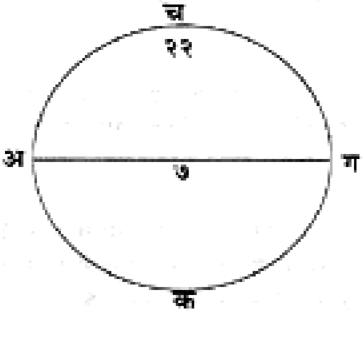
विशेष वक्तव्य—तीन रेखाओंसे बना हुआ क्षेत्र त्रिभुज कहलाता है। उन तीनों रेखाओंमें नीचेकी रेखाको भूमि और दोनों बगलकी दो रेखाओंको 'भुज' कहते हैं।

(लम्ब—) ऊपरके कोणसे भूमितक सीधी रेखाको लम्ब कहते हैं।

(आबाधा—) लम्बसे विभक्त भूमिके खण्ड (जो लम्बके दोनों ओर हैं) दोनों भुजोंकी 'आबाधा' कहलाते हैं। निम्नाङ्कित क्षेत्रमें स्पष्ट देखिये—



वृत्तक्षेत्रमें परिधि और व्यासके गुणनफलका चतुर्थांश क्षेत्रफल होता है। जैसे—



जिस वृत्तक्षेत्रमें व्यासमान ७ और परिधि २२ है, उसका क्षेत्रफल जानना है तो परिधि २२ को व्यास ७ से गुणा करनेपर १५४ हुआ। इसका चतुर्थांश $३८\frac{१}{२}$ होता है। यही क्षेत्रफल हुआ।

२. जैसे पूछा गया कि जिस वृत्तक्षेत्रका व्यास १४ है वहाँ परिधिका मान क्या होगा तथा जिसमें ४४ परिधि है, वहाँ व्यासमान क्या होगा? तो उक्त रीतिके अनुसार व्यास १४ को २२ से गुणा करके गुणनफलमें ७से भाग देनेपर $=\frac{२२\times१४}{७}=४४$ परिधिमान स्थूल हुआ।

चाहिये। उस गुणनका मूल लेना और उसको व्यासमें घटा देना चाहिये। फिर उसका आधा करे, वही 'शर' होगा। व्यासमें शरको घटाना, अन्तरको शरसे गुण देना, उसका मूल लेना और उसे दूना करना चाहिये तो 'जीवा' हो जायगी। जीवाका आधा करके उसका वर्ग करना, शरसे भाग देना और लब्धिमें शरको जोड़ देना चाहिये, तो व्यासका मान होगा[1] ॥ ४७-४८ ॥

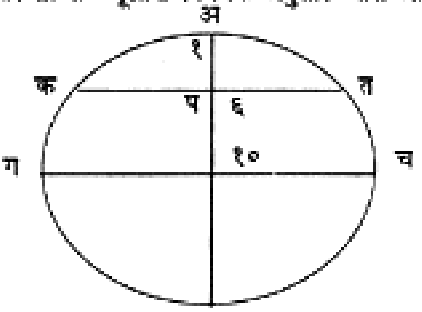
चापोननिघ्नः परिधिः प्रागाख्यः परिधेः कृतेः।
तुर्यांशेन शरघ्नेनाद्योनेनाद्यं चतुर्गुणम् ॥ ४९ ॥
व्यासघ्नं प्रभजेद्विप्र ज्यका संजायते स्फुटा।
ज्याङ्घ्रीषुघ्नो वृत्तवर्गोऽब्धिघ्नव्यासाढ्यमौर्विहृत् ॥ ५० ॥
लब्धोनवृत्तवर्गाङ्घ्रेः पदेऽर्धात् पतिते धनुः।

परिधिसे चापको घटाकर शेषमें चापसे ही गुणा करनेपर गुणनफल 'प्रथम' कहलाता है। परिधिका वर्ग करना, उसका चौथा भाग लेना, उसे पाँचसे गुणा करना और उसमें 'प्रथम' को घटा देना चाहिये। यह भाजक होगा। चतुर्गुणित व्यासको प्रथमसे गुण देना, यह भाज्य हुआ। भाज्यमें भाजकसे भाग देना, यह जीवा हो जायगी[2] ॥ ४९ $\frac{१}{२}$ ॥ व्यासको चारसे गुणा करके उसमें जीवाको जोड़ देना, यह भाजक हुआ। परिधिके वर्गको जीवाकी चौथाई और पाँचसे गुण देना, यह भाज्य हुआ। भाजकसे भाज्यमें भाग देना, जो लब्धि आवे, उसे परिधिवर्गके चतुर्थांशमें घटा देना और शेषका मूल लेना, उसे वृत्त (परिधि) के आधेमें घटा देनेपर तो धनु (चाप) होगा[3] ॥ ५० $\frac{१}{२}$ ॥

---

१. उदाहरणार्थ प्रश्न—जिस 'वृत्त' का व्यास १० है, उसमें यदि 'जीवा' का मान ६ है तो 'शर' का मान क्या होगा? 'शर' का ज्ञान हो तो जीवा बताओ तथा 'जीवा' और 'शर' जानकर व्यासका मान बताओ।

उत्तर-क्रिया—मूलोक्त नियमके अनुसार व्यास और जीवाका योग १०+६=१६ हुआ। व्यास और जीवाका अन्तर १०-६=४



हुआ। दोनोंका गुणनफल १६×४=६४ हुआ। इसका मूल ८ हुआ। इसे व्यास १० में घटाया तो २ हुआ। इसका आधा किया तो १ 'शर' (बाण) हुआ। व्यास १० में शर १ घटाया तो ९ हुआ। इसे शर १ से गुणा किया तो ९ हुआ। इसका मूल लिया तो ३ हुआ। इसे द्विगुण किया तो ६ जीवाका प्रमाण हुआ। इसी तरह 'जीवा' और 'शर' का ज्ञान होनेपर जीवा ६ के आधे ३ का वर्ग किया तो ९ हुआ। इसमें शर १ से भाग दिया और लब्धिमें शरको जोड़ दिया तो $\frac{९}{१}+\frac{१}{१}$ =१० हुआ। यही व्यासका मान है।

२. उदाहरण—जिस वृत्तका व्यासार्ध १२० (अर्थात् व्यास २४०) है, उस वृत्तके अष्टादशांश क्रमसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ से गुणित यदि चापमान हों तो अलग-अलग सबकी जीवा बताओ।

उत्तर—क्रिया—व्यासमान २४०। इसपरसे परिधि ७५४। इसका अठारहवाँ भाग ४२ क्रमसे एकादि गुणित ४२, ८४, १२६, १६८, २१०, २५२, २९४, ३३६ और ३७८—ये ९ प्रकारके चापमान हुए। मूल-सूत्रके अनुसार इन चाप और परिधिपरसे जो जीवाओंके मान होंगे, वे ही किसी तुल्याङ्कसे अपवर्तित चाप और अपवर्तित परिधिसे भी होंगे। अतः ४२ से अपवर्तन करनेपर परिधि १८ तथा चापमान १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ हुए। अब प्रथम जीवामान साधन करना है, तो प्रथम अपवर्तित चाप १ को परिधिसे घटाकर शेषको चाप १ से गुणा करनेपर १७ यह 'प्रथम' या 'आद्य' संज्ञक हुआ। तथा परिधिवर्ग चतुर्थांशको ५ से गुणा कर $\frac{३२४\times५}{४}$=४०५ इसमें आद्य १७ को घटाकर शेष ३८८ से चतुर्गुणित व्यासद्वारा गुणित 'प्रथम' में भाग देनेसे $\frac{२४०\times४\times१७}{३८८}$=४२ लब्धि हुई। यह (स्वल्पान्तरसे) प्रथम जीवा हुई। एवं द्वितीय चाप २ को परिधिमें घटाकर शेषको चापसे गुणा कर देनेपर ३२ यह 'प्रथम' या 'आद्य' हुआ। इसे पञ्चगुणित परिधिवर्गके चतुर्थांश ४०५ में घटाकर शेष ३७३ से चतुर्गुणित व्यासद्वारा गुणित 'प्रथम' में भाग देनेपर $\frac{२४०\times४\times३२}{३७३}$ =८२ लब्धि हुई। स्वल्पान्तरसे यही द्वितीय जीवा हुई। इसी प्रकार अन्य जीवाका भी साधन करना चाहिये।

३. अब जीवामान जानकर चापमान जाननेकी विधि बताते हैं—जैसे प्रश्न हुआ कि २४० व्यासवाले वृत्तमें जीवामान ४२ और ८२ है तो इनके चापमान क्या होंगे? (उत्तर—क्रिया—) यथा—जीवा ८२। वृत्त व्यास २४०। यहाँ लाघवके लिये परिधिमान अपवर्तित ही लिया; अतः इसपरसे भी चापमान अपवर्तित ही आवेंगे। अब श्लोकानुसार परिधिवर्ग ३२४ को जीवाके चतुर्थांश ८२/४ और ५ से गुणा करनेपर $\frac{३२४\times८२\times५}{४}$ =८१×८२×५=३३२१० हुआ। इसमें चतुर्गुणित व्याससे युक्त जीवा १०४२ द्वारा भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ३२ हुई। इसे परिधिवर्गके चतुर्थांश ८१ में घटानेसे ४९ हुआ। इसका मूल ७ हुआ। इसे अपवर्तित परिधिके आधे ९ में घटानेसे शेष २ यह अपवर्तित द्वितीय चाप हुआ। अतः अपवर्तनाङ्क ४२ से गुणा कर देनेपर वास्तविक चाप २×४२=८४ हुआ।

स्थूलमध्याण्वन्नवेधो वृत्ताङ्कांशेशभागिकः ॥ ५१ ॥
वृत्ताङ्गांशकृतिर्वेधनिघ्नी घनकरा मिती।
वारिव्यासहतं दैर्घ्यं वेधाङ्गुलहतं पुनः ॥ ५२ ॥
खखेन्दुरामविहृतं मानं द्रोणादि वारिणः।
विस्तारायामवेधानामङ्गुल्योऽन्योन्यताडिताः ॥ ५३ ॥
रसाङ्काभ्राब्धिभिर्भक्ता धान्ये द्रोणादिका मितिः।
उत्सेधव्यासदैर्घ्याणामङ्गुलान्यश्मनो द्विज ॥ ५४ ॥
मिथोघ्नानि भजेत् खाक्षेशैर्द्रोणादिमितिर्भवेत्।
विस्ताराद्यङ्गुलान्येवं मिथोघ्नान्ययसां भवेत् ॥ ५५ ॥
बाणेभमार्गणैर्लब्धं द्रोणाद्यं मानमादिशेत्।

(अन्नादि राशि-व्यवहार) राशि-व्यवहारमें स्थूल, मध्यम, सूक्ष्म, अन्नराशियोंमें क्रमशः उनकी परिधिका नवमांश, दशमांश और एकादशांश वेध होता है। परिधिका षष्ठांश लेकर उसका वर्ग करना और उसे वेधसे गुण देना चाहिये। उसका नाम 'घनहस्त' होगा[1]। जलके व्यास (चौड़ाई)-से लंबाईको गुण देना, फिर उसीको गहराईके अंगुल-मानसे गुण देना तथा ३१०० से भाग देना चाहिये। इससे जलका द्रोणात्मक मान ज्ञात होगा[2] ॥ ५१-५२ $\frac{१}{२}$ ॥ चौड़ाई, गहराई और लंबाईके अंगुलात्मक मानको परस्पर गुण देना और उसमें ४०९६ से भाग देना तो अन्नका द्रोणादि मान होगा[3]। ऊँचाई, व्यास (चौड़ाई) और लंबाईके अंगुलात्मक मानको परस्पर गुण देना और ११५० से भाग देना चाहिये; वह पत्थरका द्रोणात्मक मान होगा।[4] विस्तार आदिके अंगुलात्मक मानको परस्पर गुणा करना चाहिये और ५८५ से भाग देना चाहिये, तो लब्धि लोहेके द्रोणात्मक मानका सूचक होती है[5] ॥ ५३—५५ $\frac{१}{२}$ ॥

---

१. उदाहरणके लिये प्रश्न—समतल भूमिमें रखे हुए स्थूल धान्यकी परिधि यदि ६० हाथ है तो उसमें कितने घनहस्त (खारी-प्रमाण) होंगे? तथा सूक्ष्म धान्य और मध्यम धान्यकी परिधि भी यदि ६० हाथ हों तो उनके अलग-अलग खारी-प्रमाण क्या होंगे?

उत्तर-क्रिया—मूलोक्त नियमके अनुसार परिधि-मानका दशमांश ६ यह मध्यम धान्यका वेध हुआ। परिधिके षष्ठांश १० के वर्गको वेधसे गुणा करनेपर १००×६=६०० घनहस्त-मान हुए। एवं सूक्ष्म धान्यका वेध $\frac{६०}{११}$ है। इससे परिधिके षष्ठांशके वर्ग १०० को गुण देनेसे सूक्ष्म धान्यके घनहस्त-मान $\frac{६०००}{११}$= ५४५ $\frac{५}{११}$ हुए। तथा स्थूल धान्यका वेध $\frac{६०}{९}$ है। इससे परिधिके षष्ठांशके वर्गको गुण देनेपर स्थूल धान्यके घनहस्त-मान $\frac{६०००}{९}$= ६६६ $\frac{२}{३}$ हुए।

२. उदाहरणार्थ प्रश्न—किसी बावलीकी लंबाई ६२ हाथ, चौड़ाई २० हाथ और गहराई १० हाथ है तो बताओ, उस बावलीमें कितने द्रोण जल है?

उत्तर—यहाँ मूलोक्त नियमके अनुसार इस प्रश्नको यों हल करना चाहिये—पहले हाथके मापको अंगुलके मापमें परिणत करनेके लिये उसे २४ से गुणा करना चाहिये। ६२×२४=१४८८ अंगुल लंबाई है। २०×२४=४८० अंगुल चौड़ाई है। १०×२४=२४० अंगुल गहराई है। इन तीनोंके परस्पर गुणनसे १४८८×४८०×२४०=१७१४१७६०० गुणनफल हुआ। इसमें ३१०० से भाग दिया तो $\frac{१७१४१७६००}{३१००}$=५५२९६ लब्धि हुई। इतने ही द्रोण जल उस बावलीमें है।

३. उदाहरणके लिये प्रश्न—किसी अन्न-राशिकी लंबाई ६४ अंगुल, चौड़ाई ३२ अंगुल और ऊँचाई १६ अंगुल है तो उसका द्रोणात्मक मान क्या है? अर्थात् वह अन्नराशि कितने द्रोण होगी?

मूलकथित नियमके अनुसार ६४×३२×१६ इनके परस्पर गुणनसे ३२७६८ गुणनफल हुआ। इसमें ४०९६ से भाग देनेपर $\frac{३२७६८}{४०९६}$=८ लब्धि हुई। उत्तर निकला कि वह अन्नराशि ८ द्रोण है।

४. उदाहरणके लिये प्रश्न—किसी पत्थरके टुकड़ेकी लंबाई २३, चौड़ाई २० और ऊँचाई १० अंगुल है तो वह पत्थर कितने द्रोण वजनका है? (उत्तर) मूलोक्त नियमके अनुसार लंबाई आदिको परस्पर गुणित किया—२३×२०×१० तो गुणनफल ४६०० हुआ। इसमें ११५० से भाग देनेपर लब्धि ४ हुई। अतः ४ द्रोण उस पत्थरके टुकड़ेका मान होगा।

५. जैसे किसीने पूछा—किसी लोह-खण्डकी लंबाई ११७ अंगुल, चौड़ाई १०० अंगुल और ऊँचाई ५ अंगुल है तो उसका वजन कितने द्रोण होगा? (उत्तर) लंबाई आदिको परस्पर गुणित किया—११७×१००×५=५८५०० इस गुणनफलमें ५८५ से भाग दिया $\frac{५८५००}{५८५}$=१०० लब्धि हुई। अतः १०० द्रोण उस लोहेका परिमाण है।

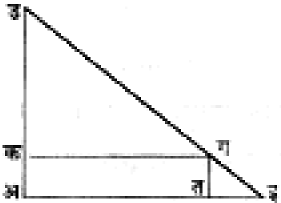
दीपशङ्कुतलच्छिद्रघ्नः शङ्कुर्भा भवेन्मुने ॥ ५६ ॥
नरोनदीपकशिखौच्च्यभक्तो ह्यथ भोद्धृते।
शङ्कौ नृदीपाधश्छिद्रघ्ने दीपौच्च्यं नरान्विते ॥ ५७ ॥
विशङ्कुदीपौच्च्यगुणा छाया शङ्कूद्धृता भवेत्।
दीपशङ्क्वन्तरं चाथच्छायाग्रविवरघ्नभा ॥ ५८ ॥
मानान्तरहृता भूमिः स्यादथो भूनराहतिः।
प्रभाप्ता जायते दीपशिखौच्च्यं स्यात् त्रिराशिकात् ॥ ५९ ॥
एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं गणिते परिकर्मकम्।
ग्रहमध्यादिकं वक्ष्ये गणिते नातिविस्तरात् ॥ ६० ॥

छाया-साधनमें प्रदीप और शङ्कुतलका जो अन्तर हो उससे शङ्कुको गुण देना और दीपककी ऊँचाईमें शङ्कुको घटाकर उससे उस गुणित शङ्कुमें भाग देना तो छायाका मान होगा[1]। शङ्कु और दीपतलके अन्तरसे शङ्कुको गुण देना और छायासे भाग देना; फिर लब्धिमें शङ्कुको जोड़ देना तो दीपककी ऊँचाई हो जायगी[2]। शङ्कुरहित दीपककी ऊँचाईसे छायाको गुण देना और शङ्कुसे भाग देना और तो शङ्कु तथा दीपकका अन्तर ज्ञात होगा[3]। छायाग्रके अन्तरसे छायाको गुण देना छायाके प्रमाणान्तरसे भाग देना तो 'भू' होगी। 'भू' और शङ्कुका घात (गुणा) करना और छायासे भाग देना तो दीपककी ऊँचाई होगी[4]। उपर्युक्त सब बातोंका ज्ञान त्रैराशिकसे ही होता है। यह परिकर्मगणित मैंने संक्षेपसे कहा। अब ग्रहका मध्यादिक गणित बताता हूँ, वह भी अधिक विस्तारसे नहीं ॥ ५६-६० ॥

---

१. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—शङ्कु और दीपके बीचकी भूमिका मान ३ हाथ और दीपककी ऊँचाई ७/२ हाथ है तो बारह अंगुल (१/२ हाथ) शङ्कुकी छाया क्या होगी?

इस क्षेत्रमें 'अ' से 'उ' तक दीपककी ऊँचाई है। 'ग' से 'त' तक शङ्कु है। 'अ' 'त'-'क' 'ग'-शङ्कु और दीपतलका अन्तर है।



यहाँ शङ्कुको शङ्कु-दीपान्तर-भूमि-मानसे गुणा किया तो १/२×३=३/२ यह गुणनफल हुआ। फिर दीपककी ऊँचाईमें शङ्कुको घटाया तो $\frac{१}{२}-\frac{१}{२}$=३ यह शेष हुआ। पूर्वोक्त गुणनफल ३/२ में शङ्कु घटायी हुई दीपककी ऊँचाई ३ से भाग दिया तो १/२ लब्धि हुई। यही छायाका मान है।

२. यदि शङ्कु १/२ हाथ, शङ्कुदीपान्तर भूमि ३ हाथ और छाया १६ अंगुल है तो दीपकी ऊँचाई कितनी होगी? इस प्रश्नका उत्तर यों है—शङ्कुको शङ्कुदीपान्तरसे गुणा किया तो १/२×३=३/२ हुआ। इसमें छाया १६ अंगुल अर्थात् २/३ हाथसे भाग दिया तो ३/२÷२/३=३/२×३/२=९/४ हुआ। इसमें शङ्कु १/२ को जोड़ दिया तो ११/४=२ ३/४ हाथ दीपककी ऊँचाई हुई।

३. उपर्युक्त दीपककी ऊँचाई ११/४ मेंसे शङ्कु १/२ को घटाया तो ११/४-१/२=९/४ शेष हुआ। इससे छायाको गुणित किया तो ९/४×२/३=१/२ हुआ, इसमें शङ्कुसे भाग दिया तो ३ लब्धि हुई। अतः शङ्कु और दीपके बीचकी भूमि ३ हाथकी है।

४. अभ्यासार्थ प्रश्न—१२ अंगुलके शङ्कुकी छाया १२ अंगुल थी, फिर उसी शङ्कुको छायाग्रकी ओर २ हाथ बढ़ाकर रखनेसे दूसरी छाया १६ अंगुल हुई तो छायाग्र और दीपतलके बीचकी भूमिका मान कितना होगा? तथा दीपकी ऊँचाई कितनी होगी?

उत्तर—यहाँ प्रथम शङ्कुसे दूसरे शङ्कुतक भूमिका मान २ हाथ। प्रथम छाया १/२ हाथ, द्वितीय छाया २/३ हाथ। शङ्कु-अन्तर २ में प्रथम छाया १/२ को घटाकर शेष ३/२ में द्वितीय छाया २/३ को जोड़नेसे १३/६ यह छायाग्रोंका अन्तर हुआ। तथा छायान्तर २/३-१/२=१/६ हुआ। अब मूलोक्त नियमके अनुसार प्रथम छाया १/२ को छायाग्रान्तरसे गुणा किया तो १/२×१३/६=१३/१२ हुआ। इसमें छायान्तर १/६ से भाग दिया तो १३/१२×६/१=१३/२ (या ६ १/२) यह प्रथम भूमिमान हुआ। इसी प्रकार द्वितीय छाया २/३ से छायाग्रान्तर १३/६ को गुणा करके छायान्तर १/६ से भाग देनेपर द्वितीय भूमिमान २६/३ हुआ। तथा प्रथम भूमिमान १३/२ को शङ्कुसे गुणा कर गुणनफल १३/४ में प्रथम छायासे भाग देनेपर लब्धि १३/२ यह दीपककी ऊँचाई हुई। इसी प्रकार द्वितीय भूमिसे भी दीपककी ऊँचाई इतनी ही होती है।



युगमानं स्मृतं विप्र खचतुष्करदार्णवाः।
तद्दशांशास्तु चत्वारः कृताख्यं पदमुच्यते॥६१॥
त्रयस्त्रेता द्वापरो द्वौ कलिरेकः प्रकीर्तितः।
मनुः कृताब्दसहिता युगानामेकसप्ततिः॥६२॥
विधेर्दिने स्युर्विप्रेन्द्र मनवस्तु चतुर्दश।
तावत्येव निशा तस्य विप्रेन्द्र परिकीर्तिता॥६३॥
स्वयम्भुवः सृष्टिगतानब्दान् सम्पिण्ड्य नारद।
खचरानयनं कार्यमथवेष्टयुगादितः॥६४॥

विप्रवर! चारों युगोंका सम्मिलित मान तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष बतलाया गया है। उसके दशांशमें चारका गुणा करनेपर सत्ययुग नामक पाद होगा। (उसका मान १७ लाख २८ हजार वर्ष है)। दशांशमें तीनका गुणा करनेपर (१२९६००० वर्ष) त्रेता नामक पाद होता है। दशांशमें दोका गुणा करनेपर (८६४००० वर्ष) द्वापर नामक पाद होता है और उक्त दशांशको एकगुना ही रखनेपर (४३२००० वर्ष) कलियुग नामक पाद कहा गया है। कृताब्दसहित (एक सत्ययुग अधिक) इकहत्तर चतुर्युगका एक मन्वन्तर होता है॥६१-६२॥ ब्रह्मन्! ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं और उतने ही समयकी उनकी एक रात्रि होती है॥६३॥ नारद! ब्रह्माजीके वर्तमान कल्पमें जितने वर्ष बीत गये हैं, उन्हें एकत्र करके ग्रहानयन (ग्रह-साधन) करना चाहिये। अथवा इष्ट युगादिसे ग्रह-साधन करे॥६४॥

युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः।
कुजार्किगुरुशीघ्राणां भगणाः पूर्वयायिनाम्॥६५॥
इन्दो रसाग्नित्रित्रीषुसप्तभूधरमार्गणाः।
दस्त्रत्र्यष्टरसाङ्काक्षिलोचनानि कुजस्य तु॥६६॥
बुधशीघ्रस्य शून्यर्तुखाद्रित्र्यङ्कनगेन्दवः।
बृहस्पतेः खदस्राक्षिवेदषड्वह्नयस्तथा॥६७॥
सितशीघ्रस्य षट्सप्तत्रियमाश्विखभूधराः।
शनेर्भुजङ्गषट्पञ्चरसवेदनिशाकराः॥६८॥
चन्द्रोच्चस्याग्निशून्याश्विवसुसर्पार्णवा युगे।
वामं पातस्य वस्वग्नियमाश्विशिखिदस्रकाः॥६९॥

एक युगमें पूर्व दिशाकी ओर चलते हुए सूर्य, बुध और शुक्रके ४३२०००० 'भगण' होते हैं। तथा मङ्गल, शनि और बृहस्पतिके शीघ्रोच्च भगण भी उतने ही होते हैं॥६५॥ एक युगमें चन्द्रमाके भगण ५७७५३३३६ होते हैं। भौमके २२९६८३२, बुधके शीघ्रोच्चके १७९३७०६०, बृहस्पतिके ३६४२२०, शुक्रके शीघ्रोच्चके ७०२२३७६, शनिके १४६५६८ तथा चन्द्रमाके उच्चके भगण ४८८२०३ होते हैं। चन्द्रमाके पातकी वामगतिसम्बन्धी भगणोंकी संख्या २३२२३८ है॥६६—६९॥

उदयादुदयं भानोर्भूमिसावनवासराः।
वसुद्व्यष्टाद्रिरूपाङ्कसप्ताद्रितिथयो युगे॥७०॥
षड्वह्नित्रिहुताशाङ्कतिथयश्चाधिमासकाः।
तिथिक्षया यमार्थाश्विद्व्यष्टव्योमशराश्विनः॥७१॥
खचतुष्कसमुद्राष्टकुपञ्च रविमासकाः।
षट्त्र्यग्नित्रयवेदाग्निपञ्च शुभ्रांशुमासकाः॥७२॥
प्राग्गतेः सूर्यमन्दस्य कल्पे सप्ताष्टवह्नयः।
कौजस्य वेदखयमा बौधस्याष्टर्तुवह्नयः॥७३॥
खखरन्ध्राणि जैवस्य शौक्रस्यार्थगुणेषवः।
गोऽग्नयः शनिमन्दस्य पातानामथ वामतः॥७४॥
मनुदस्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्टसागराः।
कृताद्रिचन्द्रा जैवस्य शौक्रस्याग्निखनन्दकाः॥७५॥
शनिपातस्य भगणाः कल्पे यमरसर्तवः।

सूर्यके एक उदयसे दूसरे उदयपर्यन्त जो दिनका मान होता है, उसे भौमवासर या सावन वासर कहते हैं। वे एक महायुग (चतुर्युग)-में १५७७९१७८२८ होते हैं। (चान्द्र दिवस १६०३०००८० होते हैं)। अधिमास १५९३३३६ होते हैं तथा तिथिक्षय २५०८२२५२ होते हैं॥७०-७१॥ रविमासोंकी संख्या ५१८४०००० है। चान्द्र मास ५३४३३३३६ होते हैं॥७२॥ पूर्वाभिमुख

गतिके क्रमसे एक कल्पमें सूर्यके मन्दोच्च भगण ३८७, मङ्गलके मन्दोच्च भगण, २०४, बुधके मन्दोच्च ३६८, गुरुके मन्दोच्च ९००, शुक्रके मन्दोच्च ५३५ तथा शनिके मन्दोच्च भगण ३९ होते हैं। अब मङ्गल आदि ग्रहोंके पातोंकी विलोमगति (पश्चिम-गमन)-के अनुसार एक कल्पमें होनेवाले भगण बताये जाते हैं॥ ७३-७४॥ भौमपातके भगण २१४, बुधपातके भगण ४८८, गुरुपातके भगण १७४, भृगुपातके भगण ९०३ तथा शनिपातके भगण ६६२ होते हैं॥ ७५ $\frac{१}{२}$ ॥

वर्तमानयुगे याता वत्सरा भगणाभिधाः॥ ७६॥
मासीकृता युता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतैः।
पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्नाः सूर्यमासविभाजिताः॥ ७७॥
लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विताः।
द्विष्ठास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिताः॥ ७८॥
लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामार्धरात्रिकः।
सावनो द्युगणः सूर्याद् दिनमासाब्दपास्ततः॥ ७९॥
सप्तभिः क्षयितः शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः।
मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम्॥ ८०॥
सप्तोद्धृतावशेषौ तौ विज्ञेयौ मासवर्षपौ।

वर्तमान युग (जिस युगमें, जिस समयके अहर्गण या ग्रहादिका ज्ञान करना हो उस समय)-में सृष्ट्यादि काल या युगादिकालसे अबतक जितने वर्ष बीत चुके हों, वे सूर्यके भगण होते हैं। भगणको बारहसे गुणा करके मास बनाना चाहिये। उसमें 'वर्तमान वर्षके' चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे लेकर वर्तमान मासतक जितने मास बीते हों, उनकी संख्या जोड़कर योगफलको दो स्थानोंमें रखना चाहिये। द्वितीय स्थानमें रखे हुए मासगणको युगके उपर्युक्त अधिमासोंकी संख्यासे गुणा करके गुणनफलमें युगके सूर्यमासोंकी संख्यासे भाग दे। फिर जो लब्धि हो, उसे अधिमासकी संख्या माने और उसको प्रथम स्थानस्थित मासगणमें जोड़े। (योगफल बीते हुए चान्द्रमासोंकी संख्याका सूचक होता है) उस संख्याको तीससे गुणा करे (तो गुणनफल तिथि-संख्याका सूचक होता है), उसमें वर्तमान मासकी शुक्ल प्रतिपदासे इष्टतिथितककी संख्या जोड़े, (जोड़नेसे चान्द्र दिनकी संख्या ज्ञात होती है) इसको भी दो स्थानोंमें रखे। दूसरे स्थानमें स्थित संख्याको युगके लिये कथित तिथिक्षय-संख्यासे गुणा करे। गुणनफलमें युगकी चान्द्र दिन (तिथि) संख्याके द्वारा भाग दे। जो लब्धि हो, वही तिथिक्षय-संख्या है, उसको प्रथम स्थानमें स्थित चान्द्र दिन-संख्यामेंसे घटा दे तो अभीष्ट दिनका लंकार्धरात्रिकालिक सावन दिनगण (अहर्गण) होता है[१]। इससे दिनपति, मासपति और वर्षपतिका ज्ञान करे॥ ७६—७९॥ यथा—दिनगणमें ७ से भाग देनेपर शेष बचे हुए १ आदि संख्याके अनुसार रवि

१. इस प्रकार अहर्गण-साधनमें कदाचित् एक दिन अधिक या न्यून भी होता है, उस स्थितिमें १ घटाकर या जोड़कर अहर्गण ग्रहण करे।

कलियुगादिसे अहर्गणका उदाहरण—शाके १८७५ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा शुक्रवारको अहर्गण बनाना है तो कलियुगादिसे गत युधिष्ठिरसंवत्‌को वर्षसंख्या ३१७९ में शाके १८७५ जोड़नेसे ५०५४ हुआ; इसको १२ गुणा करनेसे ६०६४८ हुआ। इसमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे गत मास-संख्या ७ जोड़नेपर ६०६५५ सौर मासगण हुए। इसको पृथक् युगकी अधिमास-संख्या १५९३३३६ से गुणा करनेपर ९६६४३७९५०८० हुआ। इसमें युगकी सौर माससंख्या ५१८४०००० से भाग देनेपर लब्धि अधिमास-संख्या १८६४ को पृथक्स्थित और मासगण ६०६५५ में जोड़नेसे ६२५१९ यह चान्द्र मास-संख्या हुई। इसको ३० से गुणा करके गुणनफलमें तिथिसंख्या १५ जोड़नेसे १८७५५८५ यह चान्द्र दिनसंख्या हुई। इसको युगकी क्षय-तिथिसंख्या २५०८२२५२ से गुणा करके गुणनफल ४७०४३८९५६१७४२० में युगकी चान्द्र दिनसंख्या १६०३००००८० से भाग देनेपर लब्धि तिथिक्षयसंख्या २९३४७ को उपर्युक्त चान्द्र दिनसंख्या १८७५५८५ में घटानेसे १८४६२३८ अहर्गण हुए। इसमें ७ का भाग देनेसे २ शेष बचते हैं; जिससे शुक्र आदि गणनाके अनुसार शनिवार आता है; किंतु होना चाहिये १ शेष (शुक्रवार); इसलिये इसमें १ घटाकर वास्तविक अहर्गण १८४६२३७ हुआ। प्रस्तुत उदाहरणमें पूर्णिमाका क्षय होनेके कारण १ दिनका अन्तर पड़ा है।

आदि वारपति समझने चाहिये। तथा दिनगणमें ३० से भाग देकर लब्धिको २ से गुणा करके गुणनफलमें १ जोड़ दे। फिर उसमें ७ से भाग देकर १ आदि शेष होनेपर रवि आदि मासपति समझे। इसी प्रकार दिनगणमें ३६० से भाग देकर लब्धिको ३ से गुणा करके गुणनफलमें १ जोड़े, फिर उसमें ७ से भाग देनेपर १ आदि शेष संख्याके अनुसार रवि आदि 'वर्तमान' वर्षपति होते हैं[१] ॥ ८० $\frac{१}{२}$ ॥

ग्रहस्य भगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः ॥ ८१ ॥
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत्।
एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः ॥ ८२ ॥
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद् विशोधिताः।

(**मध्यमग्रहज्ञान**)—युगके लिये कथित भगणकी संख्यासे दिनगणको गुणा करे। गुणनफलमें युगकी कुदिन (सावनदिन)-संख्यासे भाग देनेपर भगणादि[२] ग्रह लंकार्धरात्रिकालिक होता है। इसी प्रकार पूर्वाभिमुख गतिवाले जो शीघ्रोच्च और मन्दोच्च कहे गये हैं, उनके भगणके द्वारा उनका भी साधन होता है[३]। विलोम (पश्चिमाभिमुख) गतिवाले जो ग्रहोंके पातभगण कहे गये हैं, उनके द्वारा इसी प्रकार जो पात सिद्ध हों, उनको १२ राशिमें घटानेसे शेषको मेषादि-क्रमसे राश्यादिपात समझना चाहिये[४] ॥ ८१-८२ $\frac{१}{२}$ ॥

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु ॥ ८३ ॥
तद्वर्गतो दशगुणात् पदं भूपरिधिर्भवेत्।
लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः ॥ ८४ ॥

(**भूपरिधिप्रमाण**)—पृथ्वीका व्यास १६०० योजन है। इस (१६००)-के वर्गको १० से गुणा करके गुणनफलका मूल भूमध्यपरिधि होता है; अर्थात् वर्गमूलकी जो संख्या हो, उतने योजनकी पृथ्वीकी परिधि जाननी चाहिये। इस भूमध्य-परिधिकी संख्याको अपने-अपने लम्बांश-ज्यासे गुणा करके उसमें त्रिज्या (३४३८)-से भाग देकर जो लब्धि हो, वह स्पष्ट भूपरिधिकी योजन-संख्या होती है[५] ॥ ८३-८४ ॥

---

१. कलियुगके आदिमें शुक्रवार था, इसलिये कलियुगादि अहर्गणमें ७ का भाग देनेसे १ आदि शेष होनेपर शुक्र आदि वारपति होते हैं। मासपति जाननेके लिये अहर्गण १८४६२३७ में ३० से भाग देकर लब्धि ६१५४१ को २ से गुणा करनेपर १२३०८२ हुआ। इसमें १ जोड़कर ७ का भाग देनेसे शेष २ रहे, अतः शुक्रसे द्वितीय शनि वर्तमान मासपति हुआ।

एवं अहर्गणमें ३६० का भाग देकर लब्धि ५१२८ को ३ से गुणा कर गुणनफल १५३८४ में १ जोड़कर १५३८५ हुआ। इसमें ७ का भाग देनेसे शेष ६ रहे; अतः शुक्रादि गणनासे बुध वर्तमान वर्षपति हुआ।

२. प्रथम लब्धि भगण होती है। शेषको १२ से गुणा करके गुणनफलमें युग-कुदिनसे भाग देनेपर जो लब्धि होगी, वह राशि है। पुनः शेषको ३० से गुणा करके गुणनफलमें युग-कुदिनसे भाग देनेपर जो लब्धि हो वह अंश है। अंश-शेष ६० से गुणा करके गुणनफलमें कुदिनका भाग देनेसे लब्धि कला होती है। कला-शेषको ६० से गुणा करके पूर्ववत् युग-कुदिनसे भाग देनेपर जो लब्धि हो, वह विकला होती है। इनमें भगणको छोड़कर राश्यादि ही ग्रह कहलाता है। इस प्रकार मध्यम ग्रह होता है।

३. उदाहरण—जैसे युगके सूर्यभगण ४३२०००० को अहर्गण १८४६२३७ से गुणा करनेपर ७९७५७४३८४०००० हुआ। इसमें युगके कुदिन १५७७९१७८२८ से भाग देनेपर लब्ध भगण ५०५४ हुए। शेष ९४७१३७२८८ को १२ से गुणा कर गुणनफल ११३६५६४७४५६ में कुदिनका भाग देनेसे लब्धि राशि ७ हुई। राशिशेष ३२०२२२६६० को ३० से गुणा करके गुणनफल ९६०६६७९८०० में कुदिनका भाग देनेसे लब्ध अंश ६ हुआ। अंश-शेष १३९१७२८३२ को ६० से गुणा करके गुणनफल ८३५०३६९९२० में कुदिनसे भाग देनेपर लब्धि कला ५ हुई। कलाशेष ४६०७८०७८० को ६० से गुणा कर गुणनफल २७६४६८४६८०० में कुदिनका भाग देनेसे लब्धि विकला १८ हुई। एवं भगण प्रयोजनमें नहीं आता है, इसलिये उसको छोड़कर राश्यादि फल ७। ६। ५। १८ यह लङ्कार्धरात्रिकालिक मध्यम सूर्य हुआ। इसी प्रकार अपने-अपने भगणद्वारा सब ग्रह, उच्च और पातका साधन होता है। तथा पातकी विपरीत गति होती है। अहर्गणद्वारा साधित पातको १२ राशिमें घटानेसे शेषको मेषादि-क्रमसे राश्यादि-पात समझना चाहिये, यह बात आगे कही जायगी।

४. इस प्रकार साधित ग्रहरेखादेशीय होता है। इसमें आगे कहे हुए देशान्तर-संस्कार करनेसे स्वदेशीय मध्यम ग्रह होता है।

५. यथा—१६०० के वर्गको १० गुना करनेसे २,५६,००००० हुआ। इसका मूल (स्वल्पान्तरसे) ५०५८ हुआ। इतना ही

तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।
कलादि तत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत्॥ ८५॥
रेखाप्रतीचीसंस्थाने प्रक्षिपेत् स्युः स्वदेशजाः।
राक्षसालयदेवौकःशैलयोर्मध्यसूत्रगाः ॥ ८६॥
अवन्तिकारोहितकं यथा सन्निहितं सरः।
वारप्रवृत्तिः प्राग्देशे क्षपार्धेऽभ्यधिके भवेत्॥ ८७॥
तद्देशान्तरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत्।

(ग्रहोंमें देशान्तर-संस्कार)— ग्रहकी कलादि मध्यम गतिको देशान्तर-योजन (रेखादेशसे जितने योजन पूर्व या पश्चिम अपना स्थान हो उस)-से गुणा करके गुणनफलमें 'स्पष्टभूपरिधि-योजन' के द्वारा भाग देनेपर जो लब्धि हो, वह कला आदि है। उस लब्धिको रेखासे पूर्व देशमें पूर्वसाधित ग्रहमें घटानेसे और पश्चिम देशमें जोड़नेसे स्वस्थानीय अर्धरात्रिकालिक ग्रह होता है[1] ॥ ८५$\frac{१}{२}$॥

(रेखा-देश)— लङ्कासे सुमेरुपर्वतपर्यन्त याम्योत्तर-रेखामें जो-जो देश (स्थान) हैं, वे रेखा-देश कहलाते हैं। जैसे उज्जयिनी, रोहितक, कुरुक्षेत्र आदि ॥ ८६$\frac{१}{२}$॥

(वार-प्रवृत्ति)— भूमध्यरेखासे पूर्वदेशमें रेखा-देशीय मध्यरात्रिसे, देशान्तर घटीतुल्य पीछे और रेखासे पश्चिम देशमें मध्यरात्रिसे देशान्तर घटीतुल्य पूर्व ही वार-प्रवृत्ति (रवि-आदि वारोंका आरम्भ) होती है[2] ॥ ८७$\frac{१}{२}$॥

इष्टनाडीगुणा भुक्तिः षष्ट्या भक्ता कलादिकम्॥ ८८॥
गते शोध्यं तथा योज्यं गम्ये तात्कालिको ग्रहः।
भचक्रलिप्ताशीत्यंशं परमं दक्षिणोत्तरम्॥ ८९॥
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यन्तादनुष्णगुः।
तन्नवांशं द्विगुणितं जीवस्त्रिगुणितं कुजः॥ ९०॥
बुधशुक्रार्कजाः पातैर्विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणम्।

(इष्टकालमें मध्यम ग्रह जाननेकी विधि)— मध्यरात्रिसे जितनी घड़ी बाद ग्रह बनाना हो, उस संख्यासे ग्रहकी कलादि गतिको गुणा करके गुणनफलमें ६० से भाग देकर लब्धितुल्य कलादि फलको पूर्वसाधित ग्रहमें जोड़नेसे तथा जितनी घड़ी मध्यरात्रिसे पूर्व ग्रह बनाना हो, उतनी संख्यासे गतिको गुणा करके गुणनफलमें ६०से भाग देकर कलादि फलको पूर्वसाधित ग्रहमें घटानेसे इष्टकालिक ग्रह होता है[3] ॥ ८८$\frac{१}{२}$॥

(चन्द्रादि ग्रहोंके परम विक्षेप)— भचक्रकला

योजन स्थूलमानसे मध्यभूपरिधिका प्रमाण है।

गोरखपुरमें स्पष्ट भूपरिधि-साधन—यदि लम्बांश ६३। १५ है, तो उसकी ज्या आगे ९३, ९७ श्लोकोंमें वर्णित रीतिके अनुसार ३०७० हुई। मध्यभूपरिधि ५०५८ को गोरखपुरकी लम्बज्या ३०७० से गुणा कर गुणनफल १५५२८०६० में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेसे लब्धि ४५१६ स्पष्ट भूपरिधि हुई।

देशान्तर-कालज्ञान इस प्रकार होता है—गणितद्वारा सिद्ध चन्द्रग्रहण-स्पर्शकालसे जितने घड़ी-पलके पश्चात् स्पर्श होता है, उतनी ही घड़ीको रेखादेशसे 'पूर्व देशान्तर' तथा जितनी घड़ी पहले ग्रहणका स्पर्श होता है, उतनी घड़ीको 'पश्चिम देशान्तर' समझा जाता है। गोरखपुरमें इस प्रकारसे १ घड़ी और १३ पल पूर्वदेशान्तर है।

इस देशान्तर-पलसे देशान्तर-योजनका ज्ञान त्रैराशिकसे होता है-जैसे ३६०० पलमें स्पष्ट भूपरिधियोजन ४५१६ है तो देशान्तर-पलमें कितना होगा? इस प्रकार गोरखपुरमें देशान्तर ७३ पलद्वारा रेखादेशसे देशान्तर-योजन $\frac{४५१६ \times ७३}{३६००}$ =९१ हुआ। इसके द्वारा ग्रहोंमें देशान्तरसंस्कार होता है।

रेखादेशसे गोरखपुरके पूर्व देशान्तर-योजन ९१ को सूर्यकी मध्यगतिकला ५९। ८ से गुणा कर गुणनफल ५३८१। ८ में स्पष्ट भूपरिधि-योजन ४५१६ से भाग देनेपर लब्धि कलादि १। ११ हुई। इसको अहर्गणसाधित मध्यम सूर्य ७। ६। ५। १८ में पूर्व देशान्तर होनेके कारण घटानेसे ७। ६। ४। ७ यह मध्यरात्रिकालिक मध्यम सूर्य हुआ।

१. पात (राहु) में देशान्तरसंस्कार विपरीत होता है।

२. रेखा-देशके मध्यरात्रि-समयसे ही सृष्टिका आरम्भ माना गया है; इसलिये रेखा-देशके मध्यरात्रि-समयमें ही वारप्रवेश होता है।

३. मान लीजिये, शुक्रवार मध्यरात्रिकालिक ग्रह जानकर अग्रिम प्रातः छः बजेका मध्यम सूर्य बनाना है तो—इष्टकाल ६ घंटा (१५ घड़ी) हुआ। इसलिये सूर्यकी कलादि गति ५९। ८ को १५ से गुणा करके ६० का भाग देनेसे लब्धि १४ कला ४७ विकलाको मध्यरात्रिके सूर्य ७। ६। ४। ७ में जोड़नेसे ७। ६। १८। ५४—यह शनिवारके प्रातः छः बजेका मध्यम सूर्य हुआ।

(२१६००)-के ८० वाँ भाग (२७०) कलापर्यन्त क्रान्तिवृत्त (सूर्यके मार्ग)-से परम दक्षिण और उत्तर चन्द्रमा विक्षिप्त होता (हटता) है। एवं गुरु ६० कला, मङ्गल ९० कला, बुध, शुक्र और शनि—ये तीनों १२० कलापर्यन्त क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण और उत्तर हटते रहते हैं[1] ॥ ८९-९०$\frac{१}{२}$ ॥

राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्द्धमुच्यते ॥ ९१ ॥
तत्तद् विभक्तलब्धोनमिश्रितं तद् द्वितीयकम्।
आद्येनैवं क्रमात् पिण्डान् भक्त्वा लब्धोनसंयुताः ॥ ९२ ॥
खण्डकाः स्युश्चतुर्विंशज्यार्द्धपिण्डाः क्रमादमी।
परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः ॥ ९३ ॥
तद्गुणा ज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरुच्यते।

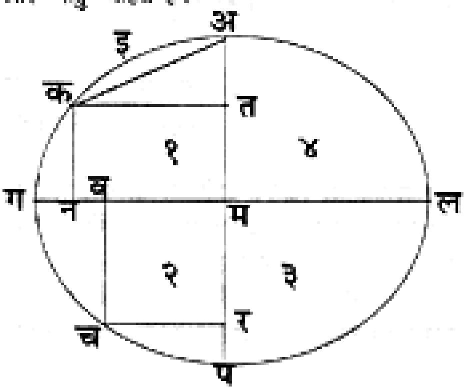
(अभीष्ट जीवासाधनके लिये उपयोगी २४ जीवासाधन)—१ राशि-कला १८०० का आठवाँ भाग (२२५ कला) प्रथम जीवार्ध[2] होता है। उस (प्रथम जीवार्ध) से प्रथम जीवार्धमें भाग देकर लब्धिको प्रथम जीवार्धमें ही घटाकर शेष (प्रथमखण्ड) को प्रथम जीवार्धमें ही जोड़नेसे द्वितीय जीवार्ध होता है। इसी प्रकार प्रथम जीवासे ही द्वितीय जीवामें भाग देकर लब्धिको द्वितीय खण्डमें घटाकर शेषको द्वितीय जीवार्धमें जोड़नेसे तृतीय जीवार्ध होता है। इसी तरह आगे भी क्रिया करनेसे क्रमशः २४ जीवार्ध सिद्ध[3] होते हैं ॥ ९१-९२$\frac{१}{२}$ ॥

इस प्रकार सूर्यकी परमक्रान्तिज्या १३९७ होती है। इस (परमक्रान्तिज्या)-से ग्रहकी ज्या (भुजज्या) को गुणा करके त्रिज्याके द्वारा भाग देनेसे 'इष्टक्रान्तिज्या' होती है। उसका चाप बनानेसे 'इष्टक्रान्ति' (मध्यमा) कहलाती है ॥ ९३$\frac{१}{२}$ ॥

ग्रहं संशोध्य मन्दोच्चात् तथा शीघ्राद्विशोध्य च ॥ ९४ ॥
शेषं केन्द्रपदं तस्माद्भुजज्या कोटिरेव च।

---

१. सूर्य और अन्य ग्रहोंके मार्गोंका योगस्थान (चौराहा) पात कहलाता है। जब ग्रह अपने मार्गपर चलता हुआ पात-स्थानमें आता है, उस समय वह क्रान्तिवृत्तमें होनेके कारण अपने स्थानमें ही होता है; क्योंकि सब ग्रहोंके स्थान क्रान्तिवृत्तमें ही होते हैं। पात-स्थानसे आगे-पीछे होनेपर क्रान्तिवृत्तसे जितनी दूर विक्षिप्त होते (हटते) हैं, उतना उस ग्रहका 'विक्षेप' (शर) कहलाता है। सूर्यके मार्गको 'क्रान्तिमण्डल' और अन्य ग्रहोंके मार्गको उन-उन ग्रहोंका 'विमण्डल' कहते हैं तथा चन्द्रमाके पातस्थानको ही 'राहु' और 'केतु' कहते हैं।



२. जीवा, जया, शिञ्जिनी, मौर्वी गुण, रज्जु—ये पर्यायवाचक शब्द हैं। ज्यौतिषमें चाप और जीवाके द्वारा ही ग्रहगणित होता है; क्योंकि ग्रहका मार्ग वृत्ताकार है। वृत्त परिधिका खण्ड चाप कहलाता है। जैसे अ, ग, प, ल, अ यह वर्तुल मार्ग वृत्तपरिधि है। इसमें अ-क, अ-ग आदि परिधिखण्ड चाप कहलाते हैं। जैसे अ, इ, क चाप है तो अ, क सरलरेखा अ, इ, क, चापकी पूर्णज्या कहलाती है तथा अ, त, सरलरेखा अ, इ, क चापकी उत्क्रमज्या तथा क, त रेखा अ, इ, क चापका जीवार्ध वा ज्यार्ध कहलाती है। इसीको अर्धज्या भी कहते हैं। गणितमें अर्धज्या (ज्यार्ध)-से ही काम लिया जाता है; इसलिये ज्यौतिषग्रन्थमें ज्यार्धको ही ज्या=जीवा=मौर्वी आदि कहते हैं। वे जीवार्ध या जीवा वृत्तके चतुर्थांशमें ही बनते हैं। इस वृत्तके चतुर्थांशको पद कहा गया है। अतः सम्पूर्ण वृत्तमें ४ पद होते हैं। १, ३ विषम और २, ४ सम पद कहलाते हैं।

वृत्तकी सम्पूर्ण परिधिमें १२ राशि या ३६० अंश होते हैं; इसलिये एक-एक पदमें तीन-तीन राशि या ९० अंश होते हैं। प्रथम और तृतीय पदमें गत चापको भुज और गम्य चापको कोटि कहते हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ पदमें गत चापको कोटि और गम्य चापको ही भुज कहते हैं। जैसे—प्रथम पदमें 'अ क'-भुज और 'क ग'-कोटि है तथा द्वितीय पदमें ग च-कोटि और च प-भुज है। प्रत्येक पदमें चापको ९० अंशमें घटानेसे शेष उस चापकी कोटि होती है; इसलिये क ग चाप-अ क चापकी कोटि, तथा क न सरल रेखा कोटिज्या है एवं सम (द्वितीय) पदमें च र भुजज्या और च व कोटिज्या कहलाती है। इसी क्रमसे तृतीय और चतुर्थ पदमें भुजज्या और कोटिज्या समझनी चाहिये। केवल 'ज्या' शब्दसे सर्वत्र भुजज्या ही समझी जाती है।

३. उदाहरण—जैसे—प्रथमज्या २२५में प्रथमज्या २२५ से भाग देकर लब्धि १ को प्रथमज्यामें घटाकर २२४ (प्रथम

गताद्भुजज्याविषमे गम्यात् कोटि: पदे भवेत्॥ ९५॥
युग्मे तु गम्याद्वाहुज्या कोटिज्या तु गताद् भवेत्।
लिप्तास्तत्त्वयमैर्भक्ता लब्धं ज्यापिण्डकं गतम्॥ ९६॥
गतगम्यान्तराभ्यस्तं विभजेत्तत्त्वलोचनैः।
तदवाप्तफलं योज्यं ज्यापिण्डे गतसंज्ञके॥ ९७॥
स्यात्क्रमज्या विधिरयमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृत:।
ज्यां प्रोह्य शेषं तत्त्वाश्विहतं तद्विवरोद्धृतम्॥ ९८॥
संख्यातत्त्वाश्विसंवर्गे संयोज्य धनुरुच्यते।

('भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनानेकी रीति—) ग्रहोंको अपने-अपने मन्दोच्चमें घटानेसे शेष उस ग्रहका 'मन्द केन्द्र' तथा शीघ्रोच्चमें घटानेसे शेष उस ग्रहका 'शीघ्र केन्द्र' कहलाता है। उस राश्यादि केन्द्रकी 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनानी चाहिये। विषम (१, ३) पदमें 'गत' चापकी जीवा भुजज्या और 'गम्य' चापकी जीवा कोटिज्या कहलाती है।[१] सम (२, ४) पदमें 'गम्य' चापकी जीवा 'भुजज्या' और 'गत' चापकी जीवा 'कोटिज्या' होती है[२]॥ ९४-९५ $\frac{१}{२}$॥

(इष्टज्या-साधन-विधि)—जितने राश्यादि चापकी जीवा बनाना हो, उसकी कला बनाकर उसमें २२५ से भाग देकर जो लब्धि हो, उतनी संख्या (सिद्ध २४ ज्या-पिण्डमें) गत ज्यापिण्डकी संख्या समझे। शेष कलाको 'गत ज्या' और 'गम्य ज्या' के अन्तरसे गुणा करके २२५ से भाग देकर लब्ध कलादिको 'गत ज्या'-पिण्डमें जोड़नेसे 'अभीष्ट ज्या' होती है। 'उत्क्रमज्या' भी इसी विधिसे बनायी जाती है[३]॥ ९६-९७ $\frac{१}{२}$॥

(जीवासे चाप बनानेकी विधि)—इष्ट जीवाकी कलामें सिद्ध जीवापिण्डोंमेंसे जितनी संख्यावाली जीवा घटे, उसको घटाना चाहिये। शेष कलाको २२५ से गुणा करके गुणनफलमें गत, गम्य जीवाके अन्तरसे भाग देकर जो लब्धि कलादि हो, उसको घटायी हुई सिद्ध-जीवा-संख्यासे गुणित २२५ में जोड़नेसे इष्टज्याका चाप होता है[४]॥ ९८ $\frac{१}{२}$॥

रवेर्मन्दपरिध्यंशा मनवः शीतगो रदाः॥ ९९॥

खण्ड) हुआ। इसको प्रथमज्यामें जोड़नेसे २२४+२२५=४४९ यह द्वितीय जीवा हुई। द्वितीय जीवा ४४९ में प्रथमज्या २२५ का भाग देकर लब्धि २ को प्रथम खण्ड २२४ में घटानेसे शेष २२२ द्वितीय खण्ड हुआ; इसको द्वितीय जीवामें जोड़नेसे ६७१ तृतीय जीवा हुई। फिर तृतीय जीवामें प्रथमज्यासे भाग देकर लब्धि ३ को द्वितीय खण्डमें घटानेसे शेष २१९ तृतीय खण्ड हुआ। इसको तृतीय जीवा ६७१ में जोड़नेसे ८९० यह चतुर्थ जीवा हुई। इसी प्रकार आगे भी साधन करनेपर निम्नाङ्कित सिद्ध २४ ज्यार्धकी कलाएँ होती हैं—२२५, ४४९, ६७१, ८९०, ११०५, १३१५, १५२०, १७१९, १९१०, २०९३, २२६७, २४३१, २५८५, २७२८, २८५९, २९७८, ३०८४, ३१७७, ३२५६, ३३२१, ३३७२, ३४०९, ३४३१ तथा ३४३८। ये १ पदमें (३ राशिमें) २४ ज्यार्ध-पिण्ड हैं।

१. ३ राशि (९० अंश)-का १ पद होता है। उस पदमें 'गत' चापको घटानेसे शेष 'गम्य' चाप कहलाता है। जैसे सूर्यराश्यादि ८। १०। १५। २५ हैं, उसका मन्दोच्च २। १७। ३५। ४० है तो मन्दोच्चमें सूर्यको घटानेसे राश्यादि शेष ६। ७। १७। १५ केन्द्र हुआ। यहाँ केन्द्र ६ राशिसे अधिक है, अत: तृतीय (विषम) पदमें पड़ा। इसलिये तृतीय पदके गतांशादि ७। १७। १५ को ९० अंशमें घटानेसे अंशादि ८२। ४२। ४५—ये 'गम्य' अंशादि हुए।

२. जैसे स्वल्पान्तरसे सूर्यका मन्दोच्च २। १७। ४८। ५४ है। इसमें मध्यम सूर्य ७। ६। १८। ५४ को घटानेसे शेष ७। ११। ३०। ० यह मन्द केन्द्र हुआ। यह ६ राशिसे अधिक होनेके कारण तुलादिमें पड़ा तथा तृतीय पदमें होनेके कारण इसमें ६ राशि घटाकर शेष १। ११। ३०। ० यह भुज हुआ। इसको ९० अंश (३ राशि) में घटानेसे शेष १। १८। ३०। ० यह कोटि हुई।

भुजज्या बनानेके लिये आगे कही हुई रीतिसे राश्यादि भुज १। ११। ३० को कला बनानेसे २४९० कला हुई। इसमें २२५ से भाग देनेपर लब्धि गतज्या ११ हुई। शेष २५ को गतज्या, एष्यज्या (११ वीं और १२ वीं ज्या)-के अन्तर (२४३१-२२६७)=१६४ से गुणा करनेपर २४६० हुआ। इसमें २२५ का भाग देनेपर लब्धि ११ कलाको गतज्या २२६७ में जोड़नेसे सूर्यकी भुजज्या २२७८ हुई। इसी प्रकार कोटिकी कलाद्वारा कोटिज्या २६७५ हुई।

३. जैसे परम क्रान्ति २४ अंशकी कला १४४० में २२५ का भाग देनेसे लब्धि ६ 'गतज्या'-संख्या हुई, जिसका प्रमाण १३१५ है। शेष कला ९० को 'गतज्या' 'एष्यज्या' के अन्तर (१५२०-१३१५=२०५)-से गुणा कर उसमें २२५ से भाग देनेपर लब्धि ८२ को गतज्या १३१५ में जोड़नेसे १३९७ यह परम क्रान्ति (२४ अंश)-की ज्या हुई।

४. जैसे परमक्रान्तिज्याका चाप बनाना है, तो परमक्रान्तिज्या १३९७ में कथित छठी जीवा १३१५ को घटाकर

युग्मान्ते विषमान्ते तु नखलिप्तोनितास्तयोः।
युग्मान्तेऽर्थाद्रयः खाग्निसुराः सूर्या नवार्णवाः ॥ १०० ॥
ओजे द्व्यगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धयः।
कुजादीनामतः शैघ्र्या युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः ॥ १०१ ॥
गुणाग्निचन्द्राः खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः।
ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वताः ॥ १०२ ॥
खर्तुदस्रा वियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः।
ओजयुग्मान्तरगुणा भुजज्या त्रिज्ययोद्धृता ॥ १०३ ॥
युग्मवृत्ते धनर्णं स्यादोजादूनाधिके स्फुटम्।

(रवि और चन्द्रमाके मन्दपरिध्यंश)—समपदके अन्तमें सूर्यके १४ अंश और चन्द्रमाके ३२ अंश मन्दपरिधि मान होते हैं और विषमपदके अन्तमें २० कला कम अर्थात् सूर्यके १३। ४० और चन्द्रमाके ३१। ४० मन्दपरिध्यंश हैं ॥ ९९ $\frac{1}{2}$ ॥

(मङ्गलादि ग्रहोंकी मन्द और शीघ्र परिधि)—समपदान्तमें मङ्गलके ७५, बुधके ३०, गुरुके ३३, शुक्रके १२ और शनिके ४९ तथा विषमपदान्तमें मङ्गलके ७२, बुधके २८, गुरुके ३२, शुक्रके ११ और शनिके ४८ मन्द परिध्यंश हैं। इसी प्रकार समपदके अन्तमें मङ्गलके २३५, बुधके १३३, गुरुके ७०, शुक्रके २६२ और शनिके ३९ तथा विषमपदान्तमें मङ्गलके २३२, बुधके १३२, गुरुके ७२, शुक्रके २६० और शनिके ४० शीघ्र परिध्यंश कहे गये हैं ॥ १००-१०२ $\frac{1}{2}$ ॥

(अभीष्ट स्थानमें परिधिसाधन—) अभीष्ट स्थानमें मन्द या शीघ्र परिधि बनानी हो तो उस ग्रहकी भुजज्याको विषम-समपदान्त-परिधिके अन्तरसे गुणा करके गुणनफलमें त्रिज्या (३४३८)-से भाग देकर जो अंशादि लब्धि हो, उसको समपदान्त-परिधिमें जोड़ने या घटानेसे (विषमपदान्तसे समपदान्त कम हो तो जोड़ने अन्यथा घटानेसे) इष्टस्थानमें स्पष्ट मन्द या शीघ्र परिध्यंश होते हैं[1] ॥ १०३ $\frac{1}{2}$ ॥

तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणांशविभाजिते ॥ १०४ ॥
तद्भुजज्याफलधनुर्मान्दं लिप्तादिकं फलम्।
शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम् ॥ १०५ ॥
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्क्यादौ कोटिजं फलम्।
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः ॥ १०६ ॥
त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजितम्।
लब्धस्य चापं लिप्तादिफलं शैघ्र्यमिदं स्मृतम् ॥ १०७ ॥
एतदाद्ये कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि।
मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वोर्भौमादीनामथोच्यते ॥ १०८ ॥
शैघ्र्यं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्र्यं चत्वार्यनुक्रमात्।

(भुजफल-कोटिफल-साधन—) इस प्रकार साधित स्पष्ट परिधिसे ग्रहकी 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' को पृथक्-पृथक् गुणा करके भगणांश (३६०)-से भाग देकर लब्ध (भुजज्यासे) भुजफल और (कोटिज्यासे) कोटिफल होते हैं। एवं मन्द परिधिद्वारा मन्दफल और शीघ्र परिधिद्वारा शीघ्रफल समझने चाहिये। यहाँ मन्द परिधिवश भुजज्याद्वारा जो भुजफल आवे, उसका चाप बनानेसे मन्द कलादि फल होता है[2] ॥ १०४ $\frac{1}{2}$ ॥

(शीघ्र कर्णसाधन—) पूर्वविधिसे शीघ्र परिधिद्वारा जो कोटिफल आवे, उसको मकरादि केन्द्र हो तो त्रिज्या (३४३८)-में जोड़े। कर्कादि केन्द्र हो तो घटावे। जोड़ या घटाकर जो फल हो, उसके वर्गमें शीघ्र भुजफलके वर्गको जोड़ दे। फिर उसका मूल लेनेसे शीघ्र कर्ण होता है ॥ १०५-१०६ ॥

(शीघ्र फलसाधन—) पूर्वविधिसे साधित शीघ्र

शेष ८२ को २२५ से गुणाकर गत, गम्य ज्याके अन्तर २०५ से भाग देनेपर लब्धि ९० को ६×२२५-१३५० में जोड़नेसे १४४० हुआ। इसको अंश बनानेसे २४ परम क्रान्ति-अंश हुए।

१. जैसे—सूर्यकी भुजज्या २२७८ को विषम-सम परिधिके अन्तर २० से गुणा करनेपर ४५५६० हुआ। इसमें ३४३८ का भाग देनेसे लब्धि १३ कलाको समपदान्त परिधि-अंश १४ में घटानेसे १३। ४७ सूर्यकी स्पष्ट मन्द परिधि हुई।

२. जैसे—सूर्यकी भुजज्या २२७८ को स्पष्ट मन्द परिधि १३। ४७ से गुणा कर ३१३९८। २६ हुआ। इसमें ३६० का भाग देनेसे लब्धि कलादि ८७। १३ यह भुजफल हुआ। यह २२५ से कम है, अतः इसका चाप भी इतना ही हुआ और यही सूर्यका कलादि मन्दफल हुआ। इसके अंशादि बनानेसे १। २७। १३ हुआ, इसको तुलादि केन्द्र होनेके कारण मध्यम सूर्य ७। ६। १८। ५४ में घटानेसे शेष ७। ४। ५१। ४१ यह स्पष्ट सूर्य हुआ।

भुजफलको त्रिज्यासे गुणा करके शीघ्र कर्णके द्वारा भाग देनेपर जो कलादि लब्धि हो, उसके चाप बनानेसे शीघ्र 'भुजफल' होता है। यह शीघ्रफल मङ्गलादि ५ ग्रहोंमें प्रथम और चतुर्थ कर्ममें संस्कृत (धन या ऋण) किया जाता है॥ १०७ $\frac{1}{2}$॥

रवि और चन्द्रमामें केवल एक ही मन्दफलका संस्कार (धन या ऋण) किया जाता है। मुने! अब मङ्गलादि ५ ग्रहोंके संस्कारका वर्णन करता हूँ। उनमें प्रथम शीघ्रफलका, द्वितीय मन्दफलका, तृतीय भी मन्दफलका और चतुर्थ शीघ्रफलका संस्कार किया जाता है॥ १०८ $\frac{1}{2}$॥

अजादिकेन्द्रे सर्वेषां शैघ्र्ये मान्दे च कर्मणि॥ १०९॥
धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृणमेव तत्।
अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता॥ ११०॥
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ताः कार्या ग्रहेऽर्कवत्।

(**संस्कारविधि—**) शीघ्र या मन्द केन्द्र मेषादि (६ राशिके भीतर) हो तो शीघ्रफल और मन्दफल जोड़े जाते हैं। यदि तुलादि केन्द्र (६ राशिसे ऊपर) हो तो घटाये जाते हैं॥ १०९ $\frac{1}{2}$॥

(**रविभुजफल-संस्कार—**) प्रत्येक ग्रहकी गतिकलाको पृथक्-पृथक् सूर्यके मन्द भुजफल-कलासे गुणा करके उसमें २१६०० के द्वारा भाग देनेसे जो कलादि लब्धि हो, उसको पूर्वसाधित उदयकालिक ग्रहोंमें रविमन्दफलवत् संस्कार (मन्दफल धन हो तो धन, ऋण हो तो ऋण) करना चाहिये। इससे स्पष्ट सूर्योदयकालिक ग्रह होते हैं[1]॥ ११० $\frac{1}{2}$॥

स्वमन्दभुक्तिसंशुद्धेर्मध्यभुक्तेर्निशापतेः ॥ १११॥
ग्रहभुक्तेः फलं कार्यं ग्रहवन्मन्दकर्मणि।
दोर्ज्यान्तरगुणा भुक्तिस्तत्त्वनेत्रोद्धृता पुनः॥ ११२॥
स्वमन्दपरिधिक्षुण्णा भगणांशोद्धृताः कलाः।
कर्कादौ तु धनं तत्र मकरादावृणं स्मृतम्॥ ११३॥
मन्दस्फुटीकृतां भुक्तिं प्रोज्झ्य शीघ्रोच्च भुक्तितः।
तच्छेषं विवरेणाथ हन्यात्त्रिज्यान्त्यकर्णयोः॥ ११४॥
चलकर्णहृतं भुक्तौ कर्णे त्रिज्याधिके धनम्।
ऋणमूनेऽधिके प्रोज्झ्य शेषं वक्रगतिर्भवेत्॥ ११५॥

(**स्पष्टग्रहगतिसाधनार्थगतिफल—**) चन्द्रमध्यगतिमें चन्द्रमन्दोच्चगतिको घटाकर उससे (अर्थात् चन्द्रकेन्द्र-गतिसे) तथा अन्य ग्रहोंकी (स्वल्पान्तरसे) अपनी-अपनी गतिसे ही मन्दस्पष्टगतिसाधनमें फल साधन करे। यथा—उक्त गति (चन्द्रकी केन्द्रगति और अन्य ग्रहोंकी गति) को दोर्ज्यान्तर (गम्यज्या और गतज्याके अन्तर)-से गुणा करके उसको २२५ के द्वारा भाग देकर लब्धिको अपनी-अपनी मन्दपरिधिसे गुणा करके भगणांश (३६०)-के द्वारा भाग देनेसे जो कलादि फल लब्धि हो, उसको कर्कादि (३ से ऊपर ९ राशिके भीतर) केन्द्र हो तो मध्यगतिमें धन करने (जोड़ने) तथा मकरादि (९ राशिसे ऊपर ३ राशितक) केन्द्र हो तो घटानेसे मन्दस्पष्ट गति होती है।[2] पुनः इस मन्दस्पष्ट गतिको अपनी शीघ्रोच्च गतिमें घटाकर शेषको त्रिज्या तथा अन्तिम शीघ्रकर्णके अन्तरसे गुणा करके पूर्वसाधित शीघ्रकर्णके द्वारा भाग देनेसे जो लब्धि (कलादि) हो, उसको यदि कर्ण त्रिज्यासे अधिक हो तो मन्दस्पष्ट गतिमें धन करने (जोड़ने) और अल्प हो तो घटानेसे स्पष्ट गति होती है। यदि साधित ऋणगतिफल मन्दस्पष्ट गतिसे अधिक हो तो उसी (ऋणगतिफल)-में मन्दस्पष्ट गतिको घटाकर जो बचे, वह वक्रगति होती है। इस स्थितिमें वह ग्रह वक्र-

१. पूर्वसाधित मध्यम या स्पष्ट सूर्य मध्यमार्कोदयकालिक होता है। उसको स्पष्ट सूर्योदयकालिक बनानेके लिये भुजफल-संस्कार किया जाता है। जैसे—सूर्यके भुजफल ८७। १३ को सूर्यकी स्पष्टगति ६०। ४७ से गुणा करनेपर ५३०१। २० हुआ। इसमें २१६०० का भाग देनेसे लब्धि कलादि ०। १५ अर्थात् १५ विकलाको स्पष्ट सूर्यमें मन्दफल ऋण होनेके कारण घटानेसे स्पष्ट सूर्योदयकालिक स्पष्ट सूर्य ७। ४। ५१। २६ हुआ।

२. ग्रहोंकी केन्द्रगतिके द्वारा मन्दस्पष्टगतिफल साधन होता है। वहाँ चन्द्रमाकी अधिक गति होनेके कारण केन्द्रगति ग्रहण की जाती है। अन्य ग्रहकी १ दिनमें मन्दोच्च गति शून्य होनेके कारण ग्रहगतिके तुल्य ही केन्द्रगति होती है तथा रवि और चन्द्रमाकी मन्दस्पष्ट गति ही स्पष्ट गति होती है। मङ्गलादि ग्रहोंके शीघ्रोच्चवश शीघ्र गतिफलका पुनः संस्कार करनेसे स्पष्ट गति होती है।

गति रहता है[1] ॥१११—११५॥

कृतर्तुचन्द्रैर्वेदेन्द्रैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टिभिः।
शतरुद्रैश्चतुर्थेषु केन्द्रांशैर्भूसुतादयः॥ ११६॥
वक्रिणश्चक्रशुद्धैस्तैरंशैरुज्झन्ति वक्रताम्।
क्रान्तिज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता॥ ११७॥
त्रिज्यागुणा दिनव्यासभक्ता चापं चरासवः।
तत्कार्मुकमुदक्क्रान्तौ धनहीने पृथक् स्थिते॥ ११८॥
स्वाहोरात्रचतुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते।
याम्यक्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणे तु दिनक्षपे॥ ११९॥

(ग्रहोंकी वक्र केन्द्रांश-संख्या—) मङ्गल अपने चतुर्थ शीघ्रकेन्द्रांश १६४ में, बुध १४४ केन्द्रांशमें, गुरु १३० केन्द्रांशमें, शुक्र १६२ केन्द्रांशमें और शनि ११५ शीघ्रकेन्द्रांशमें वक्रगति होता है। अपने-अपने वक्रकेन्द्रांशको ३६० में घटानेसे शेषके तुल्य केन्द्रांश होनेपर फिर वह मार्ग-गति होता है[2] ॥११६ $\frac{१}{२}$॥

(कालज्ञान—) रवि-क्रान्तिज्याको पलभा[3] से गुणा करके गुणनफलमें १२ से भाग देनेपर लब्धि 'कुज्या' होती है। उस (कुज्या)-को त्रिज्यासे गुणा करके द्युज्या (क्रान्तिकी कोटिज्या) से भाग देकर लब्धि (चरज्या)-के चाप बनानेसे चरासु[4] होते हैं। उस चर-चापको यदि उत्तर क्रान्ति हो तो १५ घटीमें जोड़नेसे दिनार्ध और १५ घटीमें घटानेसे रात्र्यर्ध होता है। दक्षिणक्रान्ति हो तो विपरीत (यानी १५ घटीमें घटानेसे दिनार्ध और जोड़नेसे रात्र्यर्ध) होता है। दिनार्धको दूना करनेसे दिनमान और रात्र्यर्धको दूना करनेसे रात्रिमान होता है[5] ॥११७—११९॥

भभोगोऽष्टशतीलिप्ताः खाश्विशैलास्तथा तिथेः।
ग्रहलिप्ता भभोगाप्ता भानि भुक्त्या दिनादिकम्॥ १२०॥
रवीन्दुयोगलिप्ताभ्यो योगा भभोगभाजिताः।
गतगम्याश्च षष्टिघ्न्यो भुक्तियोगाप्तनाडिकाः॥ १२१॥
अर्कोनचन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथयो भोगभाजिताः।
गता गम्याश्च षष्टिघ्न्यो नाड्यो भुक्त्यन्तरोद्धृताः॥ १२२॥

(पञ्चाङ्ग-साधन—) ८०० कला एक-एक नक्षत्रका और ७२० कला एक-एक तिथिका भोगमान होता है। (अतः ग्रह किस नक्षत्रमें है, यह जानना हो तो) राश्यादि ग्रहको कलात्मक बनाकर उसमें भभोग (८००) के द्वारा भाग देनेसे जो लब्धि हो, उसके अनुसार अश्विनी आदि गत नक्षत्र समझने

---

१. जैसे सूर्यकी गति ५९। ८ को गत-एष्यज्याके अन्तर १६४ से (जो भुजज्यासाधनमें गतैष्यज्यान्तर हुआ था) गुणा करनेपर ९३९७। ५२ हुआ। इसमें २२५ से भाग देनेपर लब्धिकला ४३ को मन्दपरिधि १३। ४७ से गुणा करके गुणनफल ५९२। ४१ में ३६० से भाग देनेपर लब्धिकलादि गतिफल १। ३९ हुआ। इसको कर्कादि केन्द्र होनेके कारण सूर्यकी मध्यगति ५९। ८ में जोड़नेसे ६०। ४७ यह मन्दस्पष्ट गति हुई; यही सूर्यकी स्पष्ट गति भी होती है।

२. जैसे मङ्गलके वक्रकेन्द्रांश १६४ को ३६० में घटानेसे शेष १९६ मार्ग-केन्द्रांश हुए। इससे सिद्ध हुआ कि जब मङ्गलका शीघ्रकेन्द्रांश १६४ से १९६ तक रहता है, तबतक मङ्गल वक्र रहता है। इसी प्रकार सब ग्रहोंके मार्गकेन्द्रांश समझने चाहिये।

३. ३० घड़ीका दिन हो तो उस दिनके दोपहरमें बारह अङ्गुल शङ्कुकी छायाका नाम 'पलभा' है।

४. दीर्घ अक्षरके दस बार उच्चारणमें जितना समय लगता है, उतना काल १ असु (प्राण) कहलाता है। ६ असुका १ पल और ६० पलकी १ घड़ी होती है। अतः चरासुमें ६ के भाग देकर, पल बनाकर दिनमान साधन करना चाहिये।

५. क्रान्ति बनानेमें अयनांश जोड़ना होता है, इसलिये १३२ वें श्लोकके अनुसार अयनांश-साधन किया जाता है। अहर्गण १८४६२३७ को ६०० से गुणा कर गुणनफल ११०७७४२२०० में युग-कुदिन १५७७९१७८२८ से भाग देनेपर लब्धि राश्यादि ८। १२। ४४ हुई। इसके भुज २। १२। ४४ के अंशादि ७२। ४४ को ३ से गुणा कर गुणनफल २१८। १२ में १० से भाग देनेपर लब्धि अंशादि २१। ४९। १२ यह अयनांश हुआ। इस अयनांशको स्पष्टसूर्य ७। ४। ५१। १२ में जोड़नेसे सायन सूर्य ७। २६। ४०। २४ हुआ, इसका भुज १। २६। ४०। २४ है और इस भुजकी ज्या २८७२ हुई। इस भुजज्याको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल ४०१२१८४ में त्रिज्या ३४३८ से भाग देनेपर लब्धि ११६७ क्रान्तिज्या हुई। इसकी चापकला ११९१ के अंश १९। ५१ क्रान्त्यंश हुए। इनको ९० अंशमें घटानेसे शेष ७०। ९ क्रान्तिका कोटिचाप हुआ। इसकी ज्या ३२३३ हुई, इसको द्युज्या कहते हैं।

गोरखपुरकी पलभा ६ के वर्ग ३६ को १२ के वर्ग १४४ में जोड़नेसे १८० हुआ। इसका मूल स्वल्पान्तरसे १३+ $\frac{१}{२}$ पलकर्ण हुआ। क्रान्तिज्या ११६७ को पलभा ६ से गुणा कर गुणनफल ७००२ में १२ से भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ५८३ कुज्या हुई। इसको त्रिज्या ३४३८ से गुणा कर गुणनफल २००४३५४ में द्युज्या ३२३३ से भाग देनेपर लब्धि ६२० चरज्या हुई। इसका चाप ६२६ यह चरासु हुआ, इसमें ६ से भाग देनेपर लब्ध चरपल १०४ हुए; इनकी घड़ी १। ४४ हुई। इसको सायनसूर्यके दक्षिणगोलमें रहनेके कारण १५ घड़ीमें घटानेसे १३। १६ यह दिनार्ध और चरको १५ घड़ीमें जोड़नेसे रात्र्यर्ध १६। ४४ हुआ। दिनार्धको दूना करनेसे घट्यादि २६। ३२ दिनमान हुआ तथा रात्र्यर्धको दूना करनेसे ३३। २८ रात्रिमान हुआ।

चाहिये। शेष कलादिसे ग्रहकी गतिके द्वारा उसकी गत और गम्यघटीको समझना चाहिये[1] ॥१२०॥

उदयकालिक स्पष्टरवि और चन्द्रका योग करके उसकी कलामें भभोग (८००)-के द्वारा भाग देकर लब्धि-गत विष्कुम्भ आदि योग होते हैं। शेष वर्तमान योगकी गतकला है। उसको ८०० में घटा देनेसे गम्यकला होती है। उस गत और गम्यकलाको ६० से गुणा करके उससे रवि और चन्द्रकी गति-कलाके योगसे भाग देनेपर गत और गम्यघटी होती हैं[2] ॥१२१॥

स्पष्टचन्द्रमें स्पष्टसूर्यको घटाकर शेष राश्यादिकी कला बनाकर उसमें तिथिभोग (७२०)-से भाग देनेपर लब्धि गततिथि-संख्या होती है। शेष वर्तमान तिथिकी गतकला है। उसको ७२० में घटानेसे गम्यकला होती है। गत और गम्यकलाको पृथक् ६० से गुणाकर चन्द्र और रविके स्पष्ट गत्यन्तरसे भाग देकर लब्धि-क्रमसे भुक्त (गत) और गम्य घटी होती हैं। (पञ्चाङ्गमें वर्तमान तिथिके आगे गम्यघटी लिखी जाती है)[3] ॥१२२॥

तिथयः शुक्लप्रतिपदो याता द्विघ्ना नगोद्धृताः।
शेषं बवो बालवश्च कौलवस्तैतिलो गरः॥१२३॥
वणिजश्च भवेद्विष्टिः कृष्णभूतापरार्द्धतः।
शकुनिर्नागश्च चतुष्पदः किंस्तुघ्नमेव च॥१२४॥

(तिथिमें करण जाननेकी रीति—) शुक्लपक्षकी प्रतिपदादि गत-तिथि-संख्याको दूना करके ७ के द्वारा भाग देनेसे १ आदि शेषमें क्रमसे १ बव, २ बालव, ३ कौलव, ४ तैतिल, ५ गर, ६ वणिज, ७ विष्टि (भद्रा)—ये करण वर्तमान तिथिके पूर्वार्धमें होते हैं[4]। (ये ७ करण शुक्ल प्रतिपदाके उत्तरार्धसे कृष्ण १४ के पूर्वार्धतक (२८) तिथियोंमें ८ आवृत्ति कर आते हैं। इसलिये ये ७ चर करण कहलाते हैं। कृष्णपक्ष १४ के उत्तरार्धसे शुक्ल प्रतिपदाके पूर्वार्धतक, क्रमसे १ शकुनि, २ नाग, ३ चतुष्पद और ४ किंस्तुघ्न—ये चार स्थिर करण होते हैं[5] ॥१२३-१२४॥

शिलातलेऽम्बुसंशुद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे।

१. उदाहरण—जैसे स्पष्टचन्द्रमाकी गति ८१९, राश्यादि २।१०।१५।२५ है, तो इसको कलात्मक बनानेसे ४२१५।२५ हुई। कलामें ८०० के द्वारा भाग देनेसे लब्धि ५ हुई। यह गत नक्षत्र अश्विनीसे ५ वें मृगशिराका सूचक है। शेष २१५।२५ यह वर्तमान आर्द्रा नक्षत्रकी गतकला हुई। इसको भभोग (८००)-में घटानेसे शेष ५८४।३५ यह आर्द्राकी गम्यकला हुई। इस प्रकार उदयकालिक चन्द्रकलासे नक्षत्रकी गम्यकलाद्वारा त्रैराशिकसे नक्षत्रकी गम्यघटी साधनकर पञ्चाङ्गमें लिखी जाती है। त्रैराशिक इस प्रकार है—यदि चन्द्रगतिकलामें ६० घड़ी तो गत, गम्यकलामें क्या? इसका उत्तर आगे श्लोक १२२ की टिप्पणीमें देखिये, तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण—इन ५ को पञ्चाङ्ग कहते हैं। स्पष्टचन्द्रमासे उक्त रीतिद्वारा साधित नक्षत्र ही पञ्चाङ्गोपयोगी नक्षत्र होता है। अर्थात् वही नक्षत्र पञ्चाङ्गमें लिखा जाता है।

२. योग-साधन—स्पष्टसूर्य और चन्द्रमाके योग ७।२९।५७।४० की कला १४३९७।४० में ८०० से भाग देनेपर लब्धि १७ गत योग व्यतीपात हुआ; शेष ७९७।४० यह वर्तमान वरीयान् योगका भुक्त हुआ; इसको ८०० कलामें घटानेसे शेष २।२० वरीयान्का भोग्य हुआ। उपर्युक्त विधिसे भुक्त ७९७।४० और भोग्य २।२० कलाको पृथक्-पृथक् ६० घड़ीसे गुणा कर गुणनफलमें सूर्य और चन्द्रमाकी गतिके योग ८७६।३६ से भाग देनेपर लब्धि क्रमशः भुक्त घड़ी-पल ५४।३५ और भोग्य घड़ी-पल ०।९ हुई।

३. जैसे आर्द्रा नक्षत्रकी गम्यकला ५८४।३५ हैं तो उसको ६० से गुणा करनेसे गुणनफल ३५०७५ में चन्द्रगतिकला ८१९ से भाग देनेपर लब्धि घट्यादि ४२।४९ यह आर्द्राका गम्य (उदयसे आगेका) मान हुआ।

तिथि-साधन—यदि उदयकालमें चन्द्रमा ६।२४।१५।३, सूर्य १।५।४२।३७, चन्द्रगति ८१९।०, सूर्य-गति ५७।३६ है तो चन्द्रमा ६।२४।१५।३ में सूर्य १।५।४२।३७ को घटानेसे शेष ५।१८।३२।२६ की कला १०११२।२६ में ७२० से भाग देनेपर लब्धि १४ गत तिथि हुई; शेष ०।३२।२६ पूर्णिमाकी गत कलादि है। इसको ७२० कलामें घटानेसे शेष ६८७।३४ पूर्णिमाकी भोग्य कलादि हुई। गत कला ३२।२६ को ६० से गुणा कर गुणनफल १९४६ में चन्द्रमा और सूर्यकी गत्यन्तरकला ७६१।२४ से भाग देनेपर लब्ध घड़ी-पल २।३३ पूर्णिमा तिथिका भुक्त हुआ। तथा भोग्य कला ६८७।३४ को ६० से गुणाकर गुणनफल ४१२५४ में गत्यन्तरकला ७६१।२४ से भाग देनेपर लब्ध घट्यादि ५४।१२ पूर्णिमा तिथिका भोग्य (सूर्योदयसे आगेका मान) हुआ।

४. जैसे शुक्लपक्षकी द्वादशीमें करणका ज्ञान प्राप्त करना है तो गत तिथि-संख्या ११ को दूना करनेसे २२ हुआ। इसमें ७ से भाग देनेपर शेष १ रहा। अतः द्वादशीके पूर्वार्धमें बव और उत्तरार्धमें बालव नामक करण हुआ। कृष्ण पक्षकी तिथि-संख्यामें १५ जोड़कर तिथि-संख्या ग्रहण करनी चाहिये। जैसे कृष्ण पक्षकी द्वादशीमें करण जानना हो तो गत तिथि-संख्या २६ को २ से गुणा करके गुणनफल ५२ में ७ से भाग देनेपर शेष ३ रहा। अतः द्वादशीके पूर्वार्धमें तीसरा कौलव और उत्तरार्धमें चौथा तैतिल नामक करण हुआ।

५. तिथिमानका आधा करण कहलाता है। इसलिये एक-एक तिथिमें २, २ करण होते हैं। बवादि ७ चर करण और शकुनि आदि ४ स्थिर करण हैं।

तत्र शङ्क्वङ्गुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत्॥ १२५॥
तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं कल्पनाद्द्वादशाङ्गुलम्।
तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापरार्द्धयोः॥ १२६॥
तत्र बिन्दुं विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्तव्या दक्षिणोत्तरा॥ १२७॥
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा।
दिङ्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि॥ १२८॥
चतुरस्त्रं बहिः कुर्यात् सूत्रैर्मध्याद्विनिःसृतैः।
भुजसूत्राङ्गुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभा स्मृता॥ १२९॥
प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डले।
उन्मण्डले च विषुवन्मण्डले परिकीर्त्यते॥ १३०॥
रेखा प्राच्यपरा साध्या विषुवद्भाग्रगा तथा।
इष्टच्छायाविषुवतोर्मध्यमग्राभिधीयते ॥ १३१॥

(**दिक्साधन—**) जलसे संशोधित (परीक्षित) शिलातल या वज्रलेप (सीमेंट) से सम बनाये हुए भूतलमें जिस अङ्गुलमानसे शङ्कु बनाया गया हो, उसी अङ्गुलमानसे अभीष्ट त्रिज्याङ्गुलसे वृत्त बनाकर उसके मध्य (केन्द्र)-में समान द्वादश विभाग (कल्पित अङ्गुल)-से बने हुए शङ्कुकी स्थापना करे। उस शङ्कुकी छायाका अग्र भाग दिनके पूर्वार्धमें जहाँ वृत्त-परिधिमें स्पर्श करे, वहाँ पश्चिम बिन्दु जाने और दिनके उत्तरार्धमें फिर उसी शङ्कुकी छायाका अग्रभाग जहाँ वृत्तपरिधिको स्पर्श करे, वहाँ पूर्व बिन्दु समझे। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम बिन्दुका ज्ञान करे। अर्थात् उन दोनों बिन्दुओंमें एक सरल रेखा खींचनेसे पूर्वापर-रेखा होगी। उस पूर्वापर रेखाके दोनों अग्रोंको केन्द्र मानकर दो वृत्तार्ध बनानेसे मत्स्याकार होगा। उसके मुख एवं पुच्छमें रेखा करनेसे दक्षिणोत्तर-रेखा होगी। यह दक्षिणोत्तररेखा केन्द्रबिन्दुमें होकर जाती है। यह रेखा जहाँ वृत्तमें स्पर्श करे, वहाँ दक्षिण तथा उत्तर दिशाके बिन्दु समझे। फिर इस दक्षिणोत्तर-रेखापर पूर्व-युक्तिसे मत्स्योत्पादनद्वारा पूर्वापर-रेखा बनावे तो यह रेखा केन्द्रबिन्दुमें होकर ठीक पूर्व और पश्चिम-बिन्दुका वृत्तमें स्पर्श करेगी। इस प्रकार चार दिशाओंको जानकर पुनः दो-दो दिशाओंके मध्यबिन्दुसे मत्स्योत्पादनद्वारा विदिशाओं (कोणों)-का ज्ञान करना चाहिये॥ १२५—१२८॥

(इस प्रकार वृत्तमें दिशाओंका ज्ञान होनेपर) वृत्तके बाहर चारों दिशाओंके बिन्दुओंसे स्पर्शरेखाद्वारा चतुरस्त्र (चतुर्भुज) बनावे। वृत्तके मध्यकेन्द्रसे भुजाङ्गुलतुल्य (भुजकी दिशामें उत्तर या दक्षिण) बिन्दुपर छायारेखा होती है। उस छायारेखाको पूर्वापर-रेखाके समानान्तर बनावे। पूर्वापर-रेखा, पूर्वापर-वृत्त, उन्मण्डल और नाडी वृत्तके धरातलमें होती है। इसलिये क्षितिज धरातलगत वृत्तके केन्द्रसे पूर्वापर रेखा खींचकर फिर पलभाग्र बिन्दुगत पूर्वापरके समानान्तर रेखा बनावे। इस प्रकार इष्ट-छायाग्रगत तथा पलभा रेखाके बीच (अन्तर)-को 'अग्रा' कहते हैं॥ १२९—१३१॥

शङ्कुच्छायाकृतियुतेर्मूलं कर्णोऽस्य वर्गतः।
प्रोज्झ्य शङ्कुकृतिं मूलं छाया शङ्कुर्विपर्ययात्॥ १३२॥

शङ्कु (१२)-के वर्गमें छायाके वर्गको जोड़कर मूल लेनेसे छायाकर्ण होता है और छायाकर्णके वर्गमें शङ्कुके वर्गको घटानेसे मूल छाया होती है तथा छायाके-घटानेसे मूल शङ्कु होता है[१]॥ १३२॥

त्रिंशत्कृत्वो युगे भानां चक्रं प्राक् परिलम्बते।
तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्ताद् द्युगणाद्यदवाप्यते॥ १३३॥
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधाः।
तत्संस्कृताद्ग्रहात्क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम् ॥ १३४॥

(**अयनांश-साधन—**) एक युगमें राशिचक्र सृष्ट्यादि स्थानसे पूर्व और पश्चिमको ६०० बार चलित होता है। जो उसके भगण कहलाते हैं। इसलिये अहर्गणको ६०० से गुणा करके युगके कुदिनसे भाग देकर राश्यादि-फलसे भुज बनावे। उस भुजको ३ से गुणा करके १० के द्वारा भाग दे तो लब्धि अयनांश होती है। इस अयनांशको अहर्गणद्वारा

१. क्योंकि शङ्कुकोटि, छायाभुज और इन्हीं दोनोंके वर्गयोगका मूल छायाकर्ण कहलाता है।

साधित ग्रहमें जोड़कर क्रान्ति, छाया और चरखण्ड आदि बनाने चाहिये[1] ॥१३३-१३४॥

शङ्कुच्छायाहते त्रिज्ये विषुवत्कर्णभाजिते।
लम्बाक्षज्ये तयोश्चापे लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा ॥ १३५ ॥

(**लम्बांश और अक्षांश-साधन—**) शङ्कु (१२) और पलभाको पृथक्-पृथक् त्रिज्यासे गुणा करके उसमें पलकर्णसे भाग देनेपर लब्धि क्रमशः 'लम्बज्या' और 'अक्षज्या' होती है। दोनोंके चाप बनानेसे 'लम्बांश' और 'अक्षांश' होते हैं। इनकी दिशा सर्वदा दक्षिण समझी जाती है[2] ॥ १३५ ॥

स्वाक्षार्कापक्रमयुतिर्दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा।
शेषा नतांशाः सूर्यस्य तद्बाहुज्या च कोटिजा ॥ १३६ ॥
शङ्कुमानाङ्गुलाभ्यस्ते भुजत्रिज्ये यथाक्रमम्।
कोटिज्यया विभज्याप्ते छायाकर्णावहर्दले ॥ १३७ ॥

(**सूर्य-ज्ञानसे मध्याह्न-छाया-साधन—**) अपने अक्षांश और सूर्यके क्रान्त्यंश दोनों एक दिशाकी ओर हों तो योग करनेसे और यदि भिन्न दिशाके हों तो दोनोंको अन्तर करनेसे शेष सूर्यका 'नतांश' होता है। उस 'नतांश' की 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनावे। भुजज्या और त्रिज्याको पृथक्-पृथक् शङ्कुमान (१२) से गुणा करके उसमें कोटिज्यासे भाग देनेपर लब्धि क्रमशः मध्याह्नकालमें छाया और छायाकर्णके मानका सूचक होती है[3] ॥ १३६-१३७ ॥

स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा।
दिग्भेदे पक्रमः शेषस्तस्य ज्या त्रिज्यया हता ॥ १३८ ॥
परमापक्रमज्याप्ता चापं मेषादिगो रविः।
कर्क्यादौ प्रोज्झ्य चक्रार्द्धात्तुलादौ भार्धसंयुतात् ॥ १३९ ॥
मृगादौ प्रोज्झ्य चक्रात्तु मध्याह्नेऽर्कः स्फुटो भवेत्।
तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः ॥ १४० ॥

(**मध्याह्न-छायासे-सूर्यसाधन—**) अपने 'अक्षांश' और मध्याह्नकालिक सूर्यके 'नतांश' दोनों एक दिशाके हों तो अन्तर करनेसे और यदि भिन्न दिशाके हों तो योग करनेसे जो फल हो, वह सूर्यकी 'क्रान्ति' होती है। 'क्रान्तिज्या' को 'त्रिज्या' से गुणा करके उसमें 'परमक्रान्तिज्या' (१३९७)-से भाग देनेपर लब्धि सूर्यकी 'भुजज्या' होती है। उसके चाप बनाकर मेषादि ३ राशिमें सूर्य हों तो वही स्पष्ट सूर्य होता है[4]। कर्कादि ३ राशिमें हों तो उस चापको ६ राशिमें घटानेसे,

---

१. अयनांश-साधनका उदाहरण काल-साधनमें पहले बतलाया जा चुका है।

२. जैसे—१२ अङ्गुल शङ्कुको त्रिज्याका ३४३८ से गुणा कर गुणनफल ४१२५६ में पलकर्ण $१३+\frac{२}{५}=\frac{६७}{५}$ से भाग देनेपर लब्धि ३०७९ लम्बज्या हुई, इसकी चापकला ३८१४ में ६० से भाग देनेपर अंशादि ६३। ३४ लम्बांश हुआ। इसको ९० अंशमें घटानेसे २६। २६ अक्षांश हुआ।

३. यदि मध्याह्नकालिक राश्यादि ०।९।५१ सायन सूर्य है तो उस दिन गोरखपुरमें मध्याह्नकालिक छायाका प्रमाण क्या होगा?

उत्तर—सायन सूर्य ०।९।५१ की भुजकला ५९१ की ज्या ५८७ को परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा करके गुणनफल ८२००३९ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेसे लब्धि सूर्यकी क्रान्तिज्या २३८ कलाका चाप भी स्वल्पान्तरसे इतना ही हुआ। अतः इसके अंश बनानेसे ३।५८ यह सूर्यकी अंशादि क्रान्ति सूर्यके उत्तर गोलमें होनेके कारण उत्तरकी हुई। अतः अक्षांश २६।२६ और क्रान्त्यंश ३।५८ का अन्तर करनेसे २२।२८ यह नतांश हुआ। इसको ९० अंशमें घटानेसे नतांशकी कोटि ६७।३२ हुई। नतांशकी भुजज्या १३०८ और कोटिज्या ३१७८ हुई। भुजज्या १३०८ को १२ से गुणा कर गुणनफल १५६९६ में कोटिज्यासे भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ५ अङ्गुल मध्याह्नकालिक छायाका प्रमाण हुआ।

४. गोरखपुरमें सायन मेष-संक्रान्तिके बाद वैशाख कृष्णपक्षमें यदि मध्याह्नके समय १२ अङ्गुल शङ्कुकी छाया ५ अङ्गुल उत्तर दिशाकी है तो उस दिन राश्यादि स्पष्ट सूर्य क्या होगा?

उत्तर—छाया ५ के वर्ग २५ में शङ्कु १२ का वर्ग १४४ जोड़नेसे १६९ हुआ। इसका वर्गमूल १३ छाया-कर्ण हुआ। छाया ५ को त्रिज्यासे गुणा करके गुणनफल ३४३८×५=१७१९० छाया कर्ण १३ का भाग देनेसे लब्धि १३२२ सूर्यकी नतज्या हुई। इसका चाप १३५८ हुआ। इसको अंशात्मक बनानेसे २२।३८ सूर्यका नतांश हुआ। यह उत्तर छाया होनेके कारण दक्षिण दिशाका हुआ। अतः इसको गोरखपुरके अक्षांश २६।२६ में घटानेसे ३।४८ यह सूर्यकी क्रान्ति हुई, इसकी कला २२८ की ज्या भी इतनी ही हुई। इस क्रान्तिज्या २२८ को त्रिज्यासे गुणा करके गुणनफलमें परमक्रान्तिज्या १३९७ से भाग देनेपर लब्धि ५६१ सूर्यकी भुजज्या हुई। इसकी चापकला ५६३ को अंशादि बनानेसे ०।९।२३ राश्यादि सूर्य हुआ, यही मेषादि ३ राशिके भीतर होनेके कारण उस दिन मध्याह्नकालिक सायनसूर्य हुआ।

तुलादि ३ राशिमें हों तो ६ राशिमें जोड़नेसे और मकरादि ३ राशिमें हों तो १२ राशिमें घटानेसे जो योग या अन्तर हो, वह मध्याह्नमें स्पष्ट सूर्य होता है। उस स्पष्ट सूर्यसे विपरीत क्रियाद्वारा मन्दफलसाधन कर बार-बार संस्कार करनेसे मध्यम सूर्यका ज्ञान होता है ॥ १३८—१४० ॥

ग्रहोदयाप्राणहता खखाष्टैकोद्धृता गतिः।
चक्रासवो लब्धयुताः स्वाहोरात्रासवः स्मृताः ॥ १४१ ॥

(**ग्रहोंके अहोरात्र-मान—**) जिस राशिमें तत्काल ग्रह हो, उस राशिके उदयमानसे उस ग्रहकी गतिको गुणा करके उसमें १८०० से भाग देकर लब्ध असुको 'अहोरात्रासु' (२१६००)-में जोड़नेपर उस ग्रहका अहोरात्रमान होता है। (असुसे पल और घड़ी बना लेनी चाहिये।)[1] ॥१४१ ॥

त्रिभद्युकर्णार्द्धगुणाः स्वाहोरात्रार्द्धभाजिताः।
क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक् पृथक्॥ १४२ ॥
स्वाधोऽधः प्रविशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः।
खागाष्टयोऽर्थगोऽगैकाः शरत्र्यङ्कहिमांशवः ॥ १४३ ॥
स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः।
व्यस्ता व्यस्तैर्युताः स्वैः स्वैः कर्कटाद्यास्ततस्त्रयः ॥ १४४ ॥
उत्क्रमेण षडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादयः।

राशियोंके उदयमान—१ राशि, २ राशि, ३ राशिकी ज्याको पृथक्-पृथक् 'परमाल्पद्युज्या' (परमक्रान्तिकी कोटिज्या)-से गुणा करके उसमें अपनी-अपनी द्युज्या (क्रान्तिकोटिज्या) से भाग देकर लब्धियोंके चाप बनावे। उनमें प्रथम चाप मेषका उदय (लङ्कोदय)-मान होता है। प्रथम चापको द्वितीय चापमें घटानेपर शेष वृषका उदयमान होता है एवं द्वितीय चापको तृतीय चापमें घटाकर जो शेष रहे, वह मिथुनका लङ्कोदयमान होता है। यथा—१६७० असु मेषका, १७९५ वृषका तथा १९३५ मिथुनका सिद्ध लङ्कोदयमान है[2]। इन तीनोंमें क्रमसे अपने देशीय तीनों चरखण्डोंको घटावे तो क्रमशः तीनों अपने देशके मेष आदि तीन राशियोंके उदयमान होते हैं। पुनः उन्हीं तीनों लङ्कोदयमानोंको उत्क्रमसे रखकर—इन तीनोंमें अपने देशके तीनों चरखण्डोंको उत्क्रमसे जोड़नेपर कर्क आदि ३ राशियोंके स्वदेशोदयमान होते हैं एवं मेषादि कन्यापर्यन्त ६

---

१. जैसे स्पष्ट सूर्य ०।९।५१।१५ हो, उसकी गतिकला ५८ हो तो उसको मेषके स्वदेशोदयमान १३१० असुसे गुणा करके गुणनफल ७५९८० में १८०० से भाग देनेपर लब्धि ४२ असु हुई। उसको अहोरात्रासु (२१६००) में जोड़नेसे २१६४२ असु सूर्यके अहोरात्रका प्रमाण हुआ। इसका पल बनानेसे ३६०७ अर्थात् नाक्षत्र अहोरात्रसे सूर्यका अहोरात्र ७ पल अधिक हुआ। इसी प्रकार सब ग्रहोंके अहोरात्रमान समझे।

२. राशियोंके लङ्कोदयमान-साधनका उदाहरण—एक राशि (१८०० कला)-की ज्या १७१९ उसकी द्युज्या ३३५१ तथा परमाल्पद्युज्या ३१३९ कला है तो एक राशिज्या १७१९ को परमाल्पद्युज्या ३१३९ से गुणा करके गुणनफल ५३९५९४१ में एक राशिकी द्युज्या ३३५१ से भाग देकर लब्धि एक राशि उदयज्या १६१० हुई। इसका चाप मेषका उदयासु स्वल्पान्तरसे १६७० हुआ। इसी प्रकार आगे अपनी-अपनी ज्या और द्युज्यासे साधन करके राशियोंके उदयासु लिखे गये हैं। यथा—

	लङ्कोदयासु		चरासु		स्वदेशोदयासु	
मेष	१६७०	-	३६०	=	१३१०	मीन
वृष	१७९५	-	२८८	=	१५०७	कुम्भ
मिथुन	१९३५	-	१२०	=	१८१५	मकर
कर्क	१९३५	+	१२०	=	३०५५	धनु
सिंह	१७९५	+	२८८	=	२०८३	वृश्चिक
कन्या	१६७०	+	३६०	=	२०३०	तुला

ये उदयमान अनुसंख्यामें हैं। इनमें ६ के भाग देनेसे पलात्मक होते हैं। यथा—मेषोदयासु=१६७०, अतः मेषोदयपल=$\frac{१६७०}{६}$ =२७८ स्वल्पान्तरसे। एवं अन्य मान निम्नाङ्कित चित्रमें देखिये।

राशियोंके उदयमान सिद्ध होते हैं। पुनः ये ही उत्क्रमसे तुलादि ६ राशियोंके मान होते हैं[1] ॥ १४२—१४४ १/२ ॥

गतभोग्यासवः कार्याः सायनात् स्वेष्टभास्करात्॥ १४५ ॥
स्वोदयासुहता भुक्तभोग्या भक्ताः खवह्निभिः।
अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासून्प्रविशोधयेत्॥ १४६ ॥
तद्वदेवैष्यलग्नासूनेवं यातांस्तथोत्क्रमात्।
शेषं चेत् त्रिंशताभ्यस्तमशुद्धेन विभाजितम्॥ १४७ ॥
भागयुक्तं च हीनं च व्ययनांशं तनुः कुजे।

लग्न-साधन—इष्टकालिक सायनांश सूर्यके भुक्तांश और भोग्यांशद्वारा 'भुक्तासु' और 'भोग्यासु' का साधन करना चाहिये। (यथा—भुक्तांशको सायन सूर्यके स्वदेशोदयमानसे गुणा करके ३० का भाग देनेपर लब्धि 'भुक्तासु' और भोग्यांशको स्वदेशोदयमानसे गुणा करके उसमें ३० के द्वारा भाग देनेपर लब्धि 'भोग्यासु' होते हैं। इष्ट घटीके 'असु' बनाकर उसमें 'भोग्यासु' को घटावे, घटाकर जो शेष बचे, उसमें अग्रिम राशियोंमेंसे जितनेके स्वदेशोदयमान घटें, उतने घटावे। (अथवा) इसी प्रकार 'इष्टासु' में 'भुक्तासु' घटाकर शेषमें, गत राशियोंके उत्क्रमसे उनके जितने स्वदेशोदयमान घटें, घटावे। जिस राशितकका मान घट जाय, वहाँतक 'शुद्ध' और जिसका मान नहीं घटे, वह 'अशुद्ध' संज्ञक होती है। बचे हुए 'इष्टासु' को ३० से गुणा करके 'अशुद्ध' राशिके उदयमानसे भाग देकर लब्ध अंशादिको (भोग्य-क्रम-विधि हो तो) शुद्ध राशिसंख्यामें जोड़ने और (भुक्त-उत्क्रम-विधि हो तो) अशुद्ध राशिकी संख्यामें घटानेसे 'सायन लग्न' होता है। उसमें अयनांश घटानेसे फलकथनोपयुक्त उदयलग्न होता है[2] ॥१४५—१४७ १/२ ॥

प्राक् पश्चान्नतनाडीभिस्तद्वल्लङ्कोदयासुभिः ॥ १४८ ॥
भानौ क्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तदा भवेत्।
भोग्यासूनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च ॥ १४९ ॥
सपिण्ड्यान्तरलग्नासूनेवं स्यात्कालसाधनम्।

(मध्य-दशम लग्न-साधन—) इसी प्रकार पूर्व 'नतकालासु' से लङ्कोदयद्वारा अंशादि साधन करके उसको सूर्यमें घटानेसे तथा पश्चिम 'नतकालासु' और

---

१. उदाहरण—पलमान ६ हैं, वहाँ चरखण्ड-क्रमसे पलात्मक ६०। ४८। २० हुए। इनको क्रम-उत्क्रमसे पलात्मक लङ्कोदयमें घटाने और जोड़नेसे ६ पलभादेशीय (स्वदेशोदय)-मान हुए। चक्रमें देखिये—

	लङ्कोदया		चरखण्ड		स्वदेशोदया	
मे.	२७८	-	६०	=	२१८	मी.
वृ.	२९९	-	४८	=	२५१	कुं.
मि.	३२३	-	२०	=	३०३	म.
क.	३२३	+	२०	=	३४३	ध.
सि.	२९९	+	४८	=	३४७	वृ.
क.	२७८	+	६०	=	३३८	तु.

२. जैसे—यदि कल्पित अयनांश १८। १० और सूर्य १। ५। ५२। ४० है तो उनका योग सायन सूर्य १। २४। २। ४० हुआ। इष्ट काल घड़ी-पल १०। २० है। अतः सूर्यके वृषराशि-भोग्यांश ५। ५७। २० और इष्ट कालासु ३७२० हुए। सूर्यके भोग्यांश ५। ५७। २० को वृषराशिके स्वोदयासु संख्या १५०७ से गुणा करनेपर ३७२०। ८५८९९। ३०१४० को ६० से सवर्णन करनेपर ८९७५। १। २० हुआ। इसमें ३० का भाग देनेसे लब्धि २९९। १०। ३ भोग्यासु हुई। इसको इष्टकालासु ३७२० में घटानेसे ३४२०। ४९। ५७ हुआ। इसमें वृषके परवर्ती मिथुनके स्वोदयासु १८१५ को घटानेसे शेष १६०५। ४९। ५७ हुआ। इसमें कर्कका स्वोदयासु-२०५५ नहीं घटता है; इसलिये कर्कराशि अशुद्ध और मिथुन शुद्ध संज्ञक हुआ। शेष असु १६०५। ४९। ५७ को ३० से गुणा करनेपर ४८१७४। ५८। ३० हुआ। इसमें अशुद्ध कर्कके स्वोदयमान २०५५ का भाग देनेसे लब्ध अंशादि २३। २६। ३२ में शुद्धराशि (मिथुन) संख्या ३ जोड़नेसे ३। २३। २६। ३२ हुआ। इसमें अयनांश १८। १० को घटानेसे ३। ५। १६। ३२ यह लग्न हुआ।

लग्न बनानेमें विशेषता यह है कि यदि सूर्योदयसे इष्टकालद्वारा लग्न बनाना हो तो सायन सूर्यके भोग्यांशद्वारा तथा इष्टकालको ६० घड़ीमें घटाकर शेषकालद्वारा बनाना हो तो सूर्यके भुक्तांशद्वारा ही उपर्युक्त विधिसे लग्न बनाना चाहिये।

लङ्कोदयद्वारा (त्रैराशिकसे) अंशादि साधन करके सूर्यमें जोड़नेसे मध्य (दशम-आकाशमध्य) लग्न होता है[1] ॥ १४८ १/२ ॥

(लग्न और स्पष्ट-सूर्यको जानकर इष्टकाल-साधन—) लग्न और सूर्य इन दोनोंमें जो ऊन (पीछे) हो, उसके 'भोग्यांश' द्वारा 'भोग्यासु' और जो अधिक (आगे) हो उसके भुक्तांशद्वारा 'भुक्तासु' साधनकर दोनोंको जोड़े तथा उसमें उन दोनों (लग्न और सूर्य)-के[2] बीचमें जो राशियाँ हों, उनके उदयासुओंको जोड़े तो 'इष्टकालासु' होते हैं[3] ॥ १४९ १/२ ॥

विराह्वर्कभुजांशाश्चेदिन्द्राल्पाः स्याद्ग्रहो विधोः ॥ १५० ॥
तेंऽशाः शिवघ्नाः शैलाप्ता व्यग्वर्कांशः शरोऽङ्गुलैः ।
अर्कं विधुर्विधुं भूभा छादयत्यथ छन्नकम् ॥ १५१ ॥
छाद्यच्छादकमानार्धं शरोनं ग्राह्यवर्जितम् ।
तत् खच्छन्नं च मानैक्यार्धं शराढ्यं दशाहतम् ॥ १५२ ॥
छन्नघ्नमस्मान्मूलं तु स्वाङ्गोनं ग्लौवपुर्हृतम् ।
स्थित्यर्द्धं घटिकादि स्याद् व्यगुवाह्वंशसंमितैः ॥ १५३ ॥
इष्टैः पलैस्तदूनाढ्यं व्यगावूनेऽर्कषड्गृहात् ।
तदन्यथाधिके तस्मिन्नेवं स्पष्टे मुखान्त्यगे ॥ १५४ ॥

(ग्रहण-साधन—) पर्वान्त[4] कालमें स्पष्ट सूर्य, चन्द्र और राहुका साधन करे। सूर्यमें राहुको घटाकर जो शेष बचे, उसके भुजांश यदि १४ से अल्प हो तो चन्द्रग्रहण[5]की सम्भावना समझे ॥१५०॥ उन भुजांशोंको ११ से गुणा कर ७ से भाग देनेपर लब्धि-अङ्क अङ्गुलादि 'शर' होता है ॥ १५० १/२ ॥

सूर्यको चन्द्रमा और चन्द्रमाको भूभा (पृथिवीकी छाया) छादित करती है। इसलिये सूर्यग्रहणमें सूर्य छाद्य और चन्द्रमा छादक तथा चन्द्रग्रहणमें चन्द्रमा छाद्य, भूभा छादक (ग्रहणकर्त्री) है—ऐसा समझना चाहिये। अब छन्न (ग्रास) मान कहते हैं—छाद्य और छेदकके विम्बमानका योग करके उसके आधेमें 'शर' घटानेसे 'छन्न' (ग्रास) मान होता है। यदि ग्रासमान ग्राह्य (छाद्य)-से अधिक हो तो उसमें

---

१. उदाहरण—यदि पूर्व 'नतकालासु' ३७५० और 'सायनसूर्य' ६।५।४।१० है तो भुक्त-प्रकारसे और 'लङ्कोदय' द्वारा दशम लग्नका साधन इस प्रकार होगा—सूर्यके 'भुक्तांश' ५।४।१० को तुलाराशिके 'लङ्कोदय' १६७० से गुणा करनेपर गुणनफल ८४६५ हुआ। इसमें ३० का भाग देनेसे भागफल २८२ सूर्यके भुक्तासु हुए। इनको 'नतकालासु' ३७५० में घटानेसे शेष ३४६८ रहा। उसमें सूर्यसे पीछेकी कन्याराशिके लङ्कोदयासु १७९५ को घटानेपर शेष १६७३ रहा। इसमें सिंहका लङ्कोदयासु १७९५ नहीं घटता है, अतः यह सिंह अशुद्ध संज्ञक हुआ। अब शेष असु १६७३ को ३० से गुणा करके गुणनफल ५०१९० में अशुद्ध उदयासु १७९५ का भाग देनेसे लब्ध अंशादि २७।५७।३९ हुए। इनको अशुद्ध राशि-संख्या ५ में घटानेपर शेष ४।२।२।२१ सायन दशम लग्न हुआ।

२. यहाँ आगे रहनेवाला अधिक और पीछे रहनेवाला ऊन समझा जाता है। एवं दोनोंके अन्तर ६ राशिसे अल्पवाला ग्रहण करना चाहिये। यदि सूर्य अधिक रहे तो रात्रि शेष इष्टकाल समझना चाहिये।

३. उदाहरणार्थ प्रश्न—यदि सायनसूर्य १।२४।४५।० और सायन लग्न ३।५।२०।३० है तो इष्टकाल क्या होगा?

उत्तर—यहाँ लग्न अधिक है, इसलिये लग्नके भुक्तांश ५।२०।३० को कर्कराशिके 'स्वदेशोदयासु' २०५५ से गुणा करनेपर गुणनफल १०९७७ हुए। उसमें ३० का भाग देनेपर ३६५।५४=३६६ लग्नके 'भुक्तासु' हुए। तथा सूर्यके भोग्यांश ५।१५।० को वृषराशिके 'स्वदेशोदयासु' १५०७ से गुणा कर गुणनफल ७९११ में ३० से भाग देनेपर लब्ध सूर्यके भोग्यासु २६४ हुए। लग्नके 'भुक्तासु' ३६६ और सूर्यके 'भोग्यासु' २६४ के योग ६३० में मध्यकी राशि मिथुनके 'स्वदेशोदयासु' १८१५ जोड़नेसे २४४५ 'इष्टकालासु' हुए। इनमें ६ का भाग देनेपर लब्धि पल ४०७।३० हुए। इनमें ६० का भाग देनेपर लब्ध घट्यादि ६।४७।३० सूर्योदयसे इष्टकाल हुआ।

४. चन्द्रग्रहणमें पूर्णिमा और सूर्यग्रहणमें अमावास्या पर्व कहलाता है।

५. सूर्य और चन्द्रग्रहणका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—ग्रह जिस मार्गमें घूमता हुआ पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, वह (मार्ग) उस ग्रहकी कक्षा कहलाता है। पृथ्वीसे सूर्यकी कक्षा दूर और चन्द्रकी कक्षा समीप है। इसलिये सूर्य और पृथ्वीके बीचमें ही चन्द्रमा घूमता रहता है।

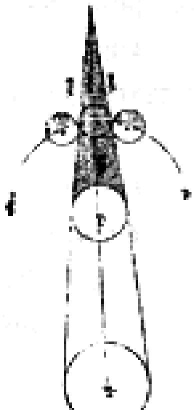
जिस दिशामें सूर्य रहता है, उससे विरुद्ध या सामनेकी दिशामें पृथ्वीकी छाया रहती है। जिस प्रकार सूर्य घूमता है, उसी प्रकार उक्त छाया भी घूमती है और उसकी लंबाई चन्द्रकक्षासे आगेतक बढ़ी हुई होती है। पृथ्वी गोल होनेके कारण चन्द्रकक्षामें पृथ्वीकी छाया भी गोलाकार ही होती है। वह सूर्यसे सर्वदा ६ राशिपर ही घूमती रहती है।

छाद्यको घटाकर जो शेष बचे, उतना खच्छन्न (खग्रास) समझना चाहिये[1]।

मानैक्यार्ध (छाद्य-छादकके बिम्ब-योगार्ध) में शर जोड़कर १० से गुणा करे। फिर ग्रासमानसे गुणा

चन्द्रमा अपनी कक्षामें घूमता हुआ जब सूर्यके साथ एक दक्षिणोत्तर रेखामें स्थित होता है, उस समय दर्शान्त (अमावास्याके अन्त और शुक्ल प्रतिपदाके आरम्भकी संधि)-काल कहलाता है। तथा जब सूर्यसे चन्द्रमा ६ राशि आगे पहुँच जाता है, उस समयको पूर्णिमान्त काल कहते हैं।

सर्वग्रास चन्द्र-ग्रहणका दृश्य



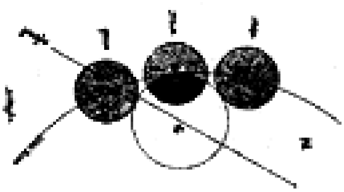
चन्द्रमाका बिम्ब जलमय है, उसके जिस भागपर सूर्यकी किरणें पड़ती हैं, वह भाग तेजोयुक्त (उज्ज्वल) दीख पड़ता है। अतः उसके द्वारा रात्रिमें भी अन्धकारका निवारण होता है।

ऊपर कहा गया है कि सूर्यसे ६ राशिपर पृथ्वीकी छाया घूमती है और चन्द्रमाके सूर्यसे ६ राशिपर पहुँचनेपर पूर्णिमा होती है; इसलिये जिस पूर्णिमामें चन्द्रमा पृथ्वीकी छायासे अगल-बगल होकर चला जाता है, उसमें चन्द्रग्रहण नहीं होता है। तथा जिस पूर्णिमामें चन्द्रमा पृथ्वीकी छायामें पड़ जाता है, उस समय उसपर सूर्यकी किरणें नहीं पड़ती हैं; अतः चन्द्रमा पूर्ण अदृश्य हो जाता है और वह 'सर्वग्रास' या 'खग्रास' 'चन्द्रग्रहण' कहलाता है। जिस पूर्णिमामें चन्द्रमाका कुछ ही भाग पृथ्वीकी छायामें पड़ता है, उस समय उतने ही भागके अदृश्य होनेके कारण उसे 'खण्डग्रहण' कहते हैं। इसीलिये चन्द्रग्रहण पूर्णिमाको ही होता है।

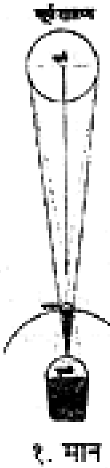
(सूर्यग्रहण—) ऊपर बताया गया है कि चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्यके बीचमें घूमता है और सूर्यके समीप एक दक्षिणोत्तर रेखामें पड़ता है, उस दिन चन्द्रमाके ऊपरी भागमें सूर्यकी किरणें पड़ती हैं (नीचेके भागमें जिसे हम देखते हैं, नहीं)। यही कारण है कि अमावास्याके दिन हमें चन्द्रमाका दर्शन नहीं होता है। रात्रिमें सूर्यके साथ ही चन्द्रमा भी पृथ्वीके नीचे चला जाता है।

जिस अमावास्याको पृथ्वी और सूर्यके मध्यमें चन्द्रमा आ जाता है, उस दिन उससे आच्छादित होकर सूर्यका बिम्ब अदृश्य हो जाता है; ठीक उसी तरह, जैसे मेघके खण्डसे आवृत होने पर वह अदृश्य होता है। इस प्रकार चन्द्रबिम्बसे जब सूर्यका सम्पूर्ण या न्यूनाधिक भाग अदृश्य होता है तो क्रमशः उसे 'सर्वग्रास' या 'खण्ड सूर्यग्रहण' कहते हैं।

खण्ड सूर्यग्रहणका दृश्य



सूर्यग्रहण



अमावास्यामें चन्द्रमाकी छाया पृथ्वीकी ओर होती है, उस छायामें जो भूभाग पड़ता है, उसके लिये सम्पूर्ण सूर्य-बिम्ब अदृश्य हो जाता है, अतः वहाँ सर्वग्रास सूर्यग्रहण होता है; अन्यत्र खण्ड-ग्रास। चित्र देखिये।

पुराणोंमें जो सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणमें राहु कारण बतलाया गया है, वह इस अभिप्रायसे है—अमृत-मन्थनके समय जब राहुका सिर काटकर अलग कर दिया गया, उस समय अमृत पीनेके कारण उसका मरण नहीं हुआ। वह एकसे दो हो गया। ब्रह्माजीने उन दोनोंमेंसे एक (राहु)-को चन्द्रमाकी छायामें और दूसरे (केतु)-को पृथ्वीकी छायामें रहनेके लिये स्थान दिया। अतः ग्रहण-समयमें राहु और केतु सूर्य और चन्द्रमाके समीप ही रहता है। अतः छायारूप राहु-केतुके द्वारा ही ग्रहणका वर्णन किया गया है।

१. मान लीजिये—पूर्णिमान्तकाल घट्यादि ४०।४८ और उस समयका स्पष्ट सूर्य राश्यादि ८।०।१२।६, चन्द्रमा २।०।१२।१ तथा राहु ७।२८।२३।१८ है तो स्पष्ट सूर्य ८।०।१२।६ में राहु ७।२८।२३।१८ को घटानेसे ०।१।४८।४८ व्यगु हुआ; यह ३ राशिसे कम है, अतः इसका भुजांश इतना ही अर्थात् १।४८।४८ हुआ। यह १४ अंशसे कम है, इसलिये ग्रहणकी सम्भावना निश्चित हुई। व्यगुके भुजांश १।४८।४८। को ११ से गुणा करके गुणनफल १९।५६।४८ में ७ का भाग देनेपर भागफल २।५०।'शर' हुआ। यह व्यगु उत्तर गोलमें होनेके कारण उत्तर दिशाका हुआ।

यहाँ श्रीसनन्दन मुनिने चन्द्रादिके मध्यम बिम्ब प्रसिद्ध होनेसे स्पष्ट बिम्बका साधन-प्रकार नहीं कहा है। अतः सरलतापूर्वक समझनेके लिये चन्द, रवि और भूभा (पृथ्वीकी छाया) के बिम्ब-साधनका प्रकार यहाँ दिखलाया जाता है।

करके गुणनफलका जो मूल हो उसमें अपना षष्ठांश घटाकर शेषमें चन्द्र-बिम्बसे भाग देनेपर लब्धि-प्राप्त घटी आदिको स्थित्यर्ध[1] समझे। इस स्थित्यर्धको दो स्थानोंमें रखे। व्यगु (व्यगवर्क—राहु घटाया हुआ सूर्य) यदि ६ या १२ राशिसे ऊन हो तो द्विगुणित व्यगु भुजांशतुल्य पलको प्रथम स्थानगत स्थित्यर्धमें घटावे और द्वितीय स्थानवालेमें जोड़े। यदि व्यगु ६ या १२ से अधिक हो तो विपरीत क्रमसे (प्रथम स्थानमें जोड़ने और द्वितीय स्थानमें घटानेसे) स्पर्श और मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध होते हैं[2] ॥ १५१—१५४ ॥

ग्रासे नखाहते छाद्यमानाप्ते स्युर्विंशोपकाः।
पूर्णान्तं मध्यमत्र स्याद्दर्शान्तेऽङ्कं त्रिभोनकम्॥ १५५ ॥
पृथक् तत्क्रान्त्यक्षभागसंस्कृतौ स्युर्नतांशकाः।
तद् द्विघ्नंशकृतिर्द्विघ्नी द्व्यूनार्धार्कयुता हरः॥ १५६ ॥
त्रिभोनाङ्कार्कविश्लेषांशाशोनघ्नाः पुरन्दराः।
हराप्ता लम्बनं स्वर्णं वित्रिभेऽर्काधिकोनके॥ १५७ ॥
विश्वघ्नलम्बनकलाढ्योनस्तु तिथिवद् व्यगुः।
शरोऽतो लम्बनं षड्घ्नं तल्लवाढ्योनवित्रिभात्॥ १५८ ॥
नतांशास्तद्दशांशोनघ्ना धृत्यस्तद्विवर्जितैः।
साष्टेन्द्रैलिप्तैः षड्भिस्तु भक्ता नतिर्नतांशदिक्॥ १५९ ॥
तयोनाढ्यो हि भिन्नैकदिक् शरःस्फुटतां व्रजेत्।
ततश्छन्नस्थितिदले साध्ये स्थित्यर्धषड्गतिः॥ १६० ॥
अंशास्तैर्वित्रिभं द्विष्ठं रहितं सहितं क्रमात्।
विधाय ताभ्यां संसाध्ये लम्बने पूर्ववत्तयोः॥ १६१ ॥
पूर्वोक्ते संस्कृते ताभ्यां स्थित्यर्द्धे भवतः स्फुटे।
ताभ्यां हीनयुतो मध्यदर्शः कालौ मुखान्तगौ॥ १६२ ॥

(ग्रहणका विंशोपक (बिस्वा) फल—) अङ्गुलादि ग्रासमानको २० से गुणा करके गुणनफलमें अङ्गुलात्मक छाद्यमानसे भाग दे, जो लब्धि आवे, वह विंशोपक फल होता है[3]।

गतिर्द्विघ्नीशाप्ताङ्गुलमुखतनुः स्यात् खररुचो
विधोर्भुक्तिर्वेदाद्रिभिरपहृता बिम्बमुदितम्।
नृपाश्वोना चान्द्रीगतिरपहृता लोचनकरै-
रदाढ्या भूभा स्यादिनगतिनगांशेन रहिता॥
(श्रीविश्वनाथ दैवज्ञ)

'सूर्यकी गतिको २ से गुणा करके गुणनफलमें ११ से भाग देनेपर जो लब्धि आवे, उतना ही सूर्यका अङ्गुलादि बिम्बमान होता है तथा चन्द्रमाकी गतिकलामें ७४ से भाग देनेपर जो लब्धि हो, उतने अङ्गुलादि चन्द्रबिम्बका मान होता है। चन्द्रमाकी गतिमें ७१६ घटाकर शेषमें २२ से भाग देनेपर लब्धिको ३२ में जोड़े; फिर उसमें सूर्यगतिके सप्तमांशको घटानेसे भूभा (पृथ्वीकी छाया) होती है।'

यथा—स्पष्ट सूर्यगति ६१। ११ और चन्द्रगति ८२४। ५ है तो उक्त रीतिसे सूर्यगतिके द्विगुणित १२२। २२ में ११ से भाग देनेपर भागफल ११। ७ सूर्यबिम्ब हुआ। तथा चन्द्रगति ८२४। ५ में ७४ से भाग देनेपर भागफल ११। ८ चन्द्रबिम्ब हुआ। चन्द्रगति ८२४। ५ में ७१६ घटाकर शेष १०८। ५ में २२ से भाग देनेपर लब्धि ४। ५५ में ३२ जोड़नेसे ३६। ५५ हुआ; इसमें सूर्यगति ६१। ११ का सप्तमांश ८। ४४ घटानेसे शेष २८। ११ भूभाका बिम्ब हुआ। अब छाद्य (चन्द्र) और छादक (भूभा)-के बिम्बके योग ११। ८+२८। ११=३९। १९ के आधे १९। ३९ में पूर्वसाधित शर २। ५० को घटानेसे शेष १६। ४९ ग्रासमान हुआ; यह छाद्य (चन्द्र) बिम्बसे अधिक है, अतः इसमें चन्द्रबिम्ब ११। ८ को घटानेसे शेष ५। ४१ खग्रास हुआ।

१. स्पर्शकालसे मोक्षकालका जो अन्तर है, उसे स्थिति कहते हैं। अतः उसका आधा मध्यम स्थित्यर्ध कहलाता है। स्पर्शकालसे मध्यकालतक स्पर्शस्थित्यर्ध और मध्यकालसे मोक्षकालतक मोक्षस्थित्यर्ध कहलाता है।

२. जैसे—छाद्य (चन्द्र) और छादक (भूभा)-के बिम्बयोग ३९। १९ के आधे १९। ३९ में शर २। ५० को जोड़नेपर २२। २९ हुआ; इसको १० से गुणा करनेसे गुणनफल २२४। ५० को ग्रासमान १६। ४९ से गुणा करनेपर ३७८०। ५६। ५० हुआ। इसके मूल ६१। २९ में अपने ही षष्ठांश १०। १५ को घटानेपर शेष ५१। १४ में चन्द्रमाके बिम्ब ११। ८ का भाग दिया तो लब्धि घट्यादि पल ४। ३६ स्थित्यर्ध हुआ।

व्यगुभुजांश १। ४८। ४८ को २ से गुणा करनेपर गुणनफल ३। ३७। ३६ पल अर्थात् स्वल्पान्तरसे ४ पल हुए। इन पलोंको व्यगु (राहु घटे हुए सूर्य)-के ०-१२ राशिसे अधिक होनेके कारण स्थित्यर्ध ४। ३६ में जोड़नेसे स्पर्शस्थित्यर्ध ४। ४० और स्थित्यर्धमें ४ पल घटानेसे ४। ३२ मोक्षस्थित्यर्ध हुआ।

३. जैसे—ग्रासमान १६। ४९ को २० से गुणा करनेपर गुणनफल ३३६। २० में छाद्यमान ११। ८ से भाग दिया

(सूर्यग्रहणमें विशेष लम्बन-घटी-साधन—) पर्वान्तकालमें ग्रहणका मध्य होता है। सूर्यग्रहणमें दर्शान्त कालिक लग्न बनाकर उसमें तीन राशि घटानेसे 'वित्रिभ' या 'त्रिभोन' लग्न कहलाता है। उसको पृथक् रखकर उसकी क्रान्ति और अक्षांशके संस्कार (एक दिशामें योग, भिन्न दिशामें अन्तर) करनेसे 'नतांश' होता है। उसका २२ वाँ भाग करके वर्ग करना चाहिये। यदि २ से कम हो तो उसीमें, यदि २ से अधिक हो जाय तो २ घटाकर शेषके आधेको उसी (वर्ग)-में जोड़कर पुन: १२ में जोड़नेसे 'हार' होता है। 'त्रिभोन' लग्न और सूर्यके अन्तरांशके दशमांशको १४ में घटाकर शेषको उसी दशमांशसे गुणा करे। उसमें पूर्वसाधित हारसे भाग देनेपर लब्धितुल्य घट्यादि लम्बन होता है। यह (लम्बन) यदि वित्रिभ सूर्यसे अधिक हो तो धन, अल्प हो तो ऋण होता है। अर्थात् साधित दर्शान्तकालमें इस लम्बनको जोड़ने-घटानेसे पृष्ठस्थानीय दर्शान्तकाल होता है॥ १५५—१५७॥

घट्यादि लम्बनको १३ से गुणा करनेपर गुणनफल कलादि होता है। उसको व्यग्वर्कमें जोड़ या घटाकर 'शर' बनावे तो (पृष्ठीय दर्शान्तकालिक) शर (स्पष्ट) होता है। तथा घट्यादि लम्बनको ६ से गुणा करके गुणनफलको अंशादि मानकर वित्रिभमें जोड़ या घटाकर नतांश-साधन करे। नतांशके दशमांशको १८ में घटाकर शेषको उसी दशमांशसे गुणा करे; गुणनफलको ६ अंश १८ कलामें घटाकर जो शेष बचे, उससे गुणनफलमें ही भाग देनेसे लब्धि अङ्गुलादि नतांशकी दिशाकी ही नति होती है। इस नति और पूर्व साधित शर दोनोंके संस्कार (भिन्न दिशा हो तो अन्तर, एक दिशा हो तो योग)-से स्पष्ट शर होता है। सूर्यग्रहणमें उसी शरसे और स्थित्यर्ध बनावे। स्थित्यर्धको ६ से गुणा करके अंशादि गुणनफलको वित्रिभमें घटावे और दूसरे स्थानमें जोड़े। इन दोनों परसे पूर्वविधिसे पृथक् लम्बनसाधन करके क्रमश: पूर्वविधिसे साधित स्पर्श और मोक्षकालमें संस्कार करनेसे स्पष्ट पृष्ठस्थानीय स्पर्श और मोक्षकाल होते हैं[1]॥ १५८—१६२॥

तो लब्ध ग्रहणविंशोपक बल ३०। १३ हुआ। जब विंशोपक २० होता है तो ग्रहणका पुराणोक्त साधारण फल होता है। यदि विंशोपक २० से कम हो तो कथित फल बलके अनुसार अल्प और २० से अधिक हो तो कथित फल अधिक होता है।

१. उदाहरण—जहाँ दक्षिण अक्षांश २५। २६। ४२, स्पष्ट दर्शान्तकाल घड़ी-पल १३। ४, दर्शान्तकालिक स्पष्ट सूर्य ८। ५। २६। २५, स्पष्ट चन्द्रमा ८। ५। २६। २०, राहु २। ११। ४१। १८, स्पष्ट सूर्यगति ६१। १५ और स्पष्ट चन्द्रगति ७२६। ३० है तो उक्त घटी-पलको इष्ट मानकर लग्न बनानेसे ११। २। ४६ १७ लग्न हुआ। इसमें ३ राशि घटानेपर त्रिभोन लग्न (वित्रिभ) ८। २। ४६। १७ हुआ। पूर्वोक्त रीतिके अनुसार साधन करनेपर इसकी क्रान्ति २३। ३८। १० हुई; यह वित्रिभके दक्षिण गोलमें होनेके कारण दक्षिण दिशाकी हुई। अत: इसको दक्षिण दिशाके अक्षांश २५। २६। ४२ में जोड़नेपर ४९। ४। ५२ नतांश हुए। उक्त नतांशके २२ वें भाग २। १३। ५१ का वर्ग करनेपर ४। ५८ हुआ, यह २ से अधिक है, इसलिये इसमें २ को घटानेपर शेष २। ५८ हुआ। इसके आधे १। २९ को उसी वर्ग ४। ५८ में जोड़नेसे ६। २७ हुआ। इसे १२ में जोड़नेपर १८। २७ 'हार' हुआ। तथा वित्रिभ लग्न ८। २। ४६। १७ और सूर्य ८। ५। २६। २५ के अन्तरांश २। ४०। ८ का दशमांश ०। १६ हुआ। इसको १४ में घटानेपर शेष १३। ४४ रहा। इसको उसी दशमांश ०। १६ से गुणा करनेपर गुणनफल ३। ३९ हुआ। इसमें हार १८। २७ का भाग देनेपर भागफल ०। ११ हुआ; यह (ग्यारह पल) लम्बन हुआ। सूर्यसे वित्रिभ अल्प होनेके कारण दर्शान्त घटी १३। ४ में इस लम्बन ११ पलको घटानेसे पृष्ठस्थानीय घट्यादि दर्शान्तकाल १२। ५३ हुआ।

अब घट्यादि ०। ११ लम्बनको १३ से गुणा किया तो गुणनफल २। २३ कलादि हुआ। उक्त लम्बनके ऋण होनेके कारण सूर्य ८। ५। २६। २५ में राहु २। ११। ४१। १८ का अन्तर करनेसे व्यग्वर्क ५। २३। ४५। ७ हुआ। इसमें २। २३ कलादिको घटानेपर ५। २३। ४२। ४४ पृष्ठस्थानीय व्यग्वर्क हुआ। इसको ६ राशिमें घटानेपर शेष ०। ६। १७। १६ यही भुजांश हुआ। इसको पूर्वोक्त शर-साधन-विधिके अनुसार ११ से गुणा करके ७ का भाग देनेपर लब्ध अङ्गुलादि ९। ५२ शर हुआ। यह व्यगुके उत्तर गोलमें (६ राशिसे कम) होनेके कारण उत्तर दिशाका हुआ।

फिर लम्बन ०। ११ को ६ से गुणा करनेपर गुणनफल अंशादि १। ६ को (ऋणलम्बन होनेके कारण) वित्रिभ लग्न ८। २। ४६। १७ में घटानेपर ८। १। ४०। १७ हुआ। इससे क्रान्ति-साधन-विधिके अनुसार दक्षिण दिशाकी क्रान्ति २३। ३४। ३५। हुई। इसको दक्षिण दिशाके अक्षांश २५। २६। ४२ में जोड़नेसे ४९। १। १७ दक्षिण दिशाका पृष्ठस्थानीय (स्पष्ट) नतांश हुआ। इस नतांशमें १० का भाग देनेपर लब्ध कलादि ४। ५४ को १८ घटानेसे शेष १३। ६ रहा। इसको उक्त दशमांश ४। ५४ से ही गुणा करनेपर ६४। ११ कलादि हुआ; इसके अंश १। ४। ११

अर्का घना विश्व ईशा नवपञ्चदशांशकाः।
कालांशास्तैरूनयुक्ते रवौ ह्यस्तोदयौ विधोः॥ १६३॥

(**ग्रहोंके उदयास्तकालांश—**) १२, १७, १३, ११, ९, १५ ये क्रमसे चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिके कालांश हैं। अपने-अपने कालांशतुल्य सूर्यसे पीछे ग्रह होते हैं तो अस्त और कालांशतुल्य सूर्यसे आगे होते हैं तो उदय होता है। (अर्थात् ग्रह अपने-अपने कालांशके भीतर सूर्यसे पीछे या आगे जबतक रहते हैं, तबतक सूर्य सान्निध्यवश अस्त (अदृश्य) रहते हैं)॥ १६३॥

दृष्ट्वा ह्यादौ खेटबिम्बं दृगौच्च्यं लम्बमेक्ष्य च।
तल्लम्बपातबिम्बान्तर्दृगौच्च्याप्तरविघ्नभा ॥ १६४॥

(**ग्रहोंके प्रतिबिम्बद्वारा छायासाधन—**) सम भूमिमें रखे हुए दर्पण आदिमें ग्रहोंके प्रतिबिम्बको देखकर दृष्टिस्थानसे भूमिपर्यन्त लम्ब पातकर दृष्टिकी ऊँचाईका मान समझे। लम्बमूल और प्रतिबिम्बके अन्तर-प्रमाणको दृष्टिकी ऊँचाईसे भाग देकर लब्धिको १२ से गुणा करनेपर उस समय उस ग्रहकी छायाका प्रमाण होता है[1]॥ १६४॥

अस्ते सावयवा ज्ञेया गतैष्यास्तिथयो बुधैः।
शरेन्द्वाप्तोत्तराशा सा संस्कृतार्कापमैर्विधोः॥ १६५॥
षोडशघ्नतिथिर्हीना स्वघ्नतिथ्याक्षभाहता।
व्यस्तेषु क्रान्तिभागैश्च द्विघ्नतिथ्या हृता स्फुटम्॥ १६६॥
संस्कारदिक्कं वलनमङ्गुलाद्यं प्रजायते।
स्वेष्वंशोनाः सितं तिथ्यो वलनाशोन्नतं विधोः॥ १६७॥
शृङ्गमन्यन्नतं वाच्यं वलनाङ्गुललेखनात्।

(**चन्द्रशृङ्गोन्नति-ज्ञान—**) सूर्यास्त-समयमें सावयव गत और एष्य तिथिका साधन करे। उस सावयव तिथिको १६ से गुणा करके उसमें तिथिके वर्गको घटाकर शेषको स्वदेशीय पलभासे गुणा करे। गुणनफलमें १५ से भाग देकर लब्धि (फल)-की दिशा उत्तर समझे। उसमें सूर्यकी क्रान्तिका यथोक्त

को ६ अंश १८ कलामें घटानेपर ५। १३। ४९ हुआ। इससे उपर्युक्त गुणनफल ६४। ११ में भाग देनेपर लब्धि १२। १८ अङ्गुलादि नति हुई। दक्षिण नतांश होनेके कारण इसकी दिशा दक्षिण हुई और पूर्वसाधित अङ्गुलादि शर ९। ५२ यह उत्तर दिशाका है; अतः भिन्न दिशा होनेके कारण दोनोंका अन्तर २। २६ अङ्गुलादि स्पष्ट शर हुआ। इस स्पष्ट शरके द्वारा चन्द्रग्रहणकी भाँति ग्रासमान आदि साधन करनेके लिये सूर्यस्पष्ट गति ६१। १५ को २ से गुणा कर गुणनफलमें ११ का भाग देनेपर सूर्यबिम्ब ११। ८ हुआ और चन्द्रस्पष्ट गति ७२६। ३० में ७४ का भाग देनेपर चन्द्रबिम्ब ९। ४९ हुआ। इन दोनोंका योगका आधा किया तो १०। २८ हुआ, उसमें स्पष्ट शर २। २६ को घटानेपर शेष अङ्गुलादि ८। २ यह ग्रासमान हुआ।

अब स्थिति-घटी-साधन करनेके लिये सूर्य और चन्द्रके बिम्बयोगार्ध १०। २८ में स्पष्ट शर २। २६ को जोड़नेपर योगफल १२। ५४ हुआ। इसको १० से गुणा करनेपर गुणनफल १२९। ० को ग्रासमान ८। २ से गुणा किया तो गुणनफल १०३६। १८ हुआ। इसके मूल ३२। ११ में इसीके षष्ठांश ५। २२ को घटानेपर शेष २६। ४९ में चन्द्रबिम्ब ९। ४९ का भाग देनेपर लब्धि घट्यादि २। ४४ स्थिति-घटी हुई।

अब स्थिति-घटी २। ४४ को ६ से गुणा करके गुणनफल अंशादि १६। २४ को वित्रिभ लग्न ८। २। ४६। १७ में घटानेसे ७। १६। २२। १७ स्पर्शकालिक वित्रिभ हुआ। तथा दर्शान्तकालकी गति ६१। १५ को स्थिति-घटी २। ४४ द्वारा गुणा करके गुणनफल १६७ में ६० का भाग देनेपर लब्धि २। ४७ को दर्शान्तकालिक सूर्य ८। ५। २६। २५ में घटानेपर स्पर्शकालिक सूर्य ८। ५। २३। ३८ हुआ। इन स्पर्शकालिक सूर्य और वित्रिभ लग्नके द्वारा पूर्वदर्शित विधिसे स्पर्शकालिक ऋणलम्बन १। १७ घट्यादि हुआ।

इसी प्रकार स्थिति-घटी २। ४४ को ६ से गुणा करनेपर अंशादि फल १६। २४ को वित्रिभ लग्न ८। २। ४६। १७ में जोड़नेसे मोक्षकालिक वित्रिभ लग्न ८। १९। १०। १७ हुआ। एवं सूर्यगति ६१। १५ को स्थिति-घटी २। ४४ से गुणा कर गुणनफल १६७ में ६० का भाग देनेपर भागफल २। ४७ को सूर्य ८। ५। २६। २५ में जोड़नेसे मोक्षकालिक स्पष्ट सूर्य ८। ५। २९। २२ हुआ। इन दोनों (वित्रिभ और सूर्य) के द्वारा पूर्वकथित विधिसे मोक्षकालिक धनलम्बन (सूर्यसे वित्रिभ अधिक होनेके कारण) घट्यादि ०। ५६ हुआ।

अब दर्शान्तकाल १३। ४ में स्थिति-घटी २। ४४ को घटानेसे १०। २० मध्यमस्पर्शकाल हुआ, इसमें स्पर्शकालिक ऋणलम्बन १। १७ को घटानेसे ९। ३ स्पष्ट (भूपृष्ठस्थानीय) स्पर्शकाल हुआ तथा दर्शान्तकालमें स्थिति-घटी जोड़नेपर मध्यम दर्शान्तकाल १५। ४८ हुआ। एवं इसमें मोक्षकालिक धनलम्बन ०। ५६ जोड़नेपर १६। ४४ स्पष्ट मोक्षकाल हुआ।

१. उदाहरण—यदि समभूमिसे लम्बमान (दृष्टिकी ऊँचाई) ७२ अङ्गुल और द्रष्टा तथा प्रतिबिम्बका अन्तर भूमिमान ९६ अङ्गुल है, तो उक्त रीतिके अनुसार भूमिमान ९६ को दृष्टिकी ऊँचाई ७२ से भाग देकर १२ से गुणा करनेपर $\frac{९६ \times १२}{७२}$ =१६ अङ्गुल छायाप्रमाण हुआ।

संस्कार (एक दिशामें योग, भिन्न दिशामें अन्तर) करे। तथा चन्द्रमाके शर और क्रान्तिका विपरीत संस्कार करके जो फल हो उसमें द्विगुणित तिथिसे भाग देनेपर जितनी लब्धि हो, उतना अङ्गुल संस्कार-दिशाका वलन होता है। चन्द्रमासे जिस दिशामें सूर्य रहता है, वही संस्कारकी दिशा समझी जाती है। तिथिमें अपना पञ्चमांश घटानेसे शुक्ल (चन्द्रके श्वेत भाग)-का अङ्गुलादि मान होता है। वलनकी जो दिशा होती है, उस दिशाका चन्द्रशृङ्ग उन्नत और अन्य दिशामें नत होता है। तदनुसार परिलेख करना चाहिये[1] ॥ १६५—१६७ १/२ ॥

पञ्चत्वगाङ्गवशिखाः कर्णशेषहताः पृथक् ॥ १६८ ॥
प्रकृत्यार्काङ्गसिद्धाग्रिभक्ताः लब्धोनसंयुताः ।
त्रिज्याधिकोने श्रवणे वपूंषि त्रिहृताः कुजात् ॥ १६९ ॥
ऋज्व्योरनृज्व्योर्विवरं गत्यन्तरविभाजितम् ।
वक्रर्ज्वोर्गतियोगाप्तं गम्येऽतीते दिनादिकम् ॥ १७० ॥
स्वनत्या संस्कृतौ स्वेषू दिक्साम्येऽन्येऽन्तरं युतिः ।
याम्योदक्खेटविवरं मानैक्यार्धाल्पकं यदा ॥ १७१ ॥
तदा भेदो लम्बनाद्यं स्फुटार्थं सूर्यपर्ववत् ।

(ग्रहयुति-ज्ञानार्थ मङ्गलादि पाँच ग्रहोंके विम्बसाधन—) मङ्गलादिके ५, ६, ७, ९, ५ इन मध्यमविम्बमानोंको क्रमसे मङ्गलादि ग्रहोंके कर्णशेष (त्रिज्या और अपने-अपने शीघ्र कर्णके अन्तर)-से गुणा करके गुणनफलको २ स्थानोंमें रखे। एक स्थानमें क्रमसे मङ्गलादि ग्रहके २१, १२, ६, २४ और ३ का भाग देकर लब्धिको द्वितीय स्थानमें स्थित गुणनफलमें, यदि कर्ण त्रिज्यासे[2] अधिक हो तो घटावे, यदि त्रिज्यासे अल्प हो तो जोड़े, फिर उसमें ३ से भाग देनेपर क्रमशः मङ्गलादि ग्रहोंके विम्ब-प्रमाण होते हैं[3]।

(ग्रहोंकी युतिके गत-गम्य दिन-साधन—) जिन दो ग्रहोंके युतिकालका ज्ञान करना हो, वे दोनों मार्गी हों, अथवा दोनों वक्री हों तो दोनों ग्रहोंकी अन्तर-कलामें दोनोंकी गत्यन्तर-कलासे भाग देना चाहिये। यदि एक वक्र और एक मार्गी हो तो दोनोंकी गति-योगकलासे भाग देना चाहिये। फिर जो लब्धि आवे, वह ग्रहयुतिके गत या गम्य दिनादि है।[4]

(ग्रहोंकी युतिमें भेद-ज्ञान—) जिन दो ग्रहोंकी युति होती हो, उन दोनोंके अपनी-अपनी नतिसे

इस प्रकार रात्रिमें मङ्गलादि ग्रहोंकी छायाका प्रमाण समझा जाता है, जो ग्रहयुति आदिमें उपयुक्त होती है।

१. उदाहरण—शुक्लपक्षकी द्वितीयामें सायंकालिक चन्द्रमाकी शृङ्गोन्नति जाननेके लिये मान लीजिये उस समयकी सावयव (घड़ीसहित) तिथि २। ३०, सूर्यकी उत्तरक्रान्ति १०, चन्द्रमाका उत्तर शर ५ और चन्द्रमाकी उत्तर क्रान्ति ६ हो तो कथित रीतिसे सावयव तिथि २। ३० को १६ से गुणा कर गुणनफल ४० में सावयव तिथिके वर्ग ६। १५ को घटानेसे शेष ३३। ४५ रहा; इसको पलभा ६ से गुणा कर गुणनफल २०२। ३० में १५ से भाग देनेपर लब्धि १३। ३० यह उत्तर दिशाका फल हुआ। इसमें सूर्यकी उत्तरक्रान्ति १० (एक दिशा होनेके कारण) जोड़नेसे २३। ३० हुआ। तथा (एक दिशा होनेके कारण) चन्द्रमाके उत्तर शर ५ और उत्तरक्रान्ति ६ इन दोनोंके योग ११ को उत्तर दिशाके फल १३। ३० में विपरीत संस्कार करने (घटाने)-से शेष २। ३० रहा। इसमें द्विगुणित तिथि २। ३०×२=५ से भाग देनेपर लब्ध अङ्गुलादि ०। ३० स्पष्ट वलन हुआ; यह चन्द्रमासे सूर्यकी दक्षिण दिशामें होनेके कारण दक्षिण दिशाका हुआ। एवं सावयव तिथि २। ३० में अपना पञ्चमांश ०। ३० घटानेसे २। ० अङ्गुलादि शुक्लमान हुआ। इस प्रकार उस दिन दक्षिण दिशाका चन्द्रशृङ्ग उन्नत हुआ।

२. यहाँ त्रिज्याका प्रमाण ११ ग्रहण करना चाहिये।

३. जैसे—यदि मङ्गलका शीघ्रकर्ण १३ है तो त्रिज्या ११ और कर्ण १३ के अन्तर २ से मङ्गलके मध्यम विम्बमान ५ को गुणा करनेपर १० हुआ; इसमें २१ का भाग देकर भागफल ०। २९ को (त्रिज्यासे कर्णके अधिक होनेके कारण) गुणनफल १० में घटानेपर शेष ९। ३१ में ३ का भाग दिया तो फल अङ्गुलादि ३। १० मङ्गलका स्पष्ट विम्बमान हुआ। इसी प्रकार अन्य ग्रहोंका भी जान लेना चाहिये।

४. जैसे—मङ्गल और शुक्रका युतिसमय जानना है तो कल्पना कीजिये कि उस दिन स्पष्ट मङ्गल ७। १५। २०। २५, मङ्गलकी स्पष्ट गति ४०। १२, स्पष्ट शुक्र ७। १०। ३०। २५ तथा शुक्रकी स्पष्ट गति ७०। १२ है तो यहाँ शीघ्र (अधिक) गतिवाला शुक्र मङ्गलसे अल्प (पीछे) है, अतः दोनोंकी युति भावी है—ऐसा निश्चित हुआ। ये दोनों मार्गी हों तो उक्त रीतिसे मङ्गल ७। १५। २०। २५ में शुक्र ७। १०। ३०। २५ को घटाकर शेष ०। ४। ५ कलामें शुक्रगति ७०। १२ और मङ्गलगति ४०। १२ के अन्तर ३० गत्यन्तर-कलासे भाग देनेपर लब्धि ०। ९। ४० गम्य दिनादि हुई अर्थात् इतने समयके बाद योग होनेवाला है।

संस्कृत शर (भूपृष्ठस्थानाभिप्रायिक शर) एक दिशाके हों तो अन्तर, यदि भिन्न दिशाके हों तो योग करनेसे दोनों ग्रहोंका अन्तर (दक्षिणोत्तरान्तर) होता है। यह अन्तर यदि दोनोंके बिम्बमान-योगार्धसे अल्प हो तो उनके योगमें भेद (एकसे दूसरा आच्छादित) होता है। इसलिये इनमें नीचेवालेको छादक और ऊपरवालेको छाद्य मानकर सूर्यग्रहणके समान ही लम्बन, ग्रासमान आदि साधन करना चाहिये[1] ॥ १६८—१७१ $\frac{1}{2}$ ॥

एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।
तद्युते मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः ॥ १७२ ॥
विपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः।
समास्तदा व्यतीपातो भगणार्द्धे तयोर्युतौ ॥ १७३ ॥
भास्करेन्द्वोर्भचक्रान्तश्चक्रार्धावधि संस्थयोः।
दृक्तुल्यसाधितांशादियुक्तयोः स्वावपक्रमौ ॥ १७४ ॥
अथौजपदगस्येन्दोः क्रान्तिर्विक्षेपसंस्कृता।
यदि स्यादधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा ॥ १७५ ॥
न्यूना चेत्स्यात्तदा भावी वामं युग्मपदस्य च।
पदान्यत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद् विशुद्ध्यति ॥ १७६ ॥
क्रान्त्योर्ज्ये त्रिज्ययाभ्यस्ते परमापक्रमोद्धृते।
तच्चापान्तरमर्द्धं वा योज्यं भाविनि शीतगौ ॥१७७॥
शोध्यं चन्द्राद्गते पाते तत्सूर्यगतिताडितम्।
चन्द्रभुक्त्या हृतं भानौ लिप्तादि शशिवत्फलम् ॥ १७८ ॥
तद्वच्छशाङ्कपातस्य फलं देयं विपर्ययात्।
कर्मैतदसकृत्तावत्क्रान्ती यावत्समे तयोः ॥ १७९ ॥

(**पाताधिकार—पातकी संज्ञा—**) जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों एक ही अयन (याम्यायन—दक्षिणायन अथवा सौम्यायन—उत्तरायण)-में हों तथा उन दोनोंके राश्यादि योग १२ राशि हो तो उस स्थितिमें दोनोंके क्रान्तिसाम्य होनेपर वैधृति नामका पात कहलाता है। तथा जब दोनों भिन्न (पृथक्-पृथक्) अयनमें हों और दोनोंका योग ६ राशि हो तो उस स्थितिमें दोनोंके क्रान्तिसाम्य होनेपर व्यतीपात नामक पात होता है।

जब सूर्य-चन्द्रका अन्तर चक्र (०) या ६ राशि हो, उस समयमें तात्कालिक अयनांशादिसे युक्त सूर्य और चन्द्रमाकी अपनी-अपनी क्रान्तिका साधन करे। यदि शर-संस्कृत चन्द्रमाकी क्रान्ति (स्पष्टा क्रान्ति) तात्कालिक सूर्यकी क्रान्तिसे अधिक हो तथा चन्द्रमा यदि विषम पदमें हो तो पातकालको गत (बीता हुआ) समझना चाहिये। यदि विषमपदस्थ चन्द्रमाकी शर-संस्कृत क्रान्तिसे अल्प हो तो पातकालको भावी (होनेवाला) समझना चाहिये। यदि चन्द्रमा समपदमें हो तो इससे विपरीत (सूर्यकी क्रान्तिसे चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति अधिक हो तो भावी, अल्प हो तो गत) पातकाल समझे। यदि स्पष्ट क्रान्ति बनानेमें चन्द्रमाके शरमें क्रान्ति घटायी जाय तो इस स्थितिमें चन्द्रमाके बिम्ब और स्थानमें पदकी भिन्नता होती है।

(**स्फुट-क्रान्ति-साम्य-ज्ञान-प्रकार—**) सूर्य और चन्द्रमा दोनोंकी 'क्रान्तिज्या' को त्रिज्यासे गुणा करके उसमें परम क्रान्तिज्यासे भाग देकर जो लब्धियाँ हों, उन दोनोंके चाप बनाये। उन दोनों चापोंका जो अन्तर हो उसको सम्पूर्ण या अर्ध (कुछ न्यून) करके गम्य पात हो तो चन्द्रमामें जोड़े; गतपात हो तो घटावे। पुनः उपर्युक्त चापके अन्तर या उसके खण्डको सूर्यकी गतिसे गुणा करके गुणनफलमें चन्द्रगतिसे भाग देकर जो लब्धि (कलादि) हो, उसको चन्द्रमाके समान ही सूर्यमें संस्कार करे (गम्यपात हो तो जोड़े, गतपात हो तो घटावे)। इसी प्रकार (सूर्य फलवत्-उक्त चापान्तरको चन्द्रपातकी गतिसे गुणा करके उसमें चन्द्रगतिसे भाग देकर) लब्धिरूप चन्द्रपातके कलादि फलको चन्द्रपात (राहु)-में विपरीत संस्कार करे (गतपातमें जोड़े, गम्य पातमें घटावे) तो पातकालासन्न

१. जब दो ग्रहोंके क्रान्तिवृत्तमें एक ही समान (पूर्वापर अन्तरका अभाव) होता है, तब उन दोनोंकी युति (योग) समझी जाती है। ग्रहोंके इस प्रकार परस्पर योगसे शुभाशुभ फल संहितास्कन्धमें कहा गया है। इसीलिये ग्रहयुति-समयका ज्ञान आवश्यक है।

समयके सूर्य, चन्द्रमा और चन्द्रपात होते हैं। फिर इन तीनों (रवि, चन्द्र और चन्द्रपात) के द्वारा उपर्युक्त क्रियाको तबतक बार-बार करता रहे जबतक दोनोंकी क्रान्ति सम न हो जाय[1] ॥१७२—१७९॥

क्रान्त्योः समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ।
हीनेऽर्द्धरात्रिकाद्यातो भावी तात्कालिकेऽधिके॥ १८०॥
स्थिरीकृतार्द्धरात्रेन्द्वोर्द्वयोर्विवरलिप्तिकाः।
षष्टिघ्न्यश्चन्द्रभुक्त्याप्ताः पातकालस्य नाडिकाः॥ १८१॥

इस प्रकार क्रान्ति-साम्य होनेपर पात समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त क्रियाद्वारा प्राप्त अंशादिसे युक्त या हीन किया हुआ चन्द्रमा अर्धरात्रिकालिक साधित चन्द्रमासे अल्प (पीछे) हो तो पातकालको 'गत' समझे और यदि अधिक (आगे) हो तो पातकालको भावी समझे।

(अर्धरात्रिसे गत, गम्य पातकालका ज्ञान—) उपर्युक्त क्रियाद्वारा स्थिरीकृत (पातकालिक) चन्द्रमा और अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमा जो हों—इन

---

१. यदि सायन सूर्य ५। २६। ४०। ० सायन चन्द्र ०। २। ५। ०, पात (राहु) ०।५। २५।०, सूर्यगति ६०। १५, चन्द्रगति ७८३। १५ और राहु-गति ३। ११ हैं तो चन्द्र ०। २। ५। ० और पात ०। ५। २५। ० के योग ०। ७। ३० सपातचन्द्रकी भुजकला ४५० की ज्या ४४९ हुई। इसको चन्द्रमाके परम शर २७० से गुणा कर गुणनफल १२१२३० में त्रिज्या ३४३८से भाग देनेपर लब्धि चन्द्रमाकी शरकला ३६ हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। केवल चन्द्रमा ०। २। ५। ० की भुजज्या १२५ कलाको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल १७४६२५ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ५० चन्द्रमाकी क्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। अतः चन्द्रमाके शर ३६ क्रान्ति ५० का योग करनेसे ८६ चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति हुई।

तथा राश्यादि सूर्य ५। २६। ४०। ० को ६ राशिमें घटानेमें भुज ०। ३। २०। ० की कला २०० की ज्या इतनी ही हुई। इसको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल २७९४०० में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ८१ सूर्यकी क्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही होनेके कारण यही सूर्यकी क्रान्ति हुई।

सूर्यकी क्रान्तिसे विषम (प्रथम) पदस्थित चन्द्रमाकी क्रान्ति अधिक है, इसलिये यहाँ गतपात निश्चित हुआ तथा सूर्य और चन्द्रमाके भिन्न अयन (चन्द्रमाके उत्तरायण और सूर्यके दक्षिणायन)-में होने एवं दोनोंके राश्यादियोग ६ राशि होनेके कारण इस क्रान्तिसाम्यका नाम व्यतीपात हुआ।

अब, चन्द्र-क्रान्तिज्या ८६ को त्रिज्या ३४३८ से गुणा कर गुणनफल २९५६६८ में परमक्रान्तिज्या १३९७ का भाग देनेपर लब्धि २११ चन्द्रमाकी भुजज्या हुई; इसका चाप भी स्वल्पान्तरसे इतना ही हुआ। एवं सूर्यकी क्रान्तिज्या ८१ को त्रिज्या ३४३८ से गुणा कर गुणनफल २०४७८ में परमक्रान्तिज्या १३९७ का भाग देनेपर लब्धि सूर्यकी भुजज्या १९२ हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ।

सूर्य और चन्द्रमाके चापोंका अन्तर करनेसे (२११—१९२-) १९ कला हुई। इसके आधे (स्वल्पान्तरसे) १० को मध्यरात्रिकालिक चन्द्रमा ०। २। ५। ० में घटानेसे पातासन्नकालिक चन्द्रमा ०। १। ५५। ० हुआ। तथा उसी अन्तरार्धकला १० को सूर्यकी गति ६०। १५ से गुणा कर गुणनफल ६०२। ३० में चन्द्रगति ७८३। १५ का भाग देनेपर लब्धिफल १ कलाको मध्यरात्रिकालिक सूर्य ५। २६। ४० में घटानेसे ५। २६। ३९ हुआ। एवं उसी अन्तरार्धकला १० को राहुकी गति ३। ११ से गुणा कर गुणनफल ३१। ५० में चन्द्रगति ७८३। १५ का भाग देनेपर लब्धि ० हुई। इसका विपरीत संस्कार करनेपर भी मध्यरात्रिकालिक राहुके तुल्य ही तत्कालीन राहु ०। ५। २५ हुआ।

अब, पातासन्नकालिक चन्द्र ०। १। ५५। ०, सूर्य ५। २६। ३९। ० और राहु ०। ५। २५। ० रहे। इनके द्वारा पुनः क्रान्ति-साधन किया जाता है। चन्द्रमा ०। १। ५५। ० की भुजज्या ११५ को परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल १६०६५५ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ४६ चन्द्रक्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। तथा चन्द्र ०। १। ५५। ० और राहु ०। ५। २५। ० का योग करनेसे सपातचन्द्र ०। ७। २० की भुजज्या ४४० को चन्द्रके परमशर २७० से गुणा कर गुणनफल ११८८०० में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि (स्वल्पान्तरसे) ३५ चन्द्रशरज्या हुई; इसका चाप बनानेसे इतना ही चन्द्रशर हुआ। चन्द्रशर ३५ को चन्द्रक्रान्ति ४६ में जोड़नेसे ८१ कला हुई, इसका अंश बनानेसे १। २१ चन्द्रमाकी स्पष्टक्रान्ति हुई। एवं तत्कालीन सूर्य ५। २६। ३९ की भुजज्या २०१ को परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल २८०७९७ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ८१ सूर्यकी क्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। इसको अंशात्मक बनानेसे १। २१ सूर्यकी क्रान्ति हुई। अतः यहाँ सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तियोंमें समता हुई।

दोनोंकी अन्तरकलाको ६० से गुणा करके गुणनफलमें चन्द्रकी गति-कलासे भाग देनेपर जो लब्धि हो, उतनी घटी अर्धरात्रिसे पीछे या आगे (गत पातमें पीछे, गम्य पातमें आगे) तक पातकालकी घड़ी समझी जाती है[1] ॥ १८०-१८१ ॥

रवीन्द्वोर्मानयोगार्द्धं षष्ट्या संगुण्य भाजयेत्।
तयोर्भुक्त्यन्तरेणाप्तं स्थित्यर्धं नाडिकादि तत्॥ १८२ ॥
पातकालः स्फुटो मध्यः सोऽपि स्थित्यर्द्धवर्जितः।
तस्य सम्भवकालः स्यात्तत्संयुक्तोऽन्त्यसंज्ञितः॥ १८३ ॥
आद्यन्तकालयोर्मध्यः कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः।
प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः॥ १८४ ॥
इत्येतद्गणिते किञ्चित्प्रोक्तं संक्षेपतो द्विज।
जातकं वच्मि समयाद्राशिसंज्ञापुरःसरम्॥ १८५ ॥

(पातके स्थितिकाल, आरम्भ तथा अन्तकालका साधन—) सूर्य तथा चन्द्रमाके बिम्बयोगार्धको ६० से गुणा करके गुणनफलमें सूर्य-चन्द्रकी गत्यन्तरकलासे भाग देकर जो लब्धि हो वह पातकी स्थित्यर्ध घड़ी होती है। इसको पातके स्पष्ट मध्यकालमें घटानेसे पातका आरम्भकाल होता है और जोड़नेसे अन्तकाल होता है[2]। पातके आरम्भकालसे अन्तकालतक जो मध्यका काल है, वह प्रज्वलित अग्निके समान अत्यन्त दारुण (भयानक) होता है। जो सब कार्यमें निषिद्ध है। ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने गणितस्कन्धमें संक्षेपसे कुछ (उपयोगी) विषयोंका प्रतिपादन किया है। अब (अगले अध्यायमें) राशियोंके संज्ञादि कथनपूर्वक जातकका वर्णन करूँगा॥ १८२—१८५ ॥

॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे ज्यौतिषगणितवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

त्रिस्कन्ध ज्यौतिषका जातकस्कन्ध

सनन्दनजी कहते हैं—नारद! मेष आदि राशियाँ कालपुरुषके क्रमशः मस्तक, मुख, बाहु, हृदय, उदर, कटि, वस्ति (पेंडू), लिङ्ग, ऊरु, जानु, जङ्घा और दोनों चरण हैं॥ १ ॥ मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, गुरु, शनि, शनि तथा गुरु—ये क्रमशः मेष आदि राशियोंके अधीश्वर (स्वामी) हैं॥ २ ॥ विषम राशियोंमें पहले सूर्यकी, फिर चन्द्रमाकी होरा बीतती है तथा सम राशियोंमें पहले चन्द्रमाकी, फिर सूर्यकी होरा बीतती है। आदिके दश अंशतक उसी राशिका द्रेष्काण होता है और उस राशिके स्वामी ही उस द्रेष्काणके स्वामी होते हैं। ग्यारहसे बीसवें अंशतक उस राशिसे पाँचवीं राशिका द्रेष्काण होता है और उसके स्वामी ही उस द्रेष्काणके स्वामी होते हैं; इसी प्रकार अन्तिम दश अंश (अर्थात् २१ से ३० वें अंशतक) उस राशिसे नवम राशिका द्रेष्काण होता है और उसीके स्वामी उस द्रेष्काणके स्वामी कहे गये हैं॥ ३ ॥ विषम राशियोंमें पहले पाँच

---

१. क्रान्तिसाम्य (पात) काल-साधन—मध्यकालिक चन्द्रमा ० । २ । ५ । ० और स्थिरीकृत क्रान्तिसाम्य-(पात) कालिक चन्द्रमा ० । १ । ५५ । ० को अन्तरकला १० को ६०से गुणा कर गुणनफल ६०० में चन्द्रगति ७८३ । १५ का भाग देनेपर (स्वल्पान्तरसे) लब्धि १ घड़ी हुई। इसको (गतपात होनेके कारण) मध्यरात्रि घड़ी ४५ । १५ में घटानेसे शेष ४४ । १५ पातका मध्यकाल हुआ।

२. क्रान्ति-साम्य-साधनमें कथित सूर्यकी गति ६० । १५ द्वारा सूर्यबिम्ब १० । ५७ हुआ एवं चन्द्रगति ७८३ । १५ द्वारा चन्द्रबिम्ब १० । ३५ हुआ। इन दोनोंके योग २० । ९२ के आधे १० । ४६ को ६० से गुणा कर गुणनफल ६४६ में सूर्य और चन्द्रमाकी गतिके अन्तर ७२३ से भाग देनेपर लब्धि (स्वल्पान्तरसे) १ घड़ी हुई; यह पातकालकी स्थित्यर्ध घड़ी हुई। इसको पातमध्यकाल ४४ । १५ में घटानेसे शेष ४३ । १५ आरम्भकाल एवं जोड़नेसे ४५ । १५ पातका अन्तकाल हुआ।

अंशतक मङ्गल, फिर पाँच अंशतक शनि, फिर आठ अंशतक बृहस्पति, फिर सात अंशतक बुध और अन्तिम पाँच अंशतक शुक्र त्रिंशांशेश कहे गये हैं। सम राशियोंमें इसके विपरीत क्रमसे पहले पाँच अंशतक शुक्र, फिर सात अंशतक बुध, फिर आठ अंशतक बृहस्पति, फिर पाँच अंशतक शनि और अन्तिम पाँच अंशतक मङ्गल त्रिंशांशेश बताये गये हैं॥ ४॥ मेष आदि राशियोंके नवमांश मेष, मकर, तुला और कर्कसे प्रारम्भ होते हैं (यथा—मेष, सिंह, धनुके मेषसे; वृष, कन्या, मकरके मकरसे; मिथुन, तुला और कुम्भके तुलासे तथा कर्क, वृश्चिक और मीनके नवमांश कर्कसे चलते हैं।) $2\frac{1}{2}$ अंशके द्वादशांश होते हैं, जो अपनी राशिसे प्रारम्भ होकर अन्तिम राशिपर पूरे होते हैं और उन-उन राशियोंके स्वामी ही उन द्वादशांशोंके स्वामी कहे गये हैं। इस प्रकार ये राशि, होरा आदि षड्वर्ग[1] कहलाते हैं॥ ५॥

वृष, मेष, धनु, कर्क, मिथुन और मकर—ये

---

१. गृह (राशि), होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश तथा त्रिंशांश—ये षड्वर्ग कहे गये हैं। जिन राशियोंके जो स्वामी हैं, वे ही राशियाँ उन ग्रहोंके घर हैं। एक राशिमें ३० अंश होते हैं। उनमेंसे पंद्रह अंशकी एक होरा होती है। एक राशिमें दो होराएँ होती हैं। दश अंशका द्रेष्काण होता है, अतः एक राशिमें तीन द्रेष्काण व्यतीत होते हैं। $3\frac{1}{3}$ अंशका एक नवमांश होता है। राशिमें नौ नवमांश होते हैं। $2\frac{1}{2}$ अंशका एक द्वादशांश होता है; राशिमें बारह द्वादशांश होते हैं। एक-एक अंशका त्रिंशांश होता है, इसीलिये उसका यह नाम है।

राशि-स्वामी-ज्ञानार्थ-चक्र

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
स्वामी	मङ्गल	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मङ्गल	गुरु	शनि	शनि	गुरु

(राश्यर्ध) होरा-ज्ञानार्थ-चक्र

होरा-अंश	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
१—१५ तक	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र
१८—३० तक	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि

(राशितृतीयांश) द्रेष्काण-ज्ञानार्थ-चक्र

	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
१—१० तक	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ सूर्य	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	राशि स्वामी
११—२० तक	५ सूर्य	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	राशि स्वामी
२१—३० तक	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ सूर्य	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	राशि स्वामी

रात्रिसंज्ञक हैं अर्थात् रातमें बली माने गये हैं—ये पृष्ठभागसे उदय लेनेके कारण पृष्ठोदय कहलाते हैं (किंतु मिथुन पृष्ठोदय नहीं है)। शेष राशियोंकी दिन संज्ञा है (वे दिनमें बली और शीर्षोदय माने

राशियोंमें नवमांश-ज्ञानार्थ-चक्र

अंश-कला	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
३। २०	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र
६। ४०	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि
१०। ०	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध
१३। २०	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र
१६। ४०	५ सूर्य	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ सूर्य	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ सूर्य	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल
२०। ०	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु
२३। २०	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि
२६। ४०	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि
३०। ० तक	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु

राशियोंमें द्वादशांश-ज्ञानार्थ-चक्र

अंश-कला	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
२। ३०	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ रवि	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु
५। ०	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ रवि	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल
७। ३०	३ बुध	४ चन्द्र	५ रवि	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र
१०। ०	४ चन्द्र	५ रवि	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध
१२। ३०	५ रवि	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र
१५। ०	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ रवि
१७। ३०	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ रवि	६ बुध
२०। ०	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ रवि	६ बुध	७ शुक्र
२२। ३०	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ रवि	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल
२५। ०	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ रवि	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु
२७। ३०	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ रवि	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि
३०। ०	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ रवि	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि

गये हैं); मीन राशिको उभयोदय कहा गया है। मेष आदि राशियाँ क्रमसे क्रूर और सौम्य (अर्थात् मेष आदि विषम राशियाँ क्रूर और वृष आदि सम राशियाँ सौम्य) हैं॥ ६॥ मेष आदि राशियाँ क्रमसे पुरुष, स्त्री और नपुंसक होती हैं (नवीन मतमें दो विभाग हैं, मेष आदि विषम राशियाँ पुरुष और वृष आदि सम राशियाँ स्त्री हैं)। इसी प्रकार मेष आदि राशियाँ क्रमशः चर, स्थिर और द्विस्वभावमें विभाजित हैं (अर्थात् मेष चर, वृष स्थिर और मिथुन द्विस्वभाव हैं, कर्क चर, सिंह स्थिर और कन्या द्विस्वभाव हैं। इसी क्रमसे शेष राशियोंको भी समझे)। मेष आदि राशियाँ पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित हैं (यथा—मेष, सिंह, धनु पूर्वमें; वृष कन्या, मकर दक्षिणमें; मिथुन, तुला, कुम्भ पश्चिममें और कर्क, वृश्चिक, मीन उत्तरमें स्थित हैं)[1]। ये सब अपनी-अपनी दिशामें रहती हैं॥ ७॥ सूर्यका उच्च मेष, चन्द्रमाका वृष, मङ्गलका मकर, बुधका कन्या, गुरुका कर्क, शुक्रका मीन तथा शनिका उच्च तुला है। सूर्यका मेषमें १० अंश, चन्द्रमाका वृषमें ३ अंश, मङ्गलका मकरमें २८ अंश, बुधका कन्यामें १५ अंश, गुरुका कर्कमें ५ अंश, शुक्रका मीनमें २७ अंश तथा शनिका तुलामें २० अंश उच्चांश (परमोच्च) है॥ ८॥ सूर्यादि ग्रहोंकी जो उच्च राशियाँ कही गयी हैं, उनसे सातवीं राशि उन ग्रहोंका नीच स्थान है।

चरमें पूर्व नवमांश वर्गोत्तम है। स्थिरमें मध्य (पाँचवाँ) नवमांश और द्विस्वभावमें अन्तिम (नवाँ) नवमांश वर्गोत्तम है। तनु (लग्न) आदि बारह भाव हैं॥ ९॥ सूर्यका सिंह, चन्द्रमाका वृष, मङ्गलका मेष, बुधका कन्या, गुरुका धन, शुक्रका तुला और शनिका कुम्भ यह मूल त्रिकोण कहा गया है। चतुर्थ और अष्टभावका नाम चतुरस्र है। नवम और पञ्चमका नाम त्रिकोण है॥ १०॥ द्वादश, अष्टम और षष्ठका नाम त्रिक है; लग्न चतुर्थ, सप्तम और दशमका नाम केन्द्र है। द्विपद, जलचर, कीट और पशु—ये राशियाँ क्रमशः केन्द्रमें बली होती हैं (अर्थात् द्विपद लग्नमें,

विषम राशियोंमें त्रिंशांश—

अंश	५	५	८	७	५
स्वामी	मङ्गल	शनि	गुरु	बुध	शुक्र

सम राशियोंमें त्रिंशांश—

अंश	५	७	८	५	५
स्वामी	शुक्र	बुध	गुरु	शनि	मङ्गल

१. मेषादि राशियोंके रूप-गुण आदिका बोधक चक्र

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
अङ्गमें स्थान	मस्तक	मुख	भुज	हृदय	पेट	कमर	पेड़ू	लिङ्ग	ऊरु	जानु	जङ्घा	पैर
अधिपति	मङ्गल	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मङ्गल	गुरु	शनि	शनि	गुरु
बलका समय	रात्रि	रात्रि	रात्रि	रात्रि	दिन	दिन	दिन	दिन	रात्रि	रात्रि	दिन	दिन
उदय	पृष्ठोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	पृष्ठोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	उभयोदय
शील	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य
पुं-स्त्रीत्व	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
स्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्व०	चर	स्थिर	द्विस्व०
दिशा	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
द्विपदादि	चतुष्पद	चतुष्पद	द्विपद	जलकीट	चतुष्पद	द्विपद	द्विपद	कीट	१५ द्वि० १५ च०	१५ च० १५ जल	द्विपद	जलचर
वर्ण	रक्त	श्वेत	हरित	गुलाबी	धूम्र	गौर	चित्र	कृष्ण	पीत	पिङ्ग	भूरा	स्वच्छ
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण

जलचर चतुर्थमें, कीट सातवेंमें और पशु दसवेंमें बलवान् माने गये हैं) ॥ ११ ॥ केन्द्रके बादके स्थान (२, ५, ८, ११ ये) 'पणफर' कहे गये हैं। उसके बादके ३, ६, ९, १२—ये आपोक्लिम कहलाते हैं। मेषका स्वरूप रक्तवर्ण, वृषका श्वेत, मिथुनका शुकके समान हरित, कर्कका पाटल (गुलाबी), सिंहका धूम्र, कन्याका पाण्डु (गौर), तुलाका चितकबरा, वृश्चिकका कृष्णवर्ण, धनुका पीत, मकरका पिङ्ग, कुम्भका बभ्रु (नेवले) के सदृश और मीनका स्वच्छ वर्ण है। इस प्रकार मेषसे लेकर सब राशियोंकी कान्तिका वर्णन किया गया है। सब राशियाँ स्वामीकी दिशाकी ओर झुकी रहती हैं। सूर्याश्रित राशिसे दूसरेका नाम 'वेशि' है ॥ १२-१३ ॥

(ग्रहोंके शील, गुण आदिका निरूपण—) सूर्यदेव कालपुरुषके आत्मा, चन्द्रमा मन, मङ्गल पराक्रम, बुध वाणी, गुरु ज्ञान एवं सुख, शुक्र काम और शनैश्चर दुःख हैं ॥ १४ ॥ सूर्य-चन्द्रमा राजा, मङ्गल सेनापति, बुध राजकुमार, बृहस्पति तथा शुक्र मन्त्री और शनैश्चर सेवक या दूत हैं, यह ज्यौतिष शास्त्रके श्रेष्ठ विद्वानोंका मत है ॥ १५ ॥ सूर्यादि ग्रहोंके वर्ण इस प्रकार हैं। सूर्यका ताम्र, चन्द्रमाका शुक्ल, मङ्गलका रक्त, बुधका हरित, बृहस्पतिका पीत, शुक्रका चित्र (चितकबरा) तथा शनैश्चरका काला है। अग्नि, जल, कार्तिकेय, हरि, इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा—ये सूर्यादि ग्रहोंके स्वामी हैं ॥ १६ ॥ सूर्य, शुक्र, मङ्गल, राहु, शनि, चन्द्रमा, बुध तथा बृहस्पति—ये क्रमशः पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्यकोण, पश्चिम, वायव्यकोण, उत्तर तथा ईशानकोणके स्वामी हैं। क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मङ्गल और शनि—ये पापग्रह हैं—इनसे युक्त होनेपर बुध भी पापग्रह हो जाता है ॥ १७ ॥ बुध और शनि नपुंसक ग्रह हैं। शुक्र और चन्द्रमा स्त्रीग्रह हैं। शेष सभी (रवि, मङ्गल, गुरु) ग्रह पुरुष हैं। मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि—ये क्रमशः अग्नि, भूमि, आकाश, जल तथा वायु—इन तत्त्वोंके स्वामी हैं ॥ १८ ॥ शुक्र और गुरु ब्राह्मण वर्णके स्वामी हैं। भौम तथा रवि क्षत्रिय वर्णके स्वामी हैं। चन्द्रमा वैश्य वर्णके तथा बुध शूद्र वर्णके अधिपति हैं। शनि अन्त्यजोंके तथा राहु म्लेच्छोंके स्वामी हैं ॥ १९ ॥ चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति सत्त्वगुणके, बुध और शुक्र रजोगुणके तथा मङ्गल और शनैश्चर तमोगुणके स्वामी हैं। सूर्य देवताओंके, चन्द्रमा जलके, मङ्गल अग्निके, बुध क्रीडाविहारके, बृहस्पति भूमिके, शुक्र कोषके, शनैश्चर शयनके तथा राहु ऊसरके स्वामी हैं ॥ २० ॥ स्थूल (मोटे सूतसे बना हुआ), नवीन, अग्निसे जला हुआ, जलसे भीगा हुआ, मध्यम (न नया न पुराना), सुदृढ़ (मजबूत) तथा फटा हुआ, इस प्रकार क्रमसे सूर्य आदि ग्रहोंका वस्त्र है। ताम्र (ताँबा), मणि, सुवर्ण, काँसा, चाँदी, मोती और लोहा—ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंके धातु हैं। शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् और हेमन्त—ये क्रमसे शनि, शुक्र, मङ्गल, चन्द्र, बुध तथा गुरुकी ऋतु हैं। लग्नमें जिस ग्रहका द्रेष्काण हो, उस ग्रहकी ऋतु समझी जाती है[१] ॥ २१—२२ ॥

१. सूर्यके द्रेष्काणसे ग्रीष्मऋतु समझी जाती है। सूर्य आदि ग्रहोंके जाति, शील आदिको निम्नाङ्कित चक्रमें देखिये—

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	क्षत्रिय	शूद्र	ब्राह्मण	ब्राह्मण	अन्त्यज
शील	तीक्ष्ण	मृदु	क्रूर	मिश्र	सौम्य	सौम्य	क्रूर
पुं,स्त्री,नपुंसक	पुरुष	स्त्री	पुरुष	नपुंसक	पुरुष	स्त्री	नपुंसक
दिशा	पूर्व	वायव्य	दक्षिण	उत्तर	ऐशान्य	आग्नेय	पश्चिम
गृह	सिंह	कर्क	मेष-वृश्चिक	मिथुन-कन्या	धनु-मीन	वृष-तुला	मकर-कुम्भ
गुण	सत्त्व	सत्त्व	तम	रज	सत्त्व	रज	तम
स्थान	देवालय	जलाशय	अग्निशाला	क्रीडास्थान	भूमि	भण्डार-स्थान	शयन-स्थान
आत्मादि	आत्मा	मन	बल	वाणी	ज्ञान-सुख	कन्दर्प	दुःख
देवता	अग्नि	जल	कार्तिकेय	विष्णु	इन्द्र	इन्द्राणी	ब्रह्मा
द्रव्य	ताम्र	मणि	सुवर्ण	काँसा	चाँदी	मोती	लोहा
धातु	अस्थि	शोणित	मज्जा	त्वचा	वसा	वीर्य	स्नायु
अधिकार	राजा	राजा	सेनापति	युवराज	प्रधानमन्त्री	मन्त्री	भृत्य

(**ग्रहोंकी दृष्टि—**) नारद! सभी ग्रह अपने-अपने आश्रितस्थानसे ३, १० स्थानको एक चरणसे; ५, ९ स्थानको दो चरणसे; ४, ८ स्थानको तीन चरणसे और सप्तम स्थानको चार चरणसे देखते हैं। किंतु ३, १० स्थानको शनि; ५, ९ को गुरु तथा ४, ८ को मङ्गल पूर्ण दृष्टिसे ही देखते हैं। अन्य ग्रह केवल सप्तम स्थानको ही पूर्ण दृष्टि (चारों चरणों) से देखते हैं॥ २३॥

(**ग्रहोंके कालमान—**) अयन (६ मास), मुहूर्त (२ घड़ी), अहोरात्र, ऋतु (२ मास), मास, पक्ष तथा वर्ष—ये क्रमसे सूर्य आदि ग्रहोंके कालमान हैं। तथा कटु (मिर्च आदि), लवण, तिक्त (निम्बादि), मिश्र (सब रसोंका मेल), मधुर, आम्ल (खट्टा) और कषाय (कसैला)—ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंके रस हैं॥ २४॥

(**ग्रहोंकी स्वाभाविक बहुसम्मत मैत्री—**) ग्रहोंके जो अपने-अपने मूल त्रिकोण स्थान कहे गये हैं, उस (मूल त्रिकोण) स्थानसे २, १२, ५, ९, ८, ४ इन स्थानोंके तथा अपने उच्च स्थानोंके स्वामी ग्रह मित्र होते हैं और इनसे भिन्न (मूल त्रिकोणसे १, ३, ६, ७, १०, ११) स्थानोंके स्वामी शत्रु होते हैं।

(**मतान्तरसे ग्रह-मैत्री—**) सूर्यका बृहस्पति, चन्द्रके गुरु-बुध, मङ्गलके शुक्र-बुध, बुधके रविको छोड़कर शेष सब ग्रह, गुरुके मङ्गलको छोड़कर सब ग्रह, शुक्रके चन्द्र-रविको छोड़कर अन्य सब ग्रह और शनिके मङ्गल-चन्द्र-रविको छोड़कर शेष सभी ग्रह मित्र होते हैं। यह मत अन्य विद्वानोंद्वारा स्वीकृत है।

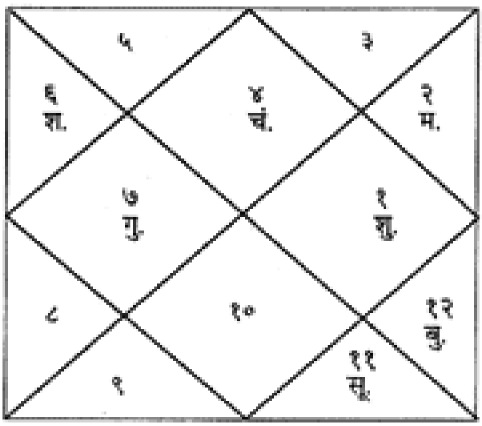
(**ग्रहोंकी तात्कालिक मैत्री—**) उस-उस समयमें जो-जो दो ग्रह २, १२। ३, ११। ४, १०— इन स्थानोंमें हों वे भी परस्पर तात्कालिक मित्र होते हैं। (इनसे भिन्न स्थानमें स्थित ग्रह तात्कालिक शत्रु होते हैं) इस प्रकार स्वाभाविक मैत्रीमें (मूल त्रिकोणसे जिन स्थानोंके स्वामीको मित्र कहा गया है—उनमें) दो स्थानोंके स्वामीको मित्र, एक स्थानके स्वामीको सम और अनुक्त स्थानके स्वामीको शत्रु समझे। तदनन्तर तात्कालिक मित्र और शत्रुका विचार करके दोनोंके अनुसार अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु और अधिशत्रुका निश्चय करना चाहिये[1]॥ २५—२७॥

---

१. यथा—दोनों प्रकारोंसे जो ग्रह मित्र हो वह अधिमित्र, जो मित्र और सम हो वह मित्र, जो मित्र और शत्रु हो वह सम, जो शत्रु और सम हो वह शत्रु तथा जो दोनों प्रकारोंसे शत्रु हो वह अधिशत्रु, होता है। इस तरह ग्रहमैत्री पाँच प्रकारकी मानी गयी है।

ग्रहोंकी नैसर्गिक मैत्रीका बोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चं. मं. गु.	बु. सू.	चं. सू. गु.	शु. सू.	सू. मं. च.	बु. श.	शु. बु.
सम	बु.	मं. गु. शु. श.	शु. श.	मं. गु. श.	श.	मं. गु.	गु.
शत्रु	शु. श.	×	बु.	चं.	बु. शु.	सू. चं.	सू. चं. मं.



जैसे—इस कुण्डलीमें सूर्यसे द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्थानमें क्रमशः बुध, शुक्र और मङ्गल हैं। इसलिये ये तीनों सूर्यके मित्र हुए अन्य ग्रह शत्रु हुए। इसी प्रकार चन्द्रमासे तृतीय, चतुर्थ, एकादश और दशम स्थानमें शनि, गुरु, शुक्र और मङ्गल हैं, इसलिये ये चारों चन्द्रमाके तात्कालिक मित्र हुए; अन्य ग्रह शत्रु हुए। इस तरह सब

(ग्रहोंके बलका कथन—) अपने-अपने उच्च, मूल, त्रिकोण, गृह और नवमांशमें ग्रहोंके स्थानसम्बन्धी बल होते हैं। बुध और गुरुको पूर्व (उदय-लग्न)में, रवि और मङ्गलको दक्षिण (दशम भाव)-में, शनिको पश्चिम (सप्तम भाव)-में और चन्द्र तथा शुक्रको उत्तर (चतुर्थ भाव)-में दिक्सम्बन्धी बल प्राप्त होता है। रवि और चन्द्रमा उत्तरायण (मकरसे ६ राशि)-में रहनेपर तथा अन्य ग्रह वक्र और समागममें (चन्द्रमाके साथ) होनेपर चेष्टाबलसे युक्त समझे जाते हैं। तथा जिन दो ग्रहोंमें युति होती है, उनमें उत्तर दिशामें रहनेवाला भी चेष्टाबलसे सम्पन्न समझा जाता है॥ २८-२९॥ चन्द्रमा, मङ्गल और शनि ये रात्रिमें, बुध दिन और रात्रि दोनोंमें तथा अन्य ग्रह (रवि, गुरु और शुक्र) दिनमें बली होते हैं। कृष्णपक्षमें पापग्रह और शुक्लपक्षमें शुभग्रह बली होते हैं। इस प्रकार विद्वानोंने ग्रहोंका कालसम्बन्धी बल माना है॥ ३०॥ शनि, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा तथा रवि— ये उत्तरोत्तर बली होते हैं। इस प्रकार यह ग्रहोंका नैसर्गिक (स्वाभाविक) बल है॥ ३० $\frac{1}{2}$ ॥

(वियोनि जन्म-ज्ञान—) (प्रश्न, आधान या जन्म-समयमें) यदि पापग्रह निर्बल हों, शुभग्रह बलवान् हों, नपुंसक (बुध, शनि) केन्द्रमें हों तथा लग्नपर शनि या बुधकी दृष्टि हो तो तात्कालिक चन्द्रमा जिस राशिके द्वादशांशमें हो, उस राशिके सदृश वियोनि (मानवेतर प्राणी)-का जन्म जानना चाहिये। अर्थात् चन्द्रमा यदि वियोनि राशिके द्वादशांशमें हो तब वियोनि प्राणियोंका जन्म समझना चाहिये। अथवा पापग्रह अपने नवमांशमें और शुभग्रह अन्य ग्रहोंके नवमांशमें हो तथा निर्बल वियोनि राशि लग्नमें हो तो भी विद्वान् पुरुष वियोनि या मानवेतर जीवके ही जन्मका प्रतिपादन करें॥ ३१-३२ $\frac{1}{2}$ ॥

(वियोनिके अङ्गोंमें राशिस्थान—) १ मस्तक, २ मुख, गला (गर्दन), ३ पैर, कंधा, ४ पीठ, ५ हृदय, ६ दोनों पार्श्व, ७ पेट, ८ गुदा-मार्ग, ९ पिछले पैर, १० लिङ्ग, ११ अण्डकोश, १२ चूतड़ तथा पुच्छ—इस प्रकार चतुष्पद आदि (पशु-

---

ग्रहोंकी तात्कालिक मैत्री चक्रमें देखिये—

तात्कालिक मैत्रीका बोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	मं. बु. शु.	मं. गु. शु. श.	सू. चं. बु. शु.	सू. चं. मं.शु.	चं. श.	सू. मं. चं. बु.	चं. गु.
शत्रु	चं. गु. श.	सू. बु.	गु. श.	गु. श.	सू. मं. बु. शु.	गु. श.	सू. म. बु. शु.

तात्कालिक और नैसर्गिक मैत्री-चक्र लिखकर उसमें पञ्चधा मैत्री इस प्रकार देखी जाती है। यथा—सूर्यका चन्द्रमा नैसर्गिक मित्र है तथा तात्कालिक शत्रु हुआ है, अत: चन्द्रमा सूर्यका सम हुआ। मङ्गल नैसर्गिक मित्र और तात्कालिक मित्र है, अत: अधिमित्र हुआ। बुध नैसर्गिक सम और तात्कालिक मित्र है, अत: मित्र ही रहा। गुरु नैसर्गिक मित्र और तात्कालिक शत्रु है, अत: सम हुआ। शुक्र नैसर्गिक शत्रु और तात्कालिक मित्र है, अत: सम हुआ। शनि नैसर्गिक शत्रु और तात्कालिक भी शत्रु है, अत: शनि सूर्यका अधिशत्रु हुआ। इसी प्रकार इन दोनों चक्रोंसे सब ग्रहोंकी पञ्चधा मैत्री देखकर ही उन्हें परस्पर मित्र, शत्रु या सम समझना चाहिये।

पक्षी)-के अङ्गोंमें मेषादि राशियोंके स्थान हैं॥ ३४॥

(वियोनि वर्ण-ज्ञान—)-लग्नमें जिस ग्रहका योग हो उस ग्रहके समान और यदि किसीका योग न हो तो लग्नके नवमांश (राशि-राशिपति)-के समान वियोनिका वर्ण (श्याम, गौर आदि रंग) कहना चाहिये। बहुत-से ग्रहोंके योग या दृष्टि हों तो उनमें जो बली हों या जितने बली हों, उनके सदृश वर्ण कहना चाहिये। लग्नके सप्तम भावमें ग्रह हो तो उस ग्रहके समान (उस ग्रहका जैसा वर्ण कहा गया है वैसा) चिह्न उस वियोनिके पीठ आदि अङ्गोंमें जानना चाहिये॥ ३५॥

(पक्षिजन्म-ज्ञान—) ग्रहयुत लग्नमें पक्षिद्रेष्कोण[१] हो अथवा बुधका नवमांश हो या चरराशिका नवमांश हो तथा उसपर शनि या चन्द्रमा अथवा दोनोंकी दृष्टि हो तो क्रमशः शनि और चन्द्रमाकी दृष्टिसे स्थलचर और जलचर पक्षीका जन्म समझना चाहिये॥ ३६॥

(वृक्षादि जन्म-ज्ञान—) यदि लग्न, चन्द्र, गुरु और सूर्य—ये चारों निर्बल हों तो वृक्षोंका जन्म जानना चाहिये। स्थल या जल-सम्बन्धी वृक्षोंके भेद लग्नांशके अनुसार समझने चाहिये[२]। उस स्थल या जलचर नवांशका स्वामी लग्नसे जितने नवमांश आगे हो उतनी ही स्थल या जलसम्बन्धी वृक्षोंकी संख्या जाननी चाहिये॥ ३७-३८॥ यदि उक्त अंशके स्वामी सूर्य हों तो अन्तःसार (सखुआ, शीशम आदि), शनि हो तो दुर्भग (किसी उपयोगमें न आनेवाले कुर्कुस, फरहद आदि खोटे वृक्ष), चन्द्रमा हो तो दूधवाले वृक्ष, मङ्गल हो तो काँटेवाले, गुरु हो तो फलवान् (आम आदि), बुध हो तो विफल (जिसमें फल नहीं होते ऐसे) वृक्ष, शुक्र हो तो पुष्पके वृक्षों (गेंदा, गुलाब आदि)-का जन्म समझना चाहिये। चन्द्रमाके अंशपति होनेसे समस्त चिकने वृक्ष (देवदारु आदि) तथा मङ्गलके अंशपति होनेपर कड़ुए वृक्ष (निम्बादि)-का भी जन्म समझना चाहिये। यदि शुभग्रह अशुभ राशिमें हो तो खराब भूमिसे सुन्दर वृक्ष और पापग्रह शुभ राशिमें हो तो सुन्दर भूमिमें खराब वृक्षका जन्म देता है। इससे अर्थतः यह बात निकली कि यदि कोई शुभग्रह अंशपति हो और वह शुभराशिमें स्थित हो तो सुन्दर भूमिमें सुन्दर वृक्षका जन्म होता है और यदि पापग्रह अंशपति होकर पापराशिमें स्थित हो तो खराब भूमिमें कुत्सित वृक्षका जन्म होता है। इसके सिवा, वह अंशपति अपने नवमांशसे आगे जितनी संख्यापर अन्य नवमांशमें हो, उतनी ही संख्यामें और उतने ही प्रकारके वृक्षोंका जन्म समझना चाहिये॥ ३९-४०$\frac{१}{२}$॥

(आधान-ज्ञान—) प्रतिमास मङ्गल और चन्द्रमाके हेतुसे स्त्रीको ऋतुधर्म हुआ करता है। जिस समय चन्द्रमा स्त्रीकी राशिसे नेष्ट (अनुपचय) स्थानमें हो और शुभ पुरुषग्रह (बृहस्पति)-से देखा जाता हो तथा पुरुषकी राशिसे अन्यथा (इष्ट-उपचय[३] स्थानमें) हो और बृहस्पतिसे दृष्ट हो तो उस स्त्रीको पुरुषका संयोग प्राप्त होता है[४]।

१. पक्षिद्रेष्काणका वर्णन आगे (अन्तमें) किया जायगा।

२. सारांश यह कि जलचर-राशिका अंश हो तो जलके और स्थल-राशिका अंश हो तो स्थलके वृक्ष जानने चाहिये।

३. जन्मराशिसे ३। ६। १०। ११ ये उपचय तथा अन्य स्थान अनुपचय कहलाते हैं।

४. आशय यह है कि चन्द्रमा जलमय और मङ्गल रक्त एवं पित्त प्रकृतिका है। इसलिये ये दोनों रजोधर्मके हेतु होते हैं। जिस समय स्त्रीके अनुपचय-स्थानमें चन्द्रमा हो, उस समय यदि उसपर मङ्गलकी दृष्टि होती है तो वह रज गर्भधारणमें समर्थ होता है। यदि उसपर गुरुकी भी दृष्टि हो जाय तो उस स्त्रीको पुरुषके संयोगसे निश्चय ही सत्पुत्रकी प्राप्ति होती है।

आधान-लग्नसे सप्तम भावपर पापग्रहका योग या दृष्टि हो तो रोषपूर्वक और शुभग्रहका योग एवं दृष्टि हो तो प्रसन्नतापूर्वक पति-पत्नीका संयोग होता है॥ ४१-४२॥ आधानकालमें शुक्र, रवि, चन्द्रमा और मङ्गल अपने-अपने नवमांशमें हों, गुरु लग्नसे केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो वीर्यवान् पुरुषको निश्चय ही संतान होती है॥ ४३॥ यदि सूर्यसे सप्तम भावमें मङ्गल और शनि हों तो वे पुरुषके लिये तथा चन्द्रमासे सप्तममें हों तो स्त्रीके लिये रोगप्रद होते हैं। सूर्यसे १२, २ में शनि और मङ्गल हों तो पुरुषके लिये और चन्द्रमासे १२, २ में ये दोनों हों तो स्त्रीके लिये घातक होते हैं। अथवा इन (शनि-मङ्गल)-में एकसे युत और अन्यसे दृष्ट रवि हो तो वह पुरुषके लिये और चन्द्रमा यदि एकसे युत तथा अन्यसे दृष्ट हो तो वह स्त्रीके लिये घातक होता है॥ ४४॥

दिनमें गर्भाधान हो तो शुक्र मातृग्रह और सूर्य पितृग्रह होते हैं। रात्रिमें गर्भाधान हो तो चन्द्रमा मातृग्रह और शनि पितृग्रह होते हैं। पितृग्रह यदि विषम राशिमें हो तो पिताके लिये और मातृग्रह सम राशिमें हो तो माताके लिये शुभकारक होता है। यदि पापग्रह बारहवें भावमें स्थित होकर पापग्रहसे देखा जाता और शुभग्रहसे न देखा जाता हो, अथवा लग्नमें शनि हो तथा उसपर क्षीण चन्द्रमा और मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भाधान होनेसे स्त्रीका मरण होता है। लग्न और चन्द्रमा दोनों या इनमेंसे एक भी दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो गर्भाधान होनेपर स्त्री गर्भके सहित (साथ ही) या पृथक् मृत्युको प्राप्त होती है। लग्न अथवा चन्द्रमासे चतुर्थ स्थानमें पापग्रह हो, मङ्गल अष्टम भावमें हो अथवा लग्नसे ४, १२ वें स्थानमें मङ्गल और शनि हों तथा चन्द्रमा क्षीण हो तो भी गर्भवती स्त्रीका मरण होता है। यदि लग्नमें मङ्गल और सप्तममें रवि हों तो गर्भवती स्त्रीका शस्त्रद्वारा मरण होता है। गर्भाधानकालमें जिस मासका स्वामी अस्त हो, उस मासमें गर्भका स्राव होता है; इसलिये इस प्रकारके लग्नको गर्भाधानमें त्याग देना चाहिये॥ ४५—४९॥

आधानकालिक लग्न या चन्द्रमाके साथ अथवा इन दोनोंसे ५, ९, ७, ४, १० वें स्थानमें सब शुभग्रह हों और ३, ६, ११ भावमें सब पापग्रह हों तथा लग्न और चन्द्रमापर सूर्यकी दृष्टि हो तो गर्भ सुखी रहता है॥ ५०॥ रवि, गुरु चन्द्रमा और लग्न—ये विषम राशि एवं विषम नवमांशमें हों अथवा रवि और गुरु विषम राशिमें स्थित हों तो पुत्रका जन्म समझना चाहिये। उक्त सभी ग्रह यदि सम-राशि और सम-नवमांशमें हों अथवा मङ्गल, चन्द्रमा और शुक्र—ये सम-राशिमें हों तो विज्ञजनोंको कन्याका जन्म समझना चाहिये। अथवा वे सब द्विस्वभाव राशिमें हों और बुधसे देखे जाते हों तो अपने-अपने पक्षके यमल (जुड़वाँ संतान)-के जन्मकारक होते हैं। अर्थात् पुरुषग्रह दो पुत्रोंके और स्त्रीग्रह दो कन्याओंके जन्मदायक होते हैं। (यदि दोनों प्रकारके ग्रह हों तो एक पुत्र और एक कन्याका जन्म समझना चाहिये।) लग्नसे विषम (३, ५ आदि) स्थानोंमें स्थित शनि भी पुत्रजन्म-कारक होता है॥ ५१—५३॥

क्रमशः विषम एवं सम-राशिमें स्थित रवि और चन्द्रमा अथवा बुध और शनि एक-दूसरेको देखते हों, अथवा सम-राशिस्थ सूर्यको विषम-राशिस्थ मङ्गल देखता हो या विषम-सम राशिस्थ लग्न एवं चन्द्रमापर मङ्गलकी दृष्टि हो अथवा चन्द्रमा सम-राशि और लग्न विषम-राशिमें स्थित हो तथा उनपर मङ्गलकी दृष्टि हो अथवा लग्न, चन्द्रमा और शुक्र—ये तीनों पुरुषराशिके नवमांशमें हों तो इन सब योगोंमें नपुंसकका जन्म होता है॥ ५४ $\frac{१}{२}$ ॥

शुक्र और चन्द्रमा सम-राशिमें हों तथा बुध, मङ्गल, लग्न और बृहस्पति विषम-राशिमें स्थित होकर पुरुषग्रहसे देखे जाते हों अथवा लग्न एवं चन्द्रमा सम-राशिमें हों या पूर्वोक्त बुध, मङ्गल, लग्न एवं गुरु सम-राशिमें हों तो ये यमल (जुड़वी) संतानको जन्म देनेवाले होते हैं॥ ५५ $\frac{१}{२}$ ॥

यदि बुध अपने (मिथुन या कन्याके) नवमांशमें स्थित होकर द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह और लग्नको देखता हो तो गर्भमें तीन संतानोंकी स्थिति समझनी चाहिये। उनमें दो तो बुध-नवमांशके सदृश होंगे और एक लग्नांशके सदृश। यदि बुध और लग्न दोनों तुल्य नवमांशमें हों तो तीनों संतानोंको एक-सा ही समझना चाहिये[१] ॥ ५६ $\frac{१}{२}$ ॥

यदि धनु-राशिका अन्तिमांश लग्न हो, उसी अंशमें बली ग्रह स्थित हों और बलवान् बुध या शनिसे देखे जाते हों, तो गर्भमें बहुत (तीनसे अधिक) संतानोंकी स्थिति समझनी चाहिये ॥ ५७ $\frac{१}{२}$ ॥

(गर्भमासोंके अधिपति—) शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा, शनि, बुध, आधान-लग्नेश, सूर्य और चन्द्रमा[२]—ये गर्भाधानकालसे लेकर प्रसवपर्यन्त १० मासोंके क्रमशः स्वामी हैं। आधान-समयमें जो ग्रह बलवान् या निर्बल होता है, उसके मासमें उसी प्रकार शुभ या अशुभ फल होता है॥ ५८ $\frac{१}{२}$ ॥ बुध त्रिकोण (५, ९)-में हो और अन्य ग्रह निर्बल हों तो गर्भस्थ शिशुके दो मुख, चार पैर और चार हाथ होते हैं। चन्द्रमा वृषमें हो और अन्य सब पापग्रह राशि-संधिमें हों तो बालक गूँगा होता है। यदि उक्त ग्रहोंपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह बालक अधिक दिनोंमें बोलता है॥ ५९-६० ॥ मङ्गल और शनि यदि बुधकी राशि नवमांशमें हों तो शिशु गर्भमें ही दाँतसे युक्त होता है। चन्द्रमा कर्कराशिमें होकर लग्नमें हो तथा उसपर शनि और मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु कुबड़ा होता है। मीन राशि लग्नमें हो और उसपर शनि, चन्द्रमा तथा मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भका बालक पङ्गु होता है। पापग्रह और चन्द्रमा राशिसंधिमें हों और उनपर शुभ-ग्रहकी दृष्टि न हो तो गर्भस्थ शिशु जड (मूर्ख) होता है। मकरका अन्तिम अंश लग्नमें हो और उसपर शनि, चन्द्रमा तथा सूर्यकी दृष्टि हो तो गर्भका बच्चा वामन (बौना) होता है। पञ्चम तथा नवम लग्नके द्रेष्काणमें पापग्रह हो तो जातक क्रमशः पैर, मस्तक और हाथसे रहित होता है॥ ६१-६२ ॥

गर्भाधानके समय यदि सिंह लग्नमें सूर्य और चन्द्रमा हों तथा उनपर शनि और मङ्गलकी दृष्टि हो तो शिशु नेत्रहीन होता है। यदि शुभ और पापग्रह दोनोंकी दृष्टि हो तो आँखमें फूली होती है। यदि लग्नसे बारहवें भावमें चन्द्रमा हो तो बालकका वाम नेत्र और सूर्य हो तो दक्षिण नेत्र नष्ट होता है। ऊपर जो अशुभ योग कहे गये हैं, उनपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उन योगोंके फल पूर्ण नहीं होते हैं (ऐसी परिस्थितिमें देवाराधन एवं चिकित्सा आदि यत्नोंसे अशुभ फलका निवारण हो जाता है)॥ ६३ $\frac{१}{२}$ ॥

यदि आधानलग्नमें शनिका नवमांश हो और शनि सप्तम भावमें हो तो तीन वर्षपर प्रसव होता है। यदि इसी स्थितिमें चन्द्रमा हो (अर्थात् लग्नमें चन्द्रमाका नवमांश हो और चन्द्रमा सप्तम भावमें

---

१. अर्थात् या तो तीनों पुत्र हैं या तीनों कन्याएँ ही हैं, ऐसा समझे। अन्यथा बुध पुरुष नवमांशमें हो तो दो पुत्र और एक कन्या, स्त्री नवमांशमें हो तो दो कन्या और एक पुत्र समझे।

२. अन्य जातकग्रन्थोंमें ९, १० मासके स्वामी क्रमसे चन्द्र और सूर्य कहे गये हैं। यहाँ उससे विपरीत है।

स्थित हो) तो बारह वर्षपर प्रसव होता है। इन योगोंका विचार जन्मकालमें भी करना चाहिये ॥ ६४-६५ ॥ आधानकालमें जिस द्वादशांशमें चन्द्रमा हो, उससे उतनी ही संख्या आगे राशिमें चन्द्रमाके जानेपर बालकका जन्म होता है। द्वादशांशभुक्त अंशादिको दोसे गुणा करके उसमें ५ से भाग देनेपर लब्धि राश्यादि मानकी सूचक होती है[1] ॥ ६६-६७ ॥

(**जन्मज्ञान—**) (शिशुकी जन्म-कुण्डलीमें) यदि चन्द्रमा जन्मलग्नको नहीं देखता हो तो पिताके परोक्षमें बालकका जन्म समझना चाहिये। इसी योगमें यदि सूर्य चर राशिमें मध्य (दशम) भावसे आगे (११, १२)-में अथवा पीछे (९, ८)-में हो तो पिताके विदेश रहनेपर पुत्रका जन्म समझना चाहिये। (इससे यह सिद्ध होता है कि यदि सूर्य स्थिर राशिमें हो तो स्वदेशमें रहते हुए पिताके परोक्षमें और द्विस्वभाव राशिमें हो तो स्वदेश और परदेशके मध्य स्थानमें पिताके रहनेपर बालकका जन्म होता है।)

लग्नमें शनि और सप्तम भावमें मङ्गल हो अथवा बुध और शुक्रके बीचमें चन्द्रमा हो तो भी पिताके परोक्षमें शिशुका जन्म समझना चाहिये। पापग्रहकी राशिवाले लग्नमें चन्द्रमा हो अथवा वह वृश्चिकके द्रेष्काणमें हो तथा शुभग्रह २। ११ भावमें स्थित हों तो सर्पका या सर्पसे वेष्टित मनुष्यका जन्म समझना चाहिये ॥ ६८—७० ॥

मुनिश्रेष्ठ! यदि सूर्य चतुष्पद राशिमें हो और शेष ग्रह बलयुक्त हों तो एक ही कोशमें लिपटे हुए दो शिशुओंका जन्म समझना चाहिये। शनि या मङ्गलसे युक्त सिंह, वृष या मेष लग्न हो तो लग्नके नवमांशकी राशि जिस अङ्गकी हो, उस अङ्गमें नालसे लिपटे हुए शिशुका जन्म समझना चाहिये। यदि लग्न और चन्द्रमापर गुरुकी दृष्टि न हो

---

१. इस विषयको स्पष्ट समझनेके लिये एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। मान लीजिये, वैशाखकी पूर्णिमाको बृहस्पतिवारकी रातमें ग्यारह दण्ड शून्य पल (११। ०) गर्भाधानका समय है। तत्कालीन चन्द्रमाकी राशि ७, अंश ९, कला ३० और विकला १० है। यहाँ चन्द्रमा वृश्चिक राशिके चौथे द्वादशांशमें हैं। वृश्चिकमें चौथा द्वादशांश कुम्भ राशिका होता है, अत: कुम्भसे चतुर्थ राशि वृषमें दैनिक चन्द्रमाके आनेपर दसवें मास फाल्गुनमें बालकका जन्म होगा; ऐसा फल समझना चाहिये। किंतु कृत्तिकाके तीन चरण, रोहिणीके चारों चरण तथा मृगशिराके दो चरण, इस प्रकार नौ चरणोंकी वृष राशि होती है। उस दशामें किस नक्षत्रके किस चरणमें चन्द्रमाके आनेपर जन्म होगा, यह प्रश्न उठ सकता है। अब इसका समाधान किया जाता है—पूर्वोक्त चन्द्रमाकी राश्यादिमें भुक्त द्वादशांशमान (९। ३०। १०)—(७। ३०)=(२। ०। १०)=(१२०। १०)=१२० कला (स्वल्पान्तरसे) मान लिया गया। ''अर्धाल्पे त्याज्यमर्धाधिके रूपं ग्राह्यम्' इस नियमसे (१०) को छोड़ दिया। यहाँपर एक द्वादशांश-खण्डपर एक राशि प्रमाण होता है—यह स्पष्ट है। इसी आधारपर (१२० कला) सम्बन्धी चरणमान अनुपातसे ला रहे हैं; जब कि एक द्वादशांश खण्डकला-प्रमाण (२। ३०)=(१५० कला)-में एक राशिका कलामान १८०० पाते हैं तो १२० में कितना होगा—इस तरह $\frac{१८००\times१२०}{१५}$=१२×१२०=१४४०। एक राशिमें नौ चरण होते हैं और चरणका कलामान २०० कला होता है, अत: चरण जाननेके लिये $\frac{१४४०}{२००}=\frac{७+४०}{२००}$(७ $\frac{१}{५}$)। यहाँ लब्धि और शेषपर दृष्टिपात करनेसे यह ज्ञात होता है कि वृषराशिके आठवें चरणमें अर्थात् मृगशिरा नक्षत्रके प्रथम चरणमें चन्द्रमाका प्रवेश होनेपर बालकका जन्म होगा।

जन्मका इष्टकाल जाननेकी विधि—गर्भाधानकालिक लग्न ९। १०। २५। ० है। इसमें मकरराशिका चौथा नवमांश है, जो उससे चतुर्थ मेषराशिका है। मेषराशि रातमें बली होती है, अत: रातमें जन्म होगा। इसलिये रात्रिगत इष्टकालका ज्ञान करना चाहिये। यहाँपर राशियोंकी दिन-रात्रि-संज्ञाके अनुसार एक नवमांशका प्रमाण दिन या रात्रिका पूरा प्रमाण होता है। अत: त्रैराशिक क्रिया की गयी—एक नवमांश प्रमाण (३ अंश २० कला=२०० कला)-में गर्भाधान रात्रिमान यदि २८। ० दण्ड मिलता है तो लग्नके चतुर्थ नवमांशके भुक्त कलामान २५में कितना होगा? इस तरह $\frac{२८\times२५}{२००}$=३। ३० घट्यादि मान हुआ। अर्थात् ३ दण्ड ३० पल रात बीतनेपर जन्म होगा; ऐसा निश्चय हुआ। इसी तरह अन्य उदाहरणोंको भी समझना चाहिये।

अथवा चन्द्रमा सूर्यसे संयुक्त हो तथा उसे गुरु नहीं देखता हो अथवा चन्द्रमा पापग्रह और सूर्यसे संयुक्त हो तो शिशुको पर-पुरुषके वीर्यसे उत्पन्न समझना चाहिये। यदि दो पापग्रह पापराशिमें स्थित होकर सूर्यसे सप्तम भावमें हों तो सूर्यके चर आदि राशिके अनुसार विदेश, स्वदेश या मार्गमें बालकका जन्म समझना चाहिये। पूर्ण चन्द्रमा अपनी राशिमें हो, बुध लग्नमें हो, शुभग्रह चतुर्थ भावमें हो अथवा जलचर राशि लग्न हो और उससे सप्तम स्थानमें चन्द्रमा हो तो नौकापर शिशुका जन्म समझना चाहिये। नारद! यदि जलचर राशि लग्नको जलचर राशिस्थ पूर्ण चन्द्रमा देखता हो अथवा वह १०, ४ या लग्नमें हो तो जलमें प्रसव होता है, इसमें संशय नहीं। यदि लग्न और चन्द्रमासे शनि बारहवें भावमें हों, उसपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो बालकका कारागारमें जन्म होता है। तथा कर्क या वृश्चिक लग्नमें शनि हो और उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो गड्ढेमें बालकका जन्म समझना चाहिये। जलचर राशिस्थ शनि लग्नमें हो तथा उसपर बुध, सूर्य या चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो क्रमशः क्रीड़ास्थान, देवालय और ऊसर भूमिमें शिशुका प्रसव समझना चाहिये। यदि मङ्गल बलवान् होकर लग्नगत शनिको देखता हो तो श्मशान-भूमिमें, चन्द्रमा और शुक्र देखते हों तो रम्य स्थानमें, गुरु देखता हो तो अग्निहोत्रगृहमें, सूर्य देखता हो तो राजगृह, देवालय और गोशालामें तथा बुध देखता हो तो चित्रशालामें बालकका जन्म समझना चाहिये॥ ७१—७९॥

यदि लग्नमें चरराशि हो तो मार्गमें लग्नराशिके कथित स्थानके[1] समान स्थानमें बालकका जन्म होता है। यदि लग्नमें स्थिर राशि हो तो स्वदेशके ही उक्त स्थानमें जन्म होता है तथा यदि लग्न-राशि अपने नवमांशमें हो तो स्वगृहमें ही वैसे स्थानमें जन्म होता है। मङ्गल और शनिसे त्रिकोण (५, ९)-में अथवा सप्तम भावमें चन्द्रमा हो तो जातकको माता त्याग देती है। यदि उसपर गुरुकी दृष्टि हो तो त्यक्त होनेपर भी दीर्घायु होता है। पापग्रहसे दृष्ट चन्द्रमा यदि लग्नमें हो और मङ्गल सप्तम भावमें स्थित हो तो मातासे त्यक्त होनेपर जातक मर जाता है। अथवा पापदृष्ट चन्द्रमा यदि शनि-मङ्गलसे ११वें भावसे स्थित हो तो भी शिशुकी मृत्यु हो जाती है। यदि चन्द्रमा शुभग्रहसे देखा जाता हो तो बालक दूसरेके हाथमें जाकर सुखी होता है। यदि पापसे ही दृष्ट हो तो दूसरेके हाथमें जानेपर भी हीनायु होता है॥ ८०—८२॥

पितृसंज्ञक ग्रह बली हो तो पिताके घरमें और मातृसंज्ञक ग्रह बली हो तो माता (अर्थात् माता) के घरमें जन्म समझना चाहिये। मुने! यदि शुभग्रह नीच स्थानमें हो तो वृक्षादिके नीचे तृण-पत्रादिकी कुटीमें जन्म समझना चाहिये। शुभग्रह नीच स्थानमें हो और लग्न अथवा चन्द्रमापर एक स्थानस्थित शुभग्रहोंकी दृष्टि न हो तो निर्जन स्थानमें प्रसव होता है। यदि चन्द्रमा शनिकी राशिके नवमांशमें स्थित होकर चतुर्थ भावमें विद्यमान हो तथा शनिसे दृष्ट या युत हो तो प्रसवकालमें 'प्रसूतिका' का शयन पृथिवीपर समझना चाहिये। शीर्षोदय राशि लग्न हो तो शिरकी ओरसे तथा पृष्ठोदय राशि लग्न हो तो पृष्ठ (पैर)-की ओरसे शिशुका जन्म होता है। चन्द्रमासे चतुर्थ स्थानमें पापग्रह हो तो माताके लिये कष्ट समझना चाहिये॥ ८३—८५$\frac{1}{2}$॥

जन्मसमयमें सब ग्रहोंकी अपेक्षा शनि बलवान्

१. राशि-स्थान पहले दिये हुए राशिस्वरूप-बोधक चक्रमें देखिये।

हो तो सूतिका गृह पुराना, किंतु संस्कार किया हुआ समझना चाहिये। मङ्गल बली हो तो जला हुआ, चन्द्रमा बली हो तो नया और सूर्य बली हो तो अधिक काष्ठसे युक्त होकर भी मजबूत नहीं होता। बुध बली हो तो प्रसवगृह बहुत चित्रोंसे युक्त, शुक्र बली हो तो चित्रोंसे युक्त नवीन और मनोहर तथा गुरु बली हो तो सूतिकाका गृह सुदृढ़ समझना चाहिये॥ ८६-८७॥

लग्नमें तुला, मेष, कर्क, वृश्चिक या कुम्भ हो तो (वास्तु भूमिमें) पूर्वभागमें; मिथुन, कन्या, धनु या मीन हो तो उत्तर भागमें, वृष हो तो पश्चिम भागमें तथा मकर या सिंह हो तो दक्षिण भागमें सूतिकाका घर समझना चाहिये॥ ८८॥

(**गृहराशियोंके स्थान—**) घरकी पूर्व आदि दिशाओंमें मेष आदि दो-दो राशियोंको और चारों कोणोंमें चारों द्विस्वभाव राशियोंको समझे। सूतिकागृहके समान ही सूतिकाके पलंगमें भी लग्न आदि भावोंको समझे। वहाँ ३, ६, ९ और १२ वें भावको क्रमशः चारों पायोंमें समझना चाहिये। चन्द्रमा और लग्नके बीचमें जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिकाओंकी[1] प्रसवकालमें उपस्थिति समझनी चाहिये। दृश्य चक्रार्धमें (सप्तम भावसे आगे लग्नतक) जितने ग्रह हों, उतनी उपसूतिकाओंको घरसे बाहर समझे और अदृश्य चक्रार्धमें (लग्नसे आगे सप्तमपर्यन्त) जितने ग्रह हों, उतनी उपसूतिकाओंकी उपस्थिति घरके भीतर रहती है। बहुत-से आचार्यों और मुनियोंने इससे भिन्न मत प्रकट किया है। (अर्थात् दृश्य चक्रार्धमें जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिकाओंको घरके भीतर तथा अदृश्य चक्रार्धमें जितने ग्रह हों, उतनीको घरके बाहर कहा है)॥[2] ८९-९०॥

लग्नमें जो नवमांश हो, उसके स्वामी ग्रहके सदृश अथवा जन्मसमयमें जो ग्रह सबसे बली हो, उसके समान शिशुका शरीर समझना चाहिये। इसी प्रकार चन्द्रमा जिस नवमांशमें हो उस राशिके समान वर्ण (गौर आदि) समझना चाहिये। एवं द्रेष्काणवश लग्न आदि भावोंसे जातकके मस्तक आदि अङ्ग-विभाग जानना चाहिये। यथा—लग्नमें प्रथम द्रेष्काण हो तो लग्न मस्तक, २। १२ नेत्र, ३। ११ कान, ४। १० नाक, ५। ९ कपोल, ६। ८ हनु (ठुड्डी) और ७ (सप्तम) भाव मुख। द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न कण्ठ, २। १२ कंधा, ३। ११ पसली, ४। १० हृदय, ५। ९ भुज, ६। ८ पेट और ७ नाभि। तृतीय द्रेष्काण हो तो लग्न बस्ति (नाभि और लिङ्गके मध्यका स्थान), २। १२ लिङ्ग, गुदमार्ग, ३। १२ अण्डकोश, ४। १० जाँघ, ५। ९ घुटना, ६। ८ पिण्डली और सप्तम भाव पैर समझना चाहिये॥ ९१—९३॥

जिस अङ्गकी राशिमें पापग्रह हो, उस अङ्गमें व्रण और यदि उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि हो तो उस अङ्गमें चिह्न (तिल मशक आदि) समझना चाहिये। पापग्रह अपनी राशि या नवमांशमें, अथवा स्थिर राशिमें हो तो जन्मके साथ ही व्रण होता है अन्यथा उस ग्रहकी दशा-अन्तर्दशामें आगे चलकर व्रण होता है। शनिके स्थानमें वात या पत्थरके आघातसे, मङ्गलके स्थानमें विष, शस्त्र और अग्निसे, बुधके स्थानमें पृथ्वी (मिट्टी)-के आघातसे, सूर्याश्रित अङ्गमें काष्ठ और पशुसे, क्षीण चन्द्राश्रित अङ्गमें सींगवाले पशु और जलचरके आघातसे व्रण होता है। जिस अङ्गकी राशिमें तीन पापग्रह

१. प्रसूता स्त्रीके पास रहकर उसे सहयोग देनेवाली स्त्रियोंको 'उपसूतिका' कहते हैं।

२. सप्तमसे आगे लग्नतक क्षितिजके ऊपर होनेसे दृश्य चक्रार्ध कहलाता है।

हों, उस अङ्गमें निश्चितरूपसे व्रण होता ही है। षष्ठ भावमें पापग्रह हो तो उस राशिके आश्रित अङ्गमें व्रण होता है। यदि उसपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उस अङ्गमें तिल या मसा होता है। यदि शुभग्रहका योग हो तो उस अङ्गमें चिह्न (दाग) मात्र होता है ॥ ९४—९६ १/२ ॥

(ग्रहोंके स्वरूप और गुणका वर्णन—) सूर्यकी आकृति चतुरस्र[1] है, शरीरकी कान्ति और नेत्र पिङ्गल हैं। पित्तप्रधान प्रकृति है और उनके मस्तकपर थोड़े-से केश हैं। चन्द्रमाका आकार गोल है; उनकी प्रकृतिमें वात और कफकी प्रधानता है, वे पण्डित और मृदुभाषी हैं तथा उनके नेत्र बड़े सुन्दर हैं। मङ्गलकी दृष्टि क्रूर है, युवावस्था है, पित्तप्रधान प्रकृति है और वह चञ्चल स्वभावका है। बुधकी प्रकृतिमें कफ, पित्त और वातकी प्रधानता है, वह हास्यप्रिय और अनेकार्थक शब्द बोलनेवाला है। बृहस्पतिकी अङ्गकान्ति, केश और नेत्र पिङ्गल हैं, उनका शरीर बड़ा है, प्रकृतिमें कफकी प्रधानता है और वे बड़े बुद्धिमान् हैं। शुक्रके अङ्ग और नेत्र सुन्दर हैं, मस्तकपर काले घुँघराले केश हैं और वे सर्वदा सुखी रहनेवाले हैं। शनिका शरीर लम्बा और नेत्र कपिश वर्णके हैं, उनकी वातप्रधान प्रकृति है, उनके केश कठोर हैं और वे बड़े आलसी हैं ॥ ९७—१०० ॥

(ग्रहोंके धातु—) स्नायु (शिरा), हड्डी, शोणित, त्वचा, वीर्य, वसा और मज्जा—ये क्रमशः शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, गुरु और मङ्गलके धातु हैं ॥ १०१ ॥

(अरिष्टकथन—) चन्द्रमा, लग्न और पापग्रह—ये राशिके अन्तिमांशमें हों अथवा चन्द्रमा और तीनों पापग्रह ये लग्नादि चारों केन्द्रोंमें हों तथा कर्क लग्न हो तो जातककी मृत्यु होती है। दो पापग्रह लग्न और सप्तम भावमें हों तथा चन्द्रमा एक पापग्रहसे युक्त हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो शिशुका शीघ्र मरण होता है ॥ १०२-१०३ ॥ क्षीण चन्द्रमा १२ वें भावमें हो, पापग्रह लग्न और अष्टम भावमें हों तथा शुभग्रह केन्द्रमें न हों तो उत्पन्न शिशुकी मृत्यु होती है। अथवा पापयुक्त चन्द्रमा सप्तम, द्वादश या लग्नमें स्थित हो तथा उसपर केन्द्रसे भिन्नस्थानमें स्थित शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो जातककी मृत्यु होती है। यदि चन्द्रमा ६, ८ स्थानमें रहकर पापग्रहसे देखा जाता हो तो शिशुका शीघ्र मरण होता है। शुभग्रहसे दृष्ट हो तो ८ वर्षमें और शुभ तथा पापग्रह दोनोंसे दृष्ट हो तो ४ वर्षमें जातककी मृत्यु हो जाती है। क्षीण चन्द्रमा लग्नमें तथा पापग्रह ८, १, ४, ७, १० में स्थित हों तो उत्पन्न बालकका मरण होता है। अथवा दो पापग्रहोंके बीचमें होकर चन्द्रमा ४, ७, ८ स्थानमें स्थित हो या लग्न ही दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो जातककी मृत्यु होती है। पापग्रह ७, ८ में हों और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो मातासहित शिशुकी मृत्यु होती है। राशिके अन्तिमांशमें चन्द्रमा पापग्रहसे अदृष्ट हो तथा पापग्रह त्रिकोण (५, ९)-में हो अथवा लग्नमें चन्द्रमा और सप्तममें पापग्रह हो तो शिशुका मरण होता है। राहुग्रस्त चन्द्रमा पापग्रहसे युक्त हो और मङ्गल अष्टम स्थानमें स्थित हो तो माता और शिशु दोनोंकी मृत्यु होती है। इसी प्रकार राहुग्रस्त सूर्य यदि पापग्रहसे युक्त हो तथा बली पापग्रह अष्टम भावमें स्थित हो तो माता और शिशुका शस्त्रसे मरण होता है ॥ १०४—१०९ ॥

१. जिसकी लम्बाई-चौड़ाई बराबर हो, वह चौकोर वस्तु 'चतुरस्र' कहलाती है।

(आयुर्दायकथन—) चन्द्रमा और बृहस्पतिसे युक्त कर्क लग्न हो, बुध और शुक्र केन्द्रमें हों और शेष ग्रह (रवि, मङ्गल एवं शनि) ३, ६, ११ स्थानमें हों तो ऐसे योगमें उत्पन्न जातककी आयु बहुत अधिक होती है। मीन लग्नमें मीनका नवमांश हो, बुध वृषमें २५ कलापर हो तथा शेष सब ग्रह अपने-अपने उच्च स्थानमें हों तो जातककी आयु परम (१२० वर्ष ५ दिनकी) होती है। लग्नेश बली होकर केन्द्रमें हो, उसपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो बालक धनसहित दीर्घायु होता है। चन्द्रमा अपने उच्चमें हो, शुभग्रह अपनी राशिमें हों, बली लग्नेश लग्नमें हो तो जातककी ६० वर्षकी आयु होती है। केन्द्रमें शुभग्रह हों और अष्टम भाव शुद्ध (ग्रहरहित) हो तो ७० वर्षकी आयु होती है। शुभग्रह अपने-अपने मूल त्रिकोणमें हों, गुरु अपने उच्चमें हो तथा लग्नेश बलवान् हों तो ८० वर्षकी आयु होती है। सबल शुभग्रह केन्द्रमें हों और अष्टम भावमें कोई ग्रह न हो तो ३० वर्षकी आयु होती है। अष्टमेश नवम भावमें हों, बृहस्पति अष्टम भावमें रहकर पापग्रहसे दृष्ट हों तो २४ वर्षकी आयु होती है। लग्नेश और अष्टमेश दोनों अष्टम भावमें स्थित हों तो २७ वर्षकी आयु होती है। लग्नमें पापग्रहसहित बृहस्पति हों, उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि हो तथा अष्टममें कोई ग्रह न हो तो २२ वर्षकी आयु समझनी चाहिये। शनि नवम भाव या लग्नमें हो, शुक्र केन्द्रमें हो और चन्द्रमा १२ या ९ में हो तो १०० वर्षकी आयु होती है। बृहस्पति कर्कमें होकर केन्द्रमें हो अथवा बृहस्पति और शुक्र दोनों केन्द्रमें हों तो १०० वर्षकी आयु समझनी चाहिये। अष्टमेश लग्नमें हो और अष्टम भावमें शुभग्रह न हो तो ४० वर्षकी आयु होती है। लग्नेश अष्टम भावमें और अष्टमेश लग्नमें हों तो ५ वर्षकी आयु होती है। शुक्र और बृहस्पति एक राशिमें हों अथवा बुध और चन्द्रमा लग्न या अष्टम भावमें हों तो ५० वर्षकी आयु होती है॥ ११०—११८॥

मुने! मैंने इस प्रकार ग्रहयोग-सम्बन्धसे आयुर्दायका प्रमाण कहा है। अब गणितद्वारा स्पष्टायुर्दायका वर्णन करता हूँ। (सूर्य, चन्द्रमा और लग्नमेंसे) यदि सूर्य अधिक बली हो तो पिण्डायु, चन्द्रमा बली हो तो निसर्गायु और लग्न बली हो तो अंशायुका साधन करना चाहिये। उसका साधन-प्रकार मैं बतलाता[1] हूँ॥ ११९½॥

(पिण्डायु और निसर्गायुका[2] साधन—) सूर्य आदि ग्रह अपने-अपने उच्चमें हों तो क्रमशः १९, २५, १५, १२, १५, २१ और २० वर्ष पिण्डायुके प्रमाण होते हैं तथा २०, १, २, ९, १८, २०, ५० ये क्रमशः सूर्यादि ग्रहोंके निसर्गायुर्दायके प्रमाण होते हैं॥ १२०-१२१॥

पिण्डायु और निसर्गायुमें आयु-साधन करना हो तो राश्यादि ग्रहमें अपने उच्चको घटाना चाहिये। यदि वह ६ राशिसे अल्प हो तो उसको १२ राशिमें घटाकर ग्रहण करें। उसके अंश बनानेसे वह आयुर्दाय-साधनमें उपयोगी होता है। जो ग्रह शत्रुके गृहमें हो उसके अंशोंमें उसीका तृतीयांश घटावे। यदि वह ग्रह वक्रगति न हो तभी ऐसा करना चाहिये। (यदि ग्रह वक्रगति हो तो शत्रुगृहमें रहनेपर भी तृतीयांश नहीं घटाना चाहिये) तथा शनि और शुक्रको छोड़कर अन्य ग्रह अस्त

१-'पिण्डायु' वह है, जिसमें उच्च और नीच स्थानमें आयुके पिण्ड (मान-संख्या)-का निर्देश किया हुआ है, उसके द्वारा इष्टस्थानस्थित ग्रहसे आयुका साधन किया जाता है।

२-'निसर्गायु' वह है, जो ग्रहोंके निसर्ग (स्वभाव)-से ही सिद्ध है, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता।

हों तो उनके अंशोंमें आधा घटा देना चाहिये। (शनि और शुक्र अस्त हों तो भी उनके अंशोंमें आधा नहीं घटाना चाहिये।) यदि किसी ग्रहमें दोनों हानि प्राप्त हो (अर्थात् वह शत्रुगृहमें हो और अस्त भी हो) तो उसमें अधिक हानिमात्र करें (अर्थात् केवल आधा घटावे, तृतीयांश नहीं)। यदि लग्नमें पापग्रह हो तो उसकी राशिको छोड़कर केवल अंशादिसे आयुर्दायके अंशको गुणा करके गुणनफलमें ३६० का भाग देकर लब्ध अंशादिको पूर्वोक्त अंशमें घटावे। इस प्रकार पापग्रहके समस्त लब्धांश घटावे। यदि उसमें शुभग्रहका योग या दृष्टि हो तो लब्धांशका आधा घटाना चाहिये। इस तरह आगे बताये जानेवाले प्रकारसे आयुर्दाय-साधन योग्य स्पष्ट अंश उपलब्ध होते हैं॥ १२२—१२५॥

(पिण्डायु-साधन—) उन स्पष्टांशोंको अपने-अपने पूर्वोक्त गुणक (उच्चस्थ वर्ष-संख्या १९ आदि)-से गुणा करके गुणनफलमें ३६० से भाग देनेपर लब्धि वर्ष-संख्या होती है। शेषको १२ से गुणा करके ३६० से भाग देनेपर लब्धि मास-संख्या होती है। पुनः शेषको ३० से गुणा करके ३६० के द्वारा भाग देनेपर लब्धि दिन-संख्या होगी। फिर शेषको ६० से गुणा कर ३६० से भाग देनेपर लब्धि घटी एवं पलादि रूप होगी[1] ॥ १२६-१२७॥

(लग्नायु-साधन—) लग्नकी राशियोंको छोड़कर अंशादिको कला बनाकर २०० से भाग देनेपर लब्धि वर्ष-संख्या होगी। शेषको १२ से गुणाकर २०० से भाग देनेपर लब्धि मास-संख्या होगी। पुनः पूर्ववत् ३० आदिसे गुणा करके हरसे भाग देनेपर लब्धि दिनादिकी सूचक होगी[2] ॥१२८ $\frac{1}{2}$ ॥

(अंशायुर्दाय[3]-साधन—) लग्नसहित ग्रहोंके पृथक्-पृथक् अंश बनाकर ४० से भाग देकर जो शेष बचे उसे आयुर्दाय-साधनोपयोगी अंशादि समझे; उसमें जो विशेष संस्कार कर्तव्य है, उसका वर्णन करता हूँ। लग्नमें ग्रहको घटावे। यदि शेष ६ राशिसे अल्प हो तो उसमें निम्नाङ्कित संस्कार विशेष करना चाहिये, अन्यथा नहीं। यदि घटाया हुआ ग्रह ६ राशिसे अल्प और १ राशिसे अधिक हो तो उन अंशोंसे ३० में भाग देकर

---

१. यदि लग्न-राश्यादि ३। १५। २०। ३० और स्पष्ट सूर्य १०। १५। १०। २० है तो उपर्युक्त रीतिके अनुसार सूर्यकी राश्यादिमें सूर्यकी उच्च राश्यादि ०। १० को घटानेपर १०। ५। १०। २० रहा। यह ६ राशिसे अधिक है, इसलिये इसीको अंशात्मक बनानेसे ३०५। १०। २० हुआ। सूर्य शत्रुके घरमें नहीं है, इसलिये इसमें संस्कार-विशेष न करके इसी अंशादिको सूर्यके उच्चस्थानीय आयुमान १९ से गुणा करनेपर गुणनफल ५७९८। १६। २० में ३६० का भाग देनेपर लब्ध वर्ष १६ हुए। शेष ३८। १६। २० को १२ से गुणा कर गुणनफल ४५९। १६। ० में ३६० का भाग देनेपर लब्ध मास १ हुआ। मास-शेष ९९। १६ को ३० से गुणा करनेपर गुणनफल २९७६ में ३६० का भाग देनेपर लब्ध दिन ८ हुए। शेष ९६ को ६० से गुणा करके गुणनफल ५७६० में ३६० का भाग देनेपर लब्धि घड़ी १६ हुई; शेष ० रहा। इस प्रकार सूर्यसे आयुमान वर्षादि १६। १। ८। १६। ० हुआ। इसी तरह सब ग्रहोंका आयु-साधन कर लेना चाहिये।

ग्रहोंका उच्चादिबोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उच्चराशि	०	१	९	५	३	११	६
" अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०
नीचराशि	६	७	३	११	९	५	०
" अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०
आयु-पिण्ड	१९	२५	१५	१२	१५	२१	२०

२. लग्नायु-साधन—लग्नकी राशिको छोड़कर अंशादि १५। २०। ३० को कलात्मक बनानेसे ९२०। ३० हुआ। इसमें २०० का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ४ हुए। शेष १२०। ३० को १२ से गुणा करनेपर गुणनफल १४४६। ० में २००का भाग देनेसे लब्ध मास ७ हुए। शेष ४६ को ३० से गुणा करके गुणनफल १३८० में २०० का भाग देनेपर लब्ध दिन ६ हुए। शेष १८० को ६० से गुणा करनेपर गुणनफल १०८०० में २०० का भाग देनेसे लब्धि ५४ घड़ी हुई। इस प्रकार लग्नायुमान वर्षादि ४। ७। ६। ५४। ० हुआ।

३. 'अंशायु' वह है, जो ग्रहोंके अंश (नवमांश)-द्वारा अनुपातसे जानी जाती है।

लब्धिको १ में घटावे और शेषको गुणक समझे। यदि ग्रह घटाया हुआ लग्न १ राशिसे अल्प हो तो उन्हीं अंशोंमें ३० का भाग देकर लब्धिको १ में घटानेसे शेष गुणक होता है। इस प्रकार शुभग्रहके गुणकको आधा करके गुणक समझे और पाप-ग्रहके समस्त गुणकोंको ग्रहण करे। फिर इस प्रकारके गुणकोंसे उपर्युक्त आयुर्दायके अंशको गुणा करे तो संस्कृत अंश होता है। यह संस्कार कहा गया है। इस संस्कृत आयुर्दायके अंशको कलात्मक बनाकर २०० से भाग देकर लब्धिको वर्ष समझे। फिर शेषको १२ से गुणा करके गुणनफलमें २००का भाग देनेसे लब्धिको मास समझे। तत्पश्चात् शेषमें ३० आदिसे गुणा करके २०० का भाग देनेसे लब्धिको दिन एवं घटी आदि समझे[1]।

लग्नके आयुर्दाय अंशादिको ३ से गुणा करके गुणनफलमें १० का भाग देनेसे जो लब्धि हो, वह वर्ष है। फिर शेषको १२ आदिसे गुणा करके १० से भाग देनेपर जो लब्धि हो उसे मासादि समझे। (लग्नकी आयुमें इतनी विशेषता है कि) यदि लग्न सबल हो तो लग्नकी जितनी भुक्त राशिसंख्या हो उतने वर्ष और अधिक जोड़े। तथा अंशादिको २ से गुणा करके ५ का भाग देकर लब्धिको मास समझकर उसे भी जोड़े तथा शेषको ३० आदिसे गुणा करके हरसे भाग देकर जो लब्धि आवे, उसके तुल्य दिनादि रूप फल भी जोड़े तो लग्नायु स्पष्ट होती है[2]। यह क्रिया पिण्डायु और निसर्गायुमें नहीं की जाती है॥ १२९—१३५ $\frac{1}{2}$ ॥

(दशा-निरूपण—) लग्न, सूर्य और चन्द्रमा— इन तीनोंमें जो अधिक बली है, प्रथम उसीकी दशा होती है। फिर उससे केन्द्रस्थित ग्रहोंकी, तदनन्तर 'पणफर' स्थित ग्रहोंकी, तत्पश्चात् 'आपोक्लिम' स्थित ग्रहोंकी दशा होती है। केन्द्रादि-स्थित ग्रहोंमें बलके अनुसार ही पूर्व-पूर्व दशा होती है। एक स्थानमें स्थित दो या तीन ग्रहोंमें यदि बलकी समानता हो तो उनमें जिसकी अधिक आयु हो उसकी प्रथम दशा होती है। आयुके वर्षादिमें भी समता हो तो जिस ग्रहका सूर्य-सान्निध्यसे प्रथम उदय हुआ हो, उसकी

---

१. अंशायु-साधन—स्पष्ट राश्यादि सूर्य १०। १५। १०। २० को अंशात्मक बनानेसे ३१५। १०। २० में ४० का भाग देनेपर शेष ३५। १०। २० हुआ। यह साधनोपयोगी अंशादि हुआ। इसमें संस्कारविशेष करनेके लिये सूर्य १०। १५। १०। २० लग्न ३। १५। २०। ३० में न घट सकनेके कारण नियमानुसार १२ राशिमें जोड़कर घटानेसे शेष ५। ०। १०। १० यह ६ राशिसे कम और १ राशिसे अधिक है, इसलिये इस शेषके अंशादि १५०। १०। १० से ३० में भाग देनेपर लब्ध अंश ० हुआ। शेष ३० को ६० से गुणा कर गुणनफल १८०० में उक्त भाजकका भाग देनेपर लब्धि-कला ११ हुई। शेष १४८। ८। १० को ६० से गुणा कर गुणनफल ८८८८। १०में उक्त अंशादि भाजकसे भाग देनेपर तृतीय लब्धि ५९ हुई। इस प्रकार लब्धिमान अंशादि ०। ११। १५ हुआ। इसको १ अंशमें घटानेसे शेष ०। ४८। १ यह गुणक हुआ। सूर्य पापग्रह है, अत: इस गुणकसे आयुसाधनोपयोगी अंशादि ३५। १०। २० को गुणा करनेपर गुणनफल २८। ८। ५१ यह संस्कृत अंशादि हुआ। इसको कलात्मक बनानेसे १६८८। ५१ हुआ। इसमें २००का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ८ हुए। शेष ८८। ५१ को १२ आदिसे गुणा कर गुणनफलमें २०० का भाग देकर पूर्ववत् मासादि निकालनेसे आयुमान वर्षादि ८। ५। ९। ५५। ४८ हुआ।

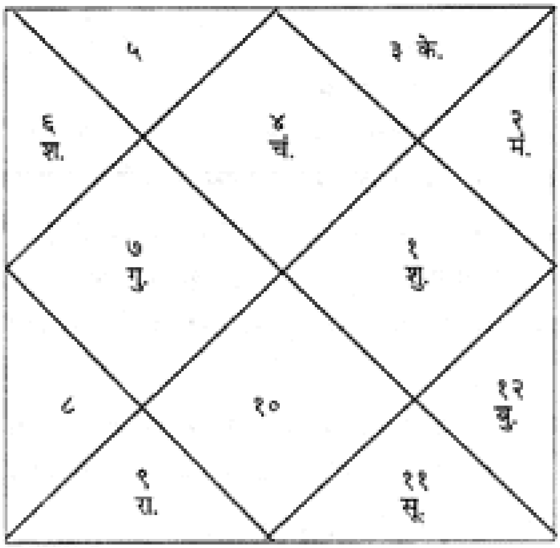
२. लग्नका अंशायु-साधन—लग्न ३। १५। २०। ३० के अंशादि बनानेसे १०५। २०। ३० हुए। इनमें ४० का भाग देनेपर बचे हुए २५। २०। ३० को ३०से गुणा करके गुणनफल ७६। १। ३० में १० का भाग दिया तो लब्ध ७ वर्ष हुए। शेष ६। १। ३० को १२से गुणा करके गुणनफल ७२। १८। ० में १० का भाग देनेपर लब्ध ७ मास हुए। मास-शेष २। १८ को ३० से गुणा कर गुणनफल ६९। ० में १० का भाग देनेपर लब्ध ६ दिन हुए। शेष ९ को ६० से गुणा कर गुणनफल ५४० में १० का भाग देनेपर लब्धि ५४ घड़ी हुई। इस प्रकार लग्नका अंशायुर्दायमान वर्षादि ७। ७। ६। ५४। ० हुआ।

प्रथम दशा होती है॥१३६-१३७॥

(अन्तर्दशा-कथन—) दशापति पूर्णदशाका पाचक होता है, तथापि उसके साथ रहनेवाला ग्रह आधे (१/२) का, दशापतिसे त्रिकोण (५, ९)-में रहनेवाला तृतीयांश (१/३) का, सप्तममें रहनेवाला सप्तमांश (१/७) का, चतुरस्र (४। ८)-में रहनेवाला चतुर्थांश (१/४) अन्तर्दशाका पाचक होता है। इससे सिद्ध है कि इन स्थानोंसे भिन्न स्थानमें स्थित ग्रहोंकी अन्तर्दशा नहीं होती हैं॥१३८-॥

(अन्तर्दशा-साधनके गुणक—) मूल दशापतिका ८४, उसके साथ रहनेवालेका ४२, त्रिकोणमें रहनेवालेका २८, सप्तममें रहनेवालेका १२ तथा चतुर्थ-अष्टममें रहनेवालेका २१ गुणक कहा गया है। वर्षादि रूप दशा-प्रमाणको अपने-अपने गुणकसे गुणा करके सब गुणकोंके योगसे भाग देनेपर जो लब्धि आवे, वह वर्ष होता है। शेषको १२, ३० आदिसे गुणा करके गुणनफलमें गुणकके योगसे भाग देनेपर जो लब्धि आवे, वह मास-दिन आदिका सूचक होती हैं। नारदजी! इसी प्रकार अन्तर्दशामें उपदशाके मान समझने चाहिये॥१३९—१४११/२॥

(दशाफल—) दशारम्भ-कालमें यदि चन्द्रमा दशापतिके मित्रकी राशि, स्वोच्च, स्वराशि या दशापतिसे १, ४, ७, ३, १०, ११ में शुभ स्थानमें हो तो जिस भावमें चन्द्रमा हो, उस भावकी विशेषरूपसे पुष्टि करता हुआ शुभ फल देता है। इन स्थानोंसे भिन्न स्थानमें हो तो उस भावका नाशक होता है॥१४२-१४३॥ पहले जिस ग्रहके जो द्रव्य बताये गये हैं, भाव और राशियोंमें जो उन ग्रहोंकी दृष्टि तथा योगका फल कहा गया है एवं आजीविका आदि जो-जो फल बताये गये हैं, उन सबका विचार उस ग्रहकी दशामें करना चाहिये। जो ग्रह पापदशामें प्रवेशके समय अपने शत्रुसे देखा जाता हो, वह विपत्तिकारक (अत्यन्त अशुभ फल देनेवाला) होता है तथा जो शुभग्रह मित्रसे दृष्ट हो और शुभवर्गमें रहकर तत्काल बलवान् हो, वह सब आपत्ति (दुष्ट फल)-को नष्ट कर देता है। जिसका (आगे बताया जानेवाला) अष्टक वर्गज फल पूर्ण शुभ हो तथा जो ग्रह लग्न



१. यहाँ लग्न, सूर्य और चन्द्रमा—इन तीनोंमें लग्न बली है, इसलिये प्रथम दशा लग्नकी होगी; फिर उससे केन्द्रादिस्थित ग्रहोंकी। तथा लग्नकी दशामें प्रथम अन्तर्दशा लग्नकी, आगे फिर बलक्रमसे शुक्र और बुधकी अन्तर्दशा होगी। यहाँ दशापति लग्न है, इसलिये इसके गुणकाङ्क ८४ से दशावर्षादि ११। १। ११ को गुणा कर गुणनफल ९३३। ६। २४ में गुणकयोग १८७ का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ४ हुए। शेष १८५। ६। २४ को १२ से गुणा कर गुणनफल २२२६। ९। १८ में १८७ का भाग देनेपर लब्ध ११ मास हुए। शेष १६९। ९। १८ को ३० से गुणा कर गुणनफल ५०९४ में १८७ का भाग देनेपर लब्ध २७ दिन हुए। शेष ४३ को ६० से गुणा कर गुणनफल २५८० में १८७ का भाग देनेपर लब्धि १३ घड़ी हुई। शेष १४९ को ६० से गुणा कर गुणनफल ८९४० में १८७ का भाग देनेसे लब्ध ४७ पल हुए। इस प्रकार लब्ध वर्षादि ४। ११। २७। १३। ४७ यह लग्नकी दशामें लग्नकी अन्र्दशाका मान हुआ।

इसी प्रकार अन्य ग्रहोंके भी अपने-अपने गुणकसे दशामानको गुणा करके गुणनफलमें गुणकयोगका भाग देकर अन्तर्दशाका मान साधन करना चाहिये।

या चन्द्रमासे १, ३, ६, १०, ११ में, स्वोच्च स्थानमें, स्वराशिमें, अपने मूल त्रिकोणमें तथा मित्रकी राशिमें हो, उसका अशुभ फल भी मध्यम हो जाता है, मध्यम फल श्रेष्ठ हो जाता है तथा शुभ फल तो अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। यदि वह ग्रह इससे भिन्न स्थानमें हो, तो उसके पाप-फलकी वृद्धि होती है और उसका शुभ फल भी अल्प हो जाता है। इन फलोंको भी ग्रहके बलाबलको समझकर तदनुसार स्वल्प या अधिक समझना चाहिये॥ १४४—१४८॥

(**लग्न-दशा-फल—**) चर लग्नमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय द्रेष्काण हो तो क्रमसे लग्नकी दशा शुभ, मध्यम और अशुभ फल देनेवाली होती है। द्विस्वभाव लग्न हो तो इससे विपरीत फल होता है (अर्थात् प्रथमादि द्रेष्काणमें क्रमसे अशुभ, मध्यम और शुभ फल देनेवाली दशा होती है)। स्थिर लग्न हो तो प्रथमादि द्रेष्काणमें अशुभ, शुभ और मध्यम फल देनेवाली दशा होती है। लग्न यदि अपने स्वामी, गुरु और बुधसे युक्त एवं दृष्ट हो तो उसकी दशा शुभप्रद होती है। यदि वह पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो अथवा पापके मध्यमें हो तो उसकी दशा अशुभ फल देनेवाली होती है॥ १४९-१५०॥

(**अष्टक-वर्ग-कथन—**) सूर्य जन्म-कालिक स्वाश्रित राशिसे १। २। १०। ४। ८। ११। ९। ७ इन स्थानोंमें शुभ होता है। मङ्गल और शनिसे भी इन्हीं स्थानोंमें रहनेपर वह शुभ होता है। शुक्रसे ७। १२। ६ में, गुरुसे ९। ५। ११। ६ में, चन्द्रमासे १०। ३। ११। ६ में, बुधसे इन्हीं १०। ३। ११। ६ स्थानोंमें और १२। ५। ९ में भी वह शुभ होता है। लग्नसे ३। ६। १०। ११। १२। ४ इन स्थानोंमें सूर्य शुभ होता है॥ १५१-१५२॥

चन्द्रमा लग्नसे ६, ३, १०, ११ स्थानोंमें; मङ्गलसे २, ५, ९ सहित इन्हीं ६, ३, १०, ११ स्थानोंमें; अपने स्थानसे ३, ६, १०, ११, ७, १में; सूर्यसे ३, ६, १०, ११, ७, ८ में; शनिसे ६, ३, ११, ५ में; बुधसे ५, ३, ८, १, ४, ७, १० में; गुरुसे १, ४, ७, १०, ८, ११, १२ में और शुक्रसे ४, ५, ९, ३, ११, ७, १० इन स्थानोंमें शुभ होता है॥ १५३-१५४॥

मङ्गल सूर्यसे ३, ६, १०, ११, ५ में; लग्नसे ३, ६, १०, ११, १ में; चन्द्रमासे ३, ६, ११ में; अपने आश्रित स्थानसे १, ४, ७, १०, ८, ११, २ में; शनिसे ९, ८, ११, १, ४, ७, १० में; बुधसे ६, ३, ५, ११में; शुक्रसे ६, ११, २, ८ में और गुरुसे १०, ११, १२, ६ स्थानोंमें शुभ होता है॥ १५५-१५६॥

बुध शुक्रसे ५, ३ सहित २, १, ८, ९, ४, ११ स्थानोंमें; शनि और मङ्गलसे १०, ७ सहित २, १, ८, ९, ४ और ११ वें स्थानमें; गुरुसे १२, ६, ११, ८ वें स्थानोंमें; सूर्यसे ९, ११, ६, ५, १२ वें स्थानोंमें; अपने आश्रित स्थानसे १, ३, १०, ९, ११, ६, ५, १२ वें स्थानोंमें; चन्द्रमासे ६, १०, ११, ८, ४, १० में और लग्नसे १ तथा पूर्वोक्त ६, १०, ११, ८, ४, १० स्थानोंमें शुभ होता है॥ १५७-१५८॥

गुरु मङ्गलसे १०, २, ८, १, ७, ४, ११ स्थानोंमें; अपने आश्रित स्थानसे ३ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानोंमें; सूर्यसे ३, ९ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानोंमें; शुक्रसे ५, २, ९, १०, ११, ६ में; चन्द्रमासे २, ११, ५, ९, ७ में; शनिसे ५, ३, ६, १२में; बुधसे ९, ४, ५, ६, २, १०, १, ११ में तथा लग्नसे ७ सहित पूर्वोक्त (९। ४, ५, ६, २, १०, १, ११) स्थानोंमें शुभ होता है॥ १५९-१६०॥

शुक्र लग्नसे १, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९ स्थानोंमें; चन्द्रमासे भी इन्हीं स्थानों (१, २, ३,

४, ५, ११, ८, ९)-में और १२ वें स्थानमें; अपने आश्रित स्थानसे १० सहित उक्त (१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९) स्थानोंमें; शनिसे ३, ५, ९, ४, १०, ८, ११ स्थानोंमें; सूर्यसे ८, ११, १२ स्थानोंमें; गुरुसे ९, ८, ५, १०, ११ स्थानोंमें; बुधसे ५, ३, ११, ६, ९ स्थानोंमें और मङ्गलसे ३, ६, ९, ५, ११ तथा बारहवें स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १६१-१६२ ॥

शनि अपने आश्रित स्थानसे ३, ५, ११, ६ में; मङ्गलसे १०, १२ सहित पूर्वोक्त (३, ५, ११, ६) स्थानोंमें; सूर्यसे १, ४, ७, १०, ११, ८, २ में; लग्नसे ३, ६, १०, ११, १, ४ में; बुधसे ९, ८, ११, ६, १०, १२ में; चन्द्रमासे ११, ३, ६ में; शुक्रसे ६, ११, १२ में और गुरुसे ५, ११, ६ स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १६३-१६४ ॥

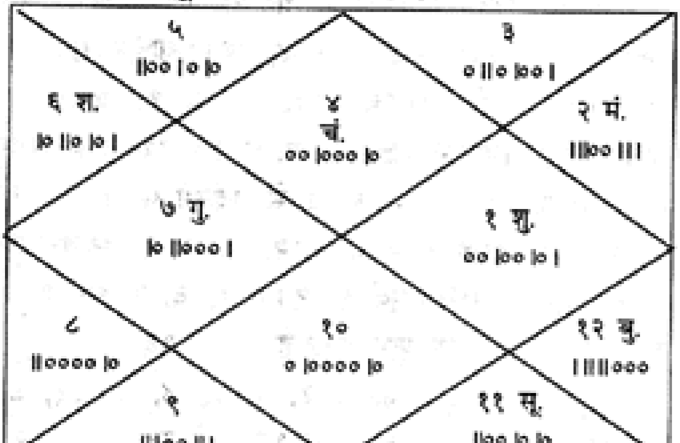
उपर्युक्त स्थानोंमें ग्रह रेखा-प्रद और अनुक्त स्थानोंमें बिन्दुप्रद होते हैं[1]। जो ग्रह लग्न या चन्द्रमासे वृद्धि या उपचय स्थान (३, ६, १०, ११) में हों, या अपने मित्रगृहमें, उच्च स्थानमें तथा स्वराशिमें स्थित हों, उनके द्वारा शुभ फलकी अधिकता होती है और इनसे भिन्न स्थानोंमें जो ग्रह हों, उनके द्वारा अशुभ फलोंकी अधिकता होती है ॥ १६५ ॥

(एकादि रेखावाले स्थानका फल—) उक्त प्रकारसे जिस स्थानमें एक रेखा हो, वहाँ ग्रहके जानेपर कष्ट होता है। दो रेखावाले स्थानमें जानेसे धनका नाश होता है। तीन रेखावालेमें जानेसे क्लेश होता है। चार रेखावाले स्थानमें ग्रहके पहुँचनेसे मध्यम फल होता है (शुभ-अशुभ फलकी तुल्यता होती है)। पाँच रेखावाले स्थानमें सुखकी प्राप्ति, छः रेखावालेमें धनका लाभ, सात रेखावाले स्थानमें सुख तथा आठ रेखावाले स्थानमें चारवश ग्रहके जानेपर अभीष्ट फलकी सिद्धि होती है ॥ १६६ ॥

(आजीविका-कथन—) जन्मकालिक लग्न और चन्द्रमासे १०वें स्थानमें यदि सूर्य आदि ग्रह हों तो क्रमसे पिता-माता, शत्रु, मित्र, भाई, स्त्री और नौकरके द्वारा धनका लाभ होता है। जन्मलग्न, जन्मकालिक चन्द्र तथा जन्मकालिक सूर्य—इन तीनोंसे दशम स्थानके स्वामी जिस नवमांशमें हों,

१. बालकके जन्मकालमें जो ग्रहस्थिति है, उसमें ग्रहकी निजाश्रित राशिसे विचार करके इस प्रकार रेखा और बिन्दुका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अर्थात् इस तरह रेखा और बिन्दु लगानेसे जिस स्थानमें अधिक रेखाकी संख्या हो, उस स्थानमें चारवश ग्रहके जानेसे शुभ फल होता है और जिसमें बिन्दुकी संख्या अधिक हो, उस स्थानमें ग्रहके जानेसे अशुभ फलकी प्राप्ति होती है।

सूर्यका अष्टकवर्ग-चक्र देखिये—



यहाँ रेखा और बिन्दु लगाकर सूर्यका अष्टकवर्ग-चक्र अङ्कित किया गया है। इसमें वृष, कन्या, धनु और मीनमें रेखा अधिक होनेके कारण ये राशियाँ शुभ हैं तथा मिथुन, सिंह, तुला और कुम्भमें रेखा और बिन्दु तुल्य होनेके कारण ये मध्यम हैं एवं शेष कर्क, वृश्चिक, मकर और मेष—ये अधिक बिन्दु होनेके कारण अशुभ हैं।

उस नवमांशके अधिपतिकी वृत्तिसे आजीविका समझनी चाहिये। यथा—उक्त दशम स्थानोंके स्वामी सूर्यके नवमांशमें हों तो तृण (पत्र-पुष्पादि), सुवर्ण, औषध, ऊन (ऊनी वस्त्र) तथा रेशम आदिसे जीविका समझे। चन्द्रमाके नवमांशमें हों तो खेती, जलज (मोती, मूँगा, शङ्ख, सीप आदि) और स्त्रीके द्वारा जीविका चलती है। मङ्गलके नवमांश हों तो धातु, अस्त्र-शस्त्र और साहससे जीवन-निर्वाह होता है। बुधके नवमांशमें हों तो काव्य, शिल्पकलादिसे, गुरुके नवमांशमें हों तो देवता और ब्राह्मणोंके द्वारा तथा लोहा-सोना आदिके खानसे, शुक्रके नवमांशमें हों तो चाँदी, गौ तथा रत्न आदिसे और शनिके नवमांशमें हों तो परपीड़न, परिश्रम और नीच कर्मद्वारा धनकी प्राप्ति होती है॥ १६७—१६९॥

(राजयोगका वर्णन—) शनि, सूर्य, गुरु और मङ्गल—ये चारों यदि अपने-अपने उच्चमें हों और इन्हींमें कोई एक लग्नमें हों तो इन चारों लग्नोंमें जन्म लेनेवाले बालक राजा होते हैं। लग्न अथवा चन्द्रमा वर्गोत्तम नवमांशमें हो और उसपर ४, ५ या ६ ग्रहकी दृष्टि हो तो इसके २२ भेदमें २२ प्रकारके राजयोग होते हैं। मङ्गल अपने उच्चमें हो, रवि और चन्द्रमा धनराशिमें हों और मकरस्थ शनि लग्नमें हो तो जातक राजा होता है। उच्च (मेष)-का रवि लग्नमें हो, चन्द्रमासहित शनि सप्तम भावमें हो, बृहस्पति अपनी राशि (धनु या मीन)-में हो तो जन्म लेनेवाला राजा होता है॥ १७०-१७१॥ शनि अथवा चन्द्रमा अपने उच्चराशिका होकर लग्नमें हों, षष्ठ भावमें सूर्य और बुध हो, शुक्र तुलामें, मङ्गल मेषमें और गुरु कर्कमें हो तो इन दोनों लग्नोंमें जन्म लेनेसे शिशु राजा होते हैं। उच्चस्थ[1] मङ्गल यदि चन्द्रमाके साथ लग्नमें हो तो भी जातक राजा होता है। चन्द्रमा वृष लग्नमें हो और सूर्य, गुरु तथा शनि ये क्रमसे ४, ७, १०वें स्थानमें हों तो जातक राजा होता है। मकर लग्नमें शनि हो और लग्नसे ३, ६, ९ एवं १२ वें भावमें क्रमशः चन्द्रमा, मङ्गल, बुध तथा बृहस्पति हों तो जन्म लेनेवाला बालक राजा होता है॥ १७२-१७३॥

गुरुसहित चन्द्रमा धनमें और मङ्गल मकरमें हों तथा बुध या शुक्र अपने उच्चमें स्थित होकर लग्नमें विद्यमान हों तो उन दोनों योगोंमें जन्म लेनेवाला शिशु राजा होता है। बृहस्पतिसहित कर्क लग्न हो, बुध, चन्द्रमा तथा शुक्र तीनों ११वें भावमें हों और सूर्य मेषमें हो तो जातक राजा होता है। चन्द्रमासहित मीन लग्न हो, सूर्य, शनि, मङ्गल—ये क्रमसे सिंह, कुम्भ और मकरमें हों तो उत्पन्न बालक राजा होता है। मङ्गलसहित मेष लग्न हो, बृहस्पति कर्कमें हो अथवा कर्कस्थ बृहस्पति लग्नमें हो तो जातक नरेश होता है। मङ्गल और शनि पञ्चम भावमें, गुरु, चन्द्रमा तथा शुक्र चतुर्थ भावमें और बुध कन्या लग्नमें हों तो जन्म लेनेवाला शिशु राजा होता है॥ १७४—१७६॥ मकर लग्नमें शनि हो तथा मेष, कर्क, सिंह—ये अपने-अपने स्वामीसे युक्त हों, शुक्र तुलामें और बुध मिथुनमें हों तो बालक यशस्वी राजा होता है॥ १७७॥ मुनीश्वर! इन बताये हुए योगोंमें जन्म लेनेवाला जिस किसीका पुत्र भी राजा होता है। तथा आगे जो योग बताये जायँगे, उनमें जन्म लेनेवाले राजकुमारको ही राजा

१. पहले उच्चस्थ मङ्गलादिके लग्नमें रहनेसे 'राजयोग' कहा गया है। इसलिये यहाँ भी जो चन्द्रमासहित मङ्गलको लग्नमें स्थित कहा गया है, उससे उनके उच्चस्थभावकी ही अनुवृत्ति समझनी चाहिये। अन्य मुनियोंने मकरस्थ मङ्गलके लग्नमें होनेसे 'राजयोग' कहा है।

समझना चाहिये। (यदि अन्य व्यक्ति इस योगमें उत्पन्न हुआ हो तो वह राजाके तुल्य होता है, राजा नहीं।) ॥ १७८ ॥

तीन या अधिक ग्रह बली होकर अपने-अपने उच्च या मूल त्रिकोणमें हों तो बालक राजा होता है। सिंहमें सूर्य, मेष लग्नमें चन्द्रमा, मकरमें मङ्गल, कुम्भमें शनि और धनुमें बृहस्पति हो तो उत्पन्न शिशु भूपाल होता है। मुने! शुक्र अपनी राशिमें होकर चतुर्थ स्थानमें स्थित हों, चन्द्रमा नवम भावमें रहकर शुभ ग्रहसे दृष्ट या युक्त हों तथा शेष ग्रह ३, १, ११वें भावमें विद्यमान हों तो जातक इस वसुधाका अधीश्वर होता है। बुध सबल होकर लग्नमें स्थित हों, बलवान् शुभग्रह नवम भावमें स्थित हों तथा शेष ग्रह ९, ५, ३, ६, १० और ११वें भावमें हो तो उत्पन्न बालक धर्मात्मा नरेश होता है। चन्द्रमा, शनि और बृहस्पति क्रमशः दसवें, ग्यारहवें तथा लग्नमें स्थित हों, बुध और मङ्गल द्वितीय भावमें तथा शुक्र और रवि चतुर्थ भावमें स्थित हों तो जातक भूपाल होता है। वृष लग्नमें चन्द्रमा, द्वितीयमें गुरु, ११ वेंमें शनि तथा शेष ग्रह भी स्थित हों तो बालक नरेश होता है ॥ १७९—१८३ ॥

चतुर्थ भावमें गुरु, १० वें भावमें रवि और चन्द्रमा, लग्नमें शनि और ११वें भावमें शेष ग्रह हों तो उत्पन्न शिशु राजा होता है। मङ्गल और शनि लग्नमें हों, चन्द्रमा, गुरु, शुक्र, रवि और बुध—ये क्रमसे ४, ७, ९, १० और ११ वेंमें हों तो ये सब ग्रह ऐसे बालकको जन्म देते हैं, जो भावी नरेश होता है। मुनीश्वर! ऊपर कहे हुए योगोंमें उत्पन्न मनुष्यके दशम भाव या लग्नमें जो ग्रह हो, उसकी दशा-अन्तर्दशा आनेपर उसे राज्यकी प्राप्ति होती है। इन दोनों स्थानोंमें ग्रह न हो तो जन्म-समयमें जो ग्रह बलवान् हो, उसकी दशामें राज्यलाभ समझना चाहिये तथा जो ग्रह जन्म-समयमें शत्रु-राशि या अपनी नीच राशिमें हो, उसकी राशिमें क्लेश, पीड़ा आदिकी प्राप्ति होती है ॥ १८४-१८५½ ॥

(नाभस[1] योग-कथन—) समीपवर्ती दो केन्द्रस्थानोंमें ही (रविसे शनिपर्यन्त) सब ग्रह हों तो 'गदा' नामक योग होता है। केवल लग्न और सप्तम दो ही स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'शकट' योग होता है। दशम और चतुर्थमें ही सब ग्रहोंकी स्थिति हो तो 'विहग' (पक्षी) योग होता है। ५, ९ और लग्न—इन तीन ही स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'शृङ्गाटक' योग होता है। इसी प्रकार यदि लग्न भिन्न स्थानसे त्रिकोण स्थानोंमें ही सब ग्रह हों तो 'हल' नामक योग होता है ॥ १८६-१८७ ॥ लग्न और सप्तममें सब शुभ ग्रह हों अथवा चतुर्थ-दशममें सब पापग्रह हों तो दोनों स्थितियोंमें 'वज्र' योग होता है। इसके विपरीत यदि लग्न, सप्तममें सब पापग्रह अथवा चतुर्थ, दशममें सब शुभग्रह हों तो 'यव' योग होता है। यदि चारों केन्द्रोंमें सब (शुभ और पाप)-ग्रह मिलकर बैठे हों तो 'कमल' योग होता है और केन्द्रस्थानसे बाहर (चारों पणफर अथवा चारों आपोक्लिमस्थानोंमें) ही सब ग्रह स्थित हों तो 'वापी' नामक योग होता है ॥१८८ ॥ लग्नसे लगातार ४ स्थान (१, २, ३, ४) में ही सब ग्रह मौजूद हों तो 'यूप' योग होता है। चतुर्थसे चार स्थान (४, ५, ६, ७)-में ही सब ग्रह स्थित हों तो 'शर' योग होता है। सप्तमसे ४ स्थान (७, ८, ९, १०)-में ही सब ग्रहोंकी स्थिति हो तो 'शक्ति' योग होता है और दशमसे

१. नाभस योग अनेक होते हैं। इन योगोंमें राहु और केतुको छोड़कर केवल सूर्य आदि सात ग्रह ही लिये गये हैं।

४ स्थान (१०, ११, १२, १)-में ही सब ग्रह मौजूद हों तो 'दण्ड' योग होता है ॥ १८९ ॥ लग्नसे क्रमशः सात स्थानों (१, २, ३, ४, ५, ६, ७)-में सब ग्रह हों तो 'नौका' योग, चतुर्थ भावसे आरम्भ करके लगातार सात स्थानोंमें सातों ग्रह हों तो 'कूट' योग, सप्तम भावसे आरम्भ करके लगातार सात स्थानोंमें सातों ग्रह विद्यमान हों तो 'छत्र' योग और दशमसे आरम्भ करके सात स्थानोंमें सब ग्रह स्थित हों तो 'चाप' नामक योग होता है। इसी प्रकार केन्द्रभिन्न स्थानसे आरम्भ करके लगातार सात स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'अर्धचन्द्र' नामक योग होता है ॥ १९० ॥

लग्नसे आरम्भ करके एक स्थानका अन्तर देकर क्रमशः (१, ३, ५, ७, ९ और ११ इन) ६ स्थानोंमें ही सब ग्रह स्थित हों तो 'चक्र' नामक योग होता है और द्वितीय भावसे लेकर एक स्थानका अन्तर देकर क्रमशः ६ स्थानों (२, ४, ६, ८, १०, १२)-में ही सब ग्रह मौजूद हों तो 'समुद्र' नामक योग होता है।

७ से १ स्थानतकमें सब ग्रहोंके रहनेपर क्रमशः वीणा आदि नामवाले ७ योग होते हैं। जैसे—७ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'वीणा', ६ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'दाम', ५ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'पाश', ४ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'क्षेत्र', ३ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'शूल', २ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'युग' और एक ही स्थानमें सब ग्रह हों तो 'गोल' नामक योग होता है। सब ग्रह चरराशिमें हों तो 'रज्जु', स्थिर राशिमें हों तो 'मुसल' और द्विस्वभावमें हों तो 'नल' नामक योग होता है। सब शुभग्रह केन्द्रस्थानोंमें हों तो 'माला' और सब पापग्रह केन्द्रस्थानोंमें हों तो 'सर्प' नामक योग होता है ॥ १९१—१९३ ॥

(इन योगोंमें जन्म लेनेवालोंके फल—)

रज्जुयोगमें जन्म लेनेवाला बालक ईर्ष्यावान् और राह चलने (यात्रा करने या घूमने-फिरने)-की इच्छावाला होता है। मुसलयोगमें उत्पन्न शिशु धन और मानसे युक्त होता है। नलयोगमें उत्पन्न पुरुष अङ्गहीन, स्थिरबुद्धि और धनी होता है। मालायोगमें पैदा हुआ मानव भोगी होता है तथा सर्पयोगमें उत्पन्न पुरुष दुःखसे पीड़ित होता है ॥ १९४ ॥ वीणायोगमें जिसका जन्म हुआ हो, वह मनुष्य सब कार्योंमें निपुण तथा सङ्गीत और नृत्यमें रुचि रखनेवाला होता है। दामयोगमें उत्पन्न मनुष्य दाता और धनाढ्य होता है। पाशयोगमें उत्पन्न धनवान् और सुशील होता है। केदार (क्षेत्र)-योगमें पैदा हुआ खेतीसे जीविका चलानेवाला होता है तथा शूलयोगमें उत्पन्न पुरुष शूरवीर, शस्त्रसे आघात न पानेवाला और अधन (धनहीन) होता है। युगयोगमें जन्म लेनेवाला पाखण्डी तथा गोलयोगमें उत्पन्न मनुष्य मलिन और निर्धन होता है ॥ १९५-१९६ ॥

चक्रयोगमें जन्म लेनेवाले पुरुषके चरणोंमें राजा लोग भी मस्तक झुकाते हैं। समुद्रयोगमें उत्पन्न पुरुष राजोचित भोगोंसे सम्पन्न होता है। अर्धचन्द्रमें पैदा हुआ बालक सुन्दर शरीरवाला तथा चापयोगमें उत्पन्न शिशु सुखी और शूरवीर होता है ॥ १९७ ॥ छत्रयोगमें उत्पन्न मनुष्य मित्रोंका उपकार करनेवाला तथा कूटयोगमें उत्पन्न मिथ्याभाषी और जेलका मालिक होता है। नौकायोगमें उत्पन्न पुरुष निश्चय ही यशस्वी और सुखी होता है। यूपयोगमें जन्म लेनेवाला मनुष्य दानी, यज्ञ करनेवाला और आत्मवान् (मनस्वी और जितात्मा) होता है। शरयोगमें उत्पन्न मनुष्य दूसरोंको कष्ट देनेवाला और गोपनीय स्थानोंका स्वामी होता है। शक्तियोगमें उत्पन्न नीच, आलसी और निर्धन होता है तथा दण्डयोगमें उत्पन्न पुरुष अपने प्रियजनोंसे वियोगका कष्ट भोगता है ॥ १९८-१९९ ॥

(चन्द्रयोगका कथन—) यदि चन्द्रमासे द्वितीयमें सूर्यको छोड़कर कोई भी अन्य ग्रह हो तो 'सुनफा' योग होता है। द्वादशमें हो तो 'अनफा' और दोनों (२,१२) स्थानोंमें ग्रह हों तो 'दुरुधरा' योग समझना चाहिये, अन्यथा (अर्थात् २, १२ में कोई ग्रह नहीं हों तो) 'केमद्रुम' योग होता है॥ २००॥

(उक्त योगोंका फल—) 'सुनफा' योगमें जन्म लेनेवाला पुरुष अपने भुजबलसे उपार्जित धनका भोगी, दाता, धनवान् और सुखी होता है। 'अनफा' योगमें उत्पन्न मनुष्य रोगहीन, सुशील, विख्यात और सुन्दर रूपवाला होता है। 'दुरुधरा' योगमें जन्म लेनेवाला भोगी, सुखी, धनवान्, दाता और विषयोंसे निःस्पृह होता है तथा 'केमद्रुम' योगमें उत्पन्न मनुष्य अत्यन्त मलिन, दुःखी, नीच और निर्धन होता है॥ २०१-२०२॥

(द्विग्रहयोगफल—) मुने! सूर्य यदि चन्द्रमासे युक्त हो तो भाँति-भाँतिके यन्त्र (मशीन) और पत्थरके कार्यमें कुशल बनाता है। मङ्गलसे युक्त हो तो वह बालकको नीच कर्ममें लगाता है, बुधसे युक्त हो तो यशस्वी, कार्यकुशल, विद्वान् एवं धनी बनाता है, गुरुसे युक्त हो तो दूसरोंके कार्य करनेवाला, शुक्रसे युक्त हो तो धातुओं (ताँबा आदि)-के कार्यमें निपुण तथा पात्र-निर्माण-कलाका जानकार बनाता है॥ २०३-२०४॥

चन्द्रमा यदि मङ्गलसे युक्त हो तो जातक कूट वस्तु (नकली सामान), स्त्री और आसव-अरिष्टादिका क्रय-विक्रय करनेवाला तथा माताका द्रोही होता है। बुधके साथ चन्द्रमा हो तो उत्पन्न शिशुको धनी, कार्यकुशल तथा विनय और कीर्तिसे युक्त करता है; गुरुसे युक्त हो तो चञ्चलबुद्धि, कुलमें मुख्य, पराक्रमी और अधिक धनवान् बनाता है। मुने! यदि शुक्रसे युक्त चन्द्रमा हो तो बालकको वस्त्रनिर्माण-कलाका ज्ञाता बनाता है और यदि शनिसे युक्त हो तो वह बालकको ऐसी स्त्रीके पेटसे उत्पन्न कराता है, जिसने पतिके मरनेपर या जीते-जी दूसरे पतिसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो॥ २०५-२०६॥

मङ्गल यदि बुधसे युक्त हो तो उत्पन्न हुआ बालक बाहुसे युद्ध करनेवाला (पहलवान) होता है। गुरुसे युक्त हो तो नगरका मालिक, शुक्रसे युक्त हो तो जूआ खेलनेवाला तथा गायोंको पालनेवाला और शनिसे युक्त हो तो मिथ्यावादी तथा जुआरी होता है॥ २०७॥

नारद! बुध यदि बृहस्पतिसे युक्त हो तो उत्पन्न शिशु नृत्य और सङ्गीतका प्रेमी होता है। शुक्रसे युक्त हो तो मायावी और शनिसे युक्त हो तो उत्पन्न मनुष्य लोभी और क्रूर होता है॥ २०८॥

गुरु यदि शुक्रसे युक्त हो तो मनुष्य विद्वान्, शनिसे युक्त हो तो रसोइया अथवा घड़ा बनानेवाला (कुम्हार) होता है। शुक्र यदि शनिके साथ हो तो मन्द दृष्टिवाला तथा स्त्रीके आश्रयसे धनोपार्जन करनेवाला होता है॥ २०९॥

(प्रव्रज्यायोग—) यदि जन्म-समयमें चार या चारसे अधिक ग्रह एक स्थानमें बलवान् हों तो मनुष्य गृहत्यागी संन्यासी होता है। उन ग्रहोंमें मङ्गल, बुध, गुरु, चन्द्रमा, शुक्र, शनि और सूर्य बली हों तो मनुष्य क्रमशः शाक्य (रक्त-वस्त्रधारी बौद्ध), आजीवक (दण्डी), भिक्षु, (यती), वृद्ध (वृद्धश्रावक), चरक (चक्रधारी), अह्नी (नग्न) और फलाहारी होता है। प्रव्रज्याकारक ग्रह यदि अन्य ग्रहसे पराजित हो तो मनुष्य उस प्रव्रज्यासे गिर जाता है। यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह सूर्य-सान्निध्यवश अस्त हो तो मनुष्य उसकी दीक्षा ही नहीं लेता और यदि वह ग्रह बलवान् हो तो उसकी 'प्रव्रज्या' में प्रीति रहती है। जन्मराशीशको

यदि अन्य ग्रह नहीं देखता हो और जन्मराशीश यदि शनिको देखता हो अथवा निर्बल जन्मराशीशको शनि देखता हो या शनिके द्रेष्काण अथवा मङ्गल या शनिके नवमांशमें चन्द्रमा हो और उसपर शनिकी दृष्टि हो तो इन योगोंमें विरक्त होकर गृहत्याग करनेवाला पुरुष संन्यास-धर्मकी दीक्षा लेता है॥ २१०—२१३॥

(अश्विन्यादि नक्षत्रोंमें जन्मका फल—) अश्विनी नक्षत्रमें जन्म हो तो बालक सुन्दर रूपवाला और भूषणप्रिय होता है। भरणीमें उत्पन्न शिशु सब कार्य करनेमें समर्थ और सत्यवक्ता होता है। कृत्तिकामें जन्म लेनेवाला अमिताहारी, परस्त्रीमें आसक्त, स्थिरबुद्धि और प्रियवक्ता होता है। रोहिणीमें पैदा हुआ मनुष्य धनवान्; मृगशिरामें भोगी; आर्द्रामें हिंसास्वभाववाला, शठ और अपराधी; पुनर्वसुमें जितेन्द्रिय, रोगी और सुशील तथा पुष्यमें कवि और सुखी होता है॥ २१४-२१५॥ आश्लेषा नक्षत्रमें उत्पन्न मनुष्य धूर्त, शठ, कृतघ्न, नीच और खान-पानका विचार न रखनेवाला होता है। मघामें भोगी, धनी तथा देवादिका भक्त होता है। पूर्वा फाल्गुनीमें दाता और प्रियवक्ता होता है। उत्तरा फाल्गुनीमें धनी और भोगी; हस्तमें चोरस्वभाव, ढीठ और निर्लज्ज तथा चित्रामें नाना प्रकारके वस्त्र धारण करनेवाला और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त होता है। स्वातीमें जन्म लेनेवाला मनुष्य धर्मात्मा और दयालु होता है। विशाखामें लोभी, चतुर और क्रोधी; अनुराधामें भ्रमणशील और विदेशवासी; ज्येष्ठामें धर्मात्मा और संतोषी तथा मूलमें धनीमानी और सुखी होता है। पूर्वाषाढ़में मानी, सुखी और हृष्ट; उत्तराषाढ़में विनयी और धर्मात्मा; श्रवणमें धनी, सुखी और लोकमें विख्यात तथा धनिष्ठामें दानी, शूरवीर और धनवान् होता है। शतभिषामें शत्रुको जीतनेवाला और व्यसनमें आसक्त; पूर्वभाद्रपदमें स्त्रीके वशीभूत और धनवान्; उत्तर-भाद्रपदमें वक्ता, सुखी और सुन्दर तथा रेवतीमें जन्म लेनेवाला शूरवीर, धनवान् और पवित्र हृदयवाला होता है॥ २१६—२२०॥

(मेषादि चन्द्रराशिमें जन्मका फल—) मेषराशिमें जन्म लेनेवाला कामी, शूरवीर और कृतज्ञ; वृषमें सुन्दर, दानी और क्षमावान्; मिथुनमें स्त्रीभोगासक्त, द्यूतविद्याको जाननेवाला तथा कर्कराशिमें स्त्रीके वशीभूत और छोटे शरीरवाला होता है। सिंहराशिमें स्त्रीद्वेषी, क्रोधी, मानी, पराक्रमी, स्थिरबुद्धि और सुखी होता है। कन्याराशिमें धर्मात्मा, कोमल शरीरवाला तथा सुबुद्धि होता है। तुलाराशिमें उत्पन्न पुरुष पण्डित, ऊँचे कदवाला और धनवान् होता है। वृश्चिकराशिमें जन्म लेनेवाला रोगी, लोकमें पूज्य और क्षत (आघात)-युक्त होता है। धनुमें जन्म लेनेवाला कवि, शिल्पज्ञ और धनवान्; मकरमें कार्य करनेमें अनुत्साही, व्यर्थ घूमनेवाला और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त; कुम्भमें परस्त्री और परधन हरण करनेके स्वभाववाला तथा मीनमें धनु-सदृश (कवि और शिल्पज्ञ) होता है॥ २२१—२२३॥

यदि चन्द्रमाकी राशि बली हो तथा राशिका स्वामी और चन्द्रमा दोनों बलवान् हों तो ऊपर कहे हुए फल पूर्णरूपसे संघटित होते हैं—ऐसा समझना चाहिये। अन्यथा विपरीत फल (अर्थात् निर्बल हो तो फलका अभाव या बलके अनुसार फलमें भी तारतम्य) जानना चाहिये। इसी प्रकार अन्य ग्रहोंकी राशिके अनुसार फलका विचार करना चाहिये॥ २२४॥

(सूर्यादि ग्रह-राशि-फल—) सूर्य यदि मेष-राशिमें हो तो जातक लोकमें विख्यात होता है। वृषमें हो तो स्त्रीका द्वेषी, मिथुनमें हो तो धनवान्, कर्कमें हो तो उग्र स्वभाववाला, सिंहमें हो तो मूर्ख, कन्यामें हो तो कवि, तुलामें हो तो कलवार,

वृश्चिकमें हो तो धनवान्, धनुमें हो तो लोकपूज्य, मकरमें हो तो लोभी, कुम्भमें हो तो निर्धन और मीनमें हो तो जातक सुखसे रहित होता है॥ २२५॥

मङ्गल यदि सिंहमें हो तो जातक निर्धन, कर्कमें हो तो धनवान्, स्वराशि (मेष, वृश्चिक)-में हो तो भ्रमणशील, बुधराशि (कन्या-मिथुन)-में हो तो कृतज्ञ, गुरुराशि (धनु-मीन)-में हो तो विख्यात, शुक्रराशि (वृष-तुला)-में हो तो परस्त्रीमें आसक्त, मकरमें हो तो बहुत पुत्र और धनवाला तथा कुम्भमें हो तो दु:खी, दुष्ट और मिथ्यास्वभाववाला होता है॥ २२६ १/२॥

बुध यदि सूर्यकी राशि (सिंह)-में हो तो स्त्रीका द्वेषी, चन्द्रराशि (कर्क)-में हो तो अपने परिजनोंका द्वेषी, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में हो तो निर्धन और सत्त्वहीन, अपनी राशि (मिथुन-कन्या)-में हो तो बुद्धिमान् और धनवान्, गुरुकी राशि (धनु-मीन)-में हो तो मान और धनसे युक्त, शुक्रकी राशि (वृष-तुला)-में हो तो पुत्र और स्त्रीसे सम्पन्न तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)-में हो तो ऋणी होता है॥ २२७ १/२॥

गुरु यदि सिंहमें हो तो सेनापति, कर्कमें हो तो स्त्री-पुत्रादिसे युक्त एवं धनी, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में हो तो धनी और क्षमाशील, बुधकी राशि (मिथुन-कन्या)-में हो तो वस्त्रादि विभवसे युक्त, अपनी राशि (धनु-मीन)-में हो तो मण्डल (जिला)-का मालिक, शुक्रकी राशि (वृष-तुला)-में हो तो धनी और सुखी तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)-में हो तो मकरमें ऋणवान् और कुम्भमें धनवान् होता है॥ २२८ १/२॥

शुक्र सिंहमें हो तो जातक स्त्रीद्वारा धन-लाभ करनेवाला, कर्कमें हो तो घमण्ड और शोकसे युक्त, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में हो तो बन्धुओंसे द्वेष रखनेवाला, बुधकी राशि (मिथुन-कर्क)-में हो तो धनी और पापस्वभाव, गुरुकी राशि (धनु-मीन)-में हो तो धनी और पण्डित, अपनी राशि (वृष-तुला)-में हो तो धनवान् और क्षमावान् तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)-में हो तो स्त्रीसे पराजित होता है॥ २२९ १/२॥

शनि यदि सिंहमें हो तो पुत्र और धनसे रहित, कर्कमें हो तो धन और संतानसे हीन, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में हो तो निर्बुद्धि और मित्रहीन, बुधकी राशि (मिथुन-कन्या)-में हो तो प्रधान रक्षक, गुरुकी राशि (धनु-मीन)-में हो तो सुपुत्र, उत्तम स्त्री और धनसे युक्त, शुक्रकी राशि (वृष-तुला)-में हो तो राजा और अपनी राशि (मकर-कुम्भ)-में हो तो जातक ग्रामका अधिपति होता है॥ २३० १/२॥

(चन्द्रपर दृष्टिका फल—) मेषस्थित चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमसे राजा, पण्डित, गुणवान्, चोर-स्वभाव तथा निर्धन[1] होता है॥ २३१॥

वृषस्थ चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो क्रमसे निर्धन, चोर-स्वभाव, राजा, पण्डित तथा प्रेष्य (भृत्य) होता है। मिथुनराशिमें स्थित चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमश: धातुओंसे आजीविका करनेवाला, राजा, पण्डित, निर्भय, वस्त्र बनानेवाला तथा धनहीन होता है। अपनी राशि (कर्क)-में स्थित चन्द्रमापर यदि मङ्गलादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जन्म लेनेवाला शिशु क्रमश: योद्धा, कवि, पण्डित, धनी, धातुसे जीविका करनेवाला तथा नेत्ररोगी होता है। सिंहराशिस्थ

१. मङ्गलकी दृष्टिसे भूप, बुधकी दृष्टिसे ज्ञ (पण्डित), गुरुकी दृष्टिसे गुणी, शुक्रकी दृष्टिसे चोर-स्वभाव तथा शनिकी दृष्टिसे अस्व (निर्धन) कहा गया है। सूर्यकी दृष्टिका फल अनुक्त होनेके कारण उसे शनिके ही तुल्य समझना चाहिये।

चन्द्रमापर यदि बुधादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमशः ज्यौतिषी, धनवान्, लोकमें पूज्य, नाई, राजा तथा नरेश होता है। कन्या-राशिस्थित चन्द्रमापर बुध आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो शुभग्रहों (बुध, गुरु, शुक्र)-की दृष्टि होनेपर जातक क्रमशः राजा, सेनापति एवं निपुण होता है और अशुभ (शनि, मङ्गल, रवि)-की दृष्टि होनेपर स्त्रीके आश्रयसे जीविका करनेवाला होता है। तुला-राशिस्थ चन्द्रमापर यदि बुध आदि (बुध, गुरु, शुक्र)-की दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमसे भूपति, सोनार और व्यापारी होता है तथा शेषग्रह (शनि, रवि और मङ्गल)-की दृष्टि होनेपर वह हिंसाके स्वभाववाला होता है॥ २३२—२३४॥ वृश्चिक-राशिस्थ चन्द्रमापर बुध आदि ग्रहोंकी दृष्टि होनेपर क्रमसे जातक दो संतानका पिता, मृदुस्वभाव, वस्त्रादिकी रँगाई करनेवाला, अङ्गहीन, निर्धन और भूमिपति होता है। धन-राशिस्थ चन्द्रमापर बुध आदि शुभग्रहोंकी दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः अपने कुल, पृथ्वी तथा जनसमूहका पालक होता है। शेष ग्रहों (शनि, रवि तथा मङ्गल)-की दृष्टि हो तो जातक दम्भी और शठ होता है॥ २३५॥ मकर-राशिस्थित चन्द्रमापर बुध आदिकी दृष्टि हो तो वह क्रमशः भूमिपति, पण्डित, धनी, लोकमें पूज्य, भूपति तथा परस्त्रीमें आसक्त होता है। कुम्भ-राशिस्थ चन्द्रमापर भी उक्त ग्रहोंकी दृष्टि होनेपर इसी प्रकार (मकर-राशिस्थके समान) फल समझना चाहिये। मीन-राशिस्थ चन्द्रमापर शुभग्रहों (बुध, गुरु और शुक्र)-की दृष्टि हो तो जातक क्रमशः हास्यप्रिय, राजा और पण्डित होता है। (तथा शेष ग्रहों (पापग्रहों)-की दृष्टि होनेपर अनिष्ट फल समझना चाहिये।)॥ २३६॥ होरा (लग्न) के स्वामीकी होरामें स्थित चन्द्रमापर उसी होरामें स्थित ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह शुभप्रद होता है। जिस तृतीयांश (द्रेष्काण)-में चन्द्रमा हो उसके स्वामीसे तथा मित्र-राशिस्थ ग्रहोंसे युक्त या दृष्ट चन्द्रमा शुभप्रद होता है। प्रत्येक राशिमें स्थित चन्द्रमापर ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे जो-जो फल कहे गये हैं, उन राशियोंके द्वादशांशमें स्थित चन्द्रमापर भी उन-उन ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे वे ही फल प्राप्त होते हैं।

अब नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी दृष्टिसे प्राप्त होनेवाले फलोंका वर्णन करता हूँ। मङ्गलके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमशः[1] ग्राम या नगरका रक्षक, हिंसाके स्वभाववाला, युद्धमें निपुण, भूपति, धनवान् तथा झगड़ालू होता है। शुक्रके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः मूर्ख, परस्त्रीमें आसक्त, सुखी, काव्यकर्ता, सुखी तथा परस्त्रीमें आसक्ति रखनेवाला होता है। बुधके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः नर्तक, चोरस्वभाव, पण्डित, मन्त्री, सङ्गीतज्ञ तथा शिल्पकार होता है। अपने (कर्क) नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह छोटे शरीरवाला, धनवान्, तपस्वी, लोभी, अपनी स्त्रीकी कमाईपर पलनेवाला तथा कर्तव्यपरायण होता है। सूर्यके नवमांश (सिंह)-में स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः क्रोधी, राजमन्त्री, निधिपति या मन्त्री, राजा, हिंसाके स्वभाववाला तथा पुत्रहीन होता है। गुरुके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः हास्यप्रिय,

१. सूर्यादि क्रममें सूर्य, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इस प्रकार छः ग्रह तथा बुधादिमें बुध, गुरु, शुक्र, शनि, रवि, मङ्गल इस प्रकार छः ग्रह समझने चाहिये।

रणमें कुशल, बलवान्, मन्त्री, धर्मात्मा तथा धर्मशील होता है। शनिके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी हो तो जातक क्रमशः अल्पसंतति, दु:खी, अभिमानी, अपने कार्यमें तत्पर, दुष्ट स्त्रीका पति तथा कृपण होता है। जिस प्रकार मेषादि राशि या उसके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंके दृष्टि-फल कहे गये हैं, इसी प्रकार मेषादि राशि या नवमांशमें स्थित सूर्यपर चन्द्रादि ग्रहोंकी दृष्टिसे भी प्राप्त होनेवाले फल समझने चाहिये॥ २३७—२४३॥

(**फलोंमें न्यूनाधिक्य—**) चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवमांशमें हो तो पूर्वोक्त शुभ फल पूर्ण, अपने नवमांशमें हो तो मध्यम (आधा) और अन्य नवमांशमें हो तो अल्प समझना चाहिये। (इसीसे यह भी सिद्ध हो जाता है कि जो अशुभ फल कहे गये हैं, वे भी विपरीत दशामें विपरीत होते हैं अर्थात् वर्गोत्तममें चन्द्रमा हो तो अशुभ फल अल्प, अपने नवमांशमें हो तो आधा और अन्य नवमांशमें हो तो पूर्ण होते हैं।) राशि और नवमांशके फलोंमें भिन्नता होनेपर यदि नवमांशका स्वामी बली हो तो वह राशिफलको रोककर ही फल देता है॥ २४४½॥

(**द्वादश भावगत ग्रहोंके फल—**) सूर्य यदि लग्नमें हो तो शिशु शूरवीर, दीर्घसूत्री (देरसे काम करनेके स्वभाववाला), दुर्बल दृष्टिवाला और निर्दय होता है। यदि मेषमें रहकर लग्नमें हो तो धनवान् और नेत्ररोगी होता है और सिंह लग्नमें हो तो राज्यन्ध (रतौंधीवाला), तुलालग्नमें हो तो अंधा और निर्धन होता है। कर्क लग्नमें हो तो जातककी आँखमें फूली होती है।

द्वितीय भावमें सूर्य हो तो बालक बहुत धनी, राजदण्ड पानेवाला और मुखका रोगी होता है। तृतीय स्थानमें हो तो पण्डित और पराक्रमी होता है। चतुर्थ स्थानमें सूर्य हो तो सुखहीन और पीड़ायुक्त होता है। सूर्य पञ्चम भावमें हो तो मनुष्य धनहीन और पुत्रहीन होता है। षष्ठ भावमें हो तो बलवान् और शत्रुओंको जीतनेवाला होता है। सप्तम भावमें स्थित हो तो मनुष्य अपनी स्त्रीसे पराजित होता है। अष्टम भावमें हो तो उसके पुत्र थोड़े होते हैं और उसे दिखायी भी कम ही देता है। नवम भावमें हो तो जातक पुत्रवान्, धनवान् और सुखी होता है। दशम भावमें हो तो विद्वान् और पराक्रमी तथा एकादश भावमें हो तो अधिक धनवान् और मानी होता है। यदि द्वादश भावमें सूर्य हो तो उत्पन्न बालक नीच और धनहीन होता है॥ २४५—२४९॥

चन्द्रमा यदि मेष लग्नमें हो तो जातक गूँगा, बहिरा, अंधा और दूसरोंका दास होता है। वृष लग्नमें हो तो वह धनी होता है। द्वितीय भावमें हो तो विद्वान् और धनवान्, तृतीय भावमें हो तो हिंसाके स्वभाववाला, चतुर्थ स्थानमें हो तो उस भावके लिये कहे हुए फलों (सुख, गृहादि)-से सम्पन्न, पञ्चम भावमें हो तो कन्यारूप संतानवाला और आलसी होता है। छठे भावमें हो तो बालक मन्दाग्निका रोगी होता है, उसे अभीष्ट भोग बहुत कम मिलते हैं तथा वह उग्र स्वभावका होता है। सप्तम भावमें हो तो जातक ईर्ष्यावान् और अत्यन्त कामी होता है। अष्टम भावमें हो तो रोगसे पीड़ित, नवम भावमें हो तो मित्र और धनसे युक्त, दशम भावमें हो तो धर्मात्मा, बुद्धिमान् और धनवान् होता है। एकादश भावमें हो तो उत्पन्न शिशु विख्यात, बुद्धिमान् और धनवान् होता है तथा द्वादश भावमें हो तो जातक क्षुद्र और अङ्गहीन होता है॥ २५०—२५२½॥

मङ्गल लग्नमें हो तो उत्पन्न शिशु क्षत शरीरवाला

होता है। द्वितीय भावमें हो तो वह कदन्न[1] भोजी तथा नवम भावमें हो तो पापस्वभाव होता है। इनसे भिन्न (३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२) स्थानोंमें यदि मङ्गल हो तो उसके फल सूर्यके समान ही होते हैं॥ २५३½ ॥

बुध लग्नमें हो तो जातक पण्डित होता है। द्वितीय भावमें हो तो शिशु धनवान्, तृतीय भावमें हो तो दुष्ट स्वभाव, चतुर्थ भावमें हो तो पण्डित, पञ्चम भावमें हो तो राजमन्त्री, षष्ठ भावमें हो तो शत्रुहीन, सप्तममें हो तो धर्मज्ञाता, अष्टम भावमें हो तो विख्यात गुणवाला और शेष (९, १०, ११, १२) भावोंमें हो तो जैसे सूर्यके फल कहे गये हैं, वैसे ही उसके फल भी समझने चाहिये॥ २५४½ ॥

बृहस्पति लग्नमें हो तो जातक विद्वान्, द्वितीय भावमें हो तो प्रियभाषी, तृतीय भावमें हो तो कृपण, चतुर्थमें हो तो सुखी, पञ्चममें हो तो विज्ञ, षष्ठममें हो तो शत्रुरहित, सप्तममें हो तो सम्पत्तियुक्त, अष्टममें हो तो नीच स्वभाववाला, नवममें हो तो तपस्वी, दशममें हो तो धनवान्, एकादशमें हो तो नित्य लाभ करनेवाला और द्वादशमें हो तो दुष्ट हृदयवाला होता है॥ २५५ ½ ॥ शुक्र लग्नमें हो तो जातक कामी और सुखी, सप्तम भावमें हो तो कामी तथा पञ्चम भावमें हो तो सुखी होता है और अन्य भावों (२, ३, ४, ६, ८, ९, १०, ११, १२)- में हो तो वह उत्पन्न बालकको बृहस्पतिके समान ही फल देता है॥ २५६½ ॥

शनि लग्नमें हो तो जातक निर्धन, रोगी, कामातुर, मलिन, बाल्यावस्थामें रोगी और आलसी होता है। किंतु यदि अपनी राशि (मकर-कुम्भ) या अपने उच्च (तुला)में हो तो जातक भूपति, ग्रामपति, पण्डित और सुन्दर शरीरवाला होता है। अन्य (द्वितीय आदि) भावोंमें सूर्यके समान ही शनिके भी फल होते हैं॥ २५७-२५८ ॥

(**फलमें न्यूनाधिकत्व—**) शुभग्रह यदि अपने उच्चमें हों तो पूर्णरूपसे उपर्युक्त फल प्राप्त होता है। यदि अपने मूल त्रिकोणमें हो तो तीन चरण, अपनी राशिमें हो तो आधा, मित्रके गृहमें हो तो एक चरण तथा शत्रुकी राशिमें हो तो उससे भी कम फल प्राप्त होता है और नीचमें या अस्त हो तो कुछ भी फल नहीं होता है। (इस प्रकार शुभ ग्रहके फल कहनेसे सिद्ध होता है कि पापग्रहका फल इसके विपरीत होता है। अर्थात् पापग्रह नीचमें या अस्त हो तो पूर्ण फल, शत्रु-राशिमें तीन चरण, मित्र-राशिमें आधा, अपनी राशिमें एक चरण, अपने मूल त्रिकोणमें उससे भी अल्प और अपने उच्चमें हो तो अपना कुछ भी फल नहीं देता है)॥ २५९ ½ ॥

(**स्वराशिस्थ ग्रहफल—**) यदि अपनी राशिमें एक ग्रह हो तो जातक अपने पिताके सदृश धनवान् और यशस्वी होता है। दो ग्रह अपनी राशिमें हों तो बालक अपने कुलमें श्रेष्ठ, तीन ग्रह हों तो बन्धुओंमें माननीय, चार ग्रह हों तो विशेष धनवान्, पाँच ग्रह हों तो सुखी, छः ग्रह हों तो भोगी और यदि सातों ग्रह अपनी राशिमें स्थित हों तो जातक राजा होता है॥ २६० ½ ॥

यदि अपने मित्रकी राशिमें एक ग्रह हो तो जातक दूसरेके धनसे पालित, दो ग्रह हों तो मित्रोंके द्वारा पोषित और तीन ग्रह हों तो वह अपने बन्धुओंके द्वारा पालित होता है। यदि चार ग्रह मित्रराशिमें हों तो बालक अपने बाहुबलसे जीवननिर्वाह करता है। पाँच ग्रह हों तो बहुत लोगोंका पालन करनेवाला होता है। छः ग्रह हों तो सेनापति और सातों ग्रह मित्रराशिमें हों तो जातक राजा होता है॥ २६१ ½ ॥

पापग्रह यदि विषम राशि और सूर्यकी होरा

१. कोदो, मडुआ आदि निम्नश्रेणीके अन्नको कदन्न (कु+अन्न) कहते हैं।

(राश्यर्ध)-में हों तो जातक लोकमें विख्यात, महान् उद्योगी, अत्यन्त तेजस्वी, बुद्धिमान्, धनवान् और बलवान् होता है। तथा शुभग्रह यदि समराशि और चन्द्रमाकी होरामें हों तो जातक कान्तिमान्, मृदु (कोमल) शरीरवाला, भाग्यवान्, भोगी और बुद्धिमान् होता है। यदि पापग्रह समराशि और सूर्यकी होरामें हों तो पूर्वोक्त फल मध्यम (आधा) होता है। एवं शुभ यदि विषमराशि और सूर्यकी होरामें हों तो ऊपर कहे हुए फल नहीं प्राप्त होते हैं॥ २६२—२६४॥

चन्द्रमा यदि अपने या अपने मित्रके द्रेष्काणमें हो तो जातक सुन्दर स्वरूपवाला और गुणवान् होता है। अन्य द्रेष्काणमें हो तो उस द्रेष्काणकी राशि और द्रेष्काणपतिके सदृश ही फल प्राप्त होता है। (सारांश यह है कि उस द्रेष्काणका स्वामी यदि चन्द्रमाका मित्र हो तो तीन चरण फल मिलता है, सम हो तो दो चरण (आधा) फल मिलता है तथा शत्रु हो तो एक चरण फल होता है।) यदि सर्प द्रेष्काण[1], शस्त्र द्रेष्काण, चतुष्पद द्रेष्काण और पक्षी द्रेष्काणमें चन्द्रमा हो तो जातक क्रमशः उग्र-स्वभाव, हिंसाके स्वभाववाला, गुरुकी शय्यापर बैठनेवाला और भ्रमणशील होता है॥ २६५-२६६ $\frac{1}{2}$ ॥

(लग्ननवमांश राशिफल—) लग्नमें मेषका नवमांश हो तो जातक चोरस्वभाव, वृष-नवमांश हो तो भोगी, मिथुन-नवमांश हो तो धनी, कर्क-नवमांश हो तो बुद्धिमान्, सिंह-नवमांश हो तो राजा, कन्या-नवमांश हो तो नपुंसक, तुला-नवमांश हो तो शत्रुको जीतनेवाला, वृश्चिक-नवमांश हो तो बेगारी करनेवाला, धनुका नवमांश हो तो दासकर्म करनेवाला, मकर-नवमांश हो तो पापस्वभाव, कुम्भ-नवमांश हो तो हिंसाके स्वभाववाला और मीन-नवमांश लग्नमें हो तो बुद्धिहीन होता है। किंतु यदि वर्गोत्तम नवमांश (अर्थात् जो राशि हो उसीका नवमांश भी) हो तो वह जातक इन (चोरस्वभाव आदि सब)-का शासक होता है। (जैसे मेष-नवमांशमें उत्पन्न मनुष्य चोरस्वभाव होता है, किंतु यदि मेष राशिमें मेषका नवमांश हो तो वह चोरस्वभाववालोंका शासक होता है, इत्यादि।) इसी प्रकार मेषादि राशियोंके द्वादशांशमें मेषादि राशियोंके समान फल प्राप्त होते हैं॥ २६७-२६८॥

(मङ्गल आदि ग्रहोंके त्रिंशांशफल—) मङ्गल अपने त्रिंशांशमें हो तो जातक स्त्री, बल, आभूषण तथा परिजनादिसे सम्पन्न, साहसी और तेजस्वी होता है। शनि अपने त्रिंशांशमें हो तो रोगी, स्त्रीके प्रति कुटिल, परस्त्रीमें आसक्त, दुःखी, वस्त्रादि आवश्यक सामग्रीसे सम्पन्न, किंतु मलिन होता है। गुरु अपने त्रिंशांशमें हो तो जातक सुखी, बुद्धिमान्, धनी, कीर्तिमान्, तेजस्वी, लोकमें मान्य, रोगहीन, उद्यमी और भोगी होता है। बुध अपने त्रिंशांशमें हो तो मनुष्य मेधावी, कलाकुशल, काव्य और शिल्पविद्याका ज्ञाता, विवादी, कपटी, शास्त्रतत्त्वज्ञ तथा साहसी होता है। शुक्र अपने त्रिंशांशमें हो तो जातक अधिक संतान, सुख, आरोग्य, सौन्दर्य और धनसे युक्त, मनोहर शरीरवाला तथा अजितेन्द्रिय होता है॥ २६९—२७३॥

(सूर्य-चन्द्र-फल—) मङ्गलके त्रिंशांशमें सूर्य हो तो जातक शूरवीर, चन्द्रमा हो तो दीर्घसूत्री, बुधके त्रिंशांशमें सूर्य हो तो जातक कुटिल और चन्द्रमा हो तो हिंसाके स्वभाववाला होता है। गुरुके त्रिंशांशमें रवि हो तो गुणी और चन्द्रमा हो तो भी गुणी होता है। शुक्रके त्रिंशांशमें सूर्य हो तो बालक सुखी और चन्द्रमा हो तो विद्वान् होता है। शनिके त्रिंशांशमें रवि हो तो सुन्दर शरीरवाला

१. द्रेष्काणनिरूपणमें देखिये।

तथा चन्द्रमा हो तो सर्वजनप्रिय होता है॥ २७४॥

(कारक ग्रह—) अपने-अपने मूल त्रिकोण, स्वराशि या स्वोच्चमें स्थित ग्रह यदि केन्द्रमें हों तो वे सब परस्पर कारक (शुभफलदायक) होते हैं, उनमें दशम स्थानमें रहनेवाला सबसे बढ़कर कारक होता है॥ २७५॥

(शुभजन्मलक्षण—) लग्न या चन्द्रमा वर्गोत्तम नवमांशमें हो या वेशि (सूर्यसे द्वितीय) स्थानमें शुभग्रह हो अथवा केन्द्रोंमें कारक ग्रह हों तो जन्म शुभप्रद होता है। अर्थात् इस स्थितिमें जन्म लेनेवाला बालक सुखी और यशस्वी होता है॥ २७६॥ गुरु, जन्मराशि और जन्म-लग्नेश ये सभी या इनमेंसे एक भी केन्द्रमें हो तो जीवनके मध्यभागमें सुखप्रद होते हैं।[1] तथा पृष्ठोदय राशिमें रहनेवाला ग्रह वयस्के अन्तमें, द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह वयस्के मध्यमें और शीर्षोदय राशिस्थ ग्रह पूर्ववयस्में अपने-अपने फल देते हैं॥ २७७॥

(ग्रहगोचरफलसमय—) सूर्य और मङ्गल ये दोनों राशिमें प्रवेश करते ही अपने राशि-सम्बन्धी (गोचर) फल देते हैं। शुक्र और बृहस्पति राशिके मध्यमें जानेपर और चन्द्रमा तथा शनि ये दोनों राशिके अन्तिम तृतीयांशमें पहुँचनेपर अपने शुभ या अशुभ गोचर फल देते हैं। तथा बुध सर्वदा (आदि, मध्य, अन्तमें) अपने शुभाशुभ फलको देता है॥ २७८॥

(शुभाशुभ योग—) लग्न या चन्द्रमासे पञ्चम और सप्तम भाव शुभग्रह और अपने स्वामीसे युक्त या दृष्ट हों तो जातकको उन दोनों (पुत्र और स्त्री)-का सुख सुलभ होता है, अन्यथा नहीं। तथा कन्या लग्नमें रवि और मीन लग्नमें शनि हो तो ये दोनों स्त्रीका नाश करनेवाले होते हैं। इसी प्रकार पञ्चम भाव (मेष-वृश्चिकसे अतिरिक्त राशि)-में मङ्गल हो तो पुत्रका नाश करनेवाला होता है। यदि शुक्रसे केन्द्र (१, ४, ७, १०)-में पापग्रह हों अथवा दो पापग्रहोंके बीचमें शुक्र हों, उनपर शुभग्रहका योग या दृष्टि नहीं हो तो उस जातककी स्त्रीका मरण अग्निसे या गिरनेसे होता है। लग्नसे १२, ६ भावोंमें चन्द्रमा और सूर्य हों तो वह स्त्रीसहित[2] एक नेत्रवाले (काण) पुरुषको जन्म देता है। ऐसा मुनियोंने कहा है। लग्नसे सप्तम या नवम, पञ्चममें शुक्र और सूर्य दोनों हों तो उस जातककी स्त्री विकल (अङ्गहीना) होती है॥ २७९—२८२॥

शनि लग्नमें और शुक्र सप्तम भावमें राशिसन्धि (कर्क, वृश्चिक, मीनके अन्तिमांश) में हों तो वह जातक वन्ध्या स्त्रीका पति होता है। यदि पञ्चम भाव शुभग्रहसे युक्त या दृष्ट न हो, लग्नसे १२, ७में और लग्नमें यदि पापग्रह हों तथा पञ्चम भावमें क्षीण चन्द्रमा स्थित हों तो वह पुरुष पुत्र और स्त्रीसे रहित होता है। शनिके वर्ग (राशि-नवांश)-में शुक्र सप्तम भावमें हो और शनिसे दृष्ट हो तो वह जातक परस्त्रीमें आसक्त होता है। यदि वे दोनों (शनि और शुक्र) चन्द्रमाके साथ हों तो वह स्वयं परस्त्रीमें आसक्त और उसकी पत्नी परपुरुषमें आसक्त होती है॥ २८३-२८४ $\frac{१}{२}$ ॥

शुक्र और चन्द्रमा दोनों सप्तम भावमें हों तो जातक स्त्रीहीन अथवा पुत्रहीन होता है। पुरुष और स्त्री ग्रह सप्तम भावमें हों और उनपर शुभग्रहोंकी दृष्टि हो तो पति-पत्नी दोनों परिणताङ्ग (परमायुर्दाय भोगकर वृद्धावस्थातक जीनेवाले)

१. आशय यह है कि पूर्वकेन्द्र (१ लग्न) में हों तो वयस्के आरम्भमें, मध्यकेन्द्र (४, १०)-में हों तो मध्य वयस् (युवावस्था)में, यदि पश्चिम केन्द्र (७)में हों तो अंतिम वयस्में सुखप्रद होते हैं। इससे सिद्ध है कि जिसके जन्म-समयमें तीन केन्द्रोंमें शुभग्रह हों, वह जीवनपर्यन्त सुखी रहता है।

२. सारांश यह कि पुरुष तो काना होता ही है, उसे स्त्री भी कानी ही मिलती है।

होते हैं। दशम, सप्तम और चतुर्थ भावमें क्रमशः चन्द्रमा, शुक्र और पापग्रह हों तो जातक वंशका नाशक होता है। अर्थात् उसका वंश नष्ट हो जाता है। बुध जिस द्रेष्काणमें हो उसपर यदि केन्द्र-स्थित शनिकी दृष्टि हो तो जातक शिल्पकलामें कुशल होता है। शुक्र यदि शनिके नवमांशमें होकर द्वादश भावमें स्थित हो तो जातक दासीका पुत्र होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों सप्तम भावमें रहकर शनिसे दृष्ट हों तो जातक नीच स्वभाववाला होता है। शुक्र और मङ्गल दोनों सप्तम भावमें स्थित हों और उनपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो जातक वातरोगी होता है। कर्क या वृश्चिकके नवमांशमें स्थित चन्द्रमा यदि पापग्रहसे युक्त हो तो बालक गुप्त रोगसे ग्रस्त होता है। चन्द्रमा यदि पापग्रहोंके बीचमें रहकर लग्नमें स्थित हो तो उत्पन्न शिशु कुष्ठरोगी होता है। चन्द्रमा दशम भावमें, मङ्गल सप्तम भावमें और शनि यदि वेशि (सूर्यसे द्वितीय) स्थानमें हो तो जातक विकल (अङ्गहीन) होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों परस्पर नवमांशमें हों तो बालक शूलरोगी होता है। यदि दोनों किसी एक ही स्थानमें हों तो कृश (क्षीणशरीर) होता है। यदि सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल और शनि—ये चारों क्रमशः ८, ६, २, १२ भावोंमें स्थित हों तो इनमें जो बली हो, उस ग्रहके दोष (कफ, पित्त और वात-सम्बन्धी विकार)-से जातक नेत्रहीन होता है। यदि ९, ११, ३, ५—इन भावोंमें पापग्रह हों तथा उनपर शुभग्रहकी दृष्टि नहीं हो तो वे उत्पन्न शिशुके लिये कर्णरोग उत्पन्न करनेवाले होते हैं। सप्तम भावमें स्थित पापग्रह यदि शुभग्रहसे दृष्ट न हों तो वे दन्तरोग उत्पन्न करते हैं। लग्नमें गुरु और सप्तम भावमें शनि हो तो जातक वातरोगसे पीड़ित होता है। ४ या ७ भावमें मङ्गल और लग्नमें बृहस्पति हो अथवा शनि लग्नमें और मङ्गल ९, ५, ७ भावमें हो अथवा बुधसहित चन्द्रमा १२ भावमें हो तो जातक उन्मादरोगसे पीड़ित होता है॥ २८५—२९३ $\frac{1}{2}$ ॥

यदि ५, ९, २ और १२ भावोंमें पापग्रह हों तो उस जातकको बन्धन प्राप्त होता है (उसे जेलका कष्ट भोगना पड़ता है)। लग्नमें जैसी राशि हो उसके अनुकूल ही बन्धन समझना चाहिये। (जैसे चतुष्पद राशि लग्न हो तो रस्सीसे बँधकर, द्विपदराशि लग्न हो तो बेड़ीसे बँधकर तथा जलचर राशि लग्न हो तो बिना बन्धनके ही वह जेलमें रहता है।) यदि सर्प, शृङ्खला, पाशसंज्ञक द्रेष्काण लग्नमें हों तथा उनपर बली पापग्रहकी दृष्टि हो तो भी पूर्वोक्त प्रकारसे बन्धन प्राप्त होता है। मण्डल (परिवेष)-युक्त चन्द्रमा यदि शनिसे युक्त और मङ्गलसे देखा जाता हो तो जातक मृगी रोगसे पीड़ित, अप्रियभाषी और क्षयरोगसे युक्त होता है। मण्डल (परिवेष)-युक्त चन्द्रमा यदि दशम भावस्थित सूर्य, शनि और मङ्गलसे दृष्ट हो तो जातक भृत्य (दूसरेका नौकर) होता है; उनमें भी एकसे दृष्ट हो तो श्रेष्ठ दोसे दृष्ट हो तो मध्यम और तीनोंसे दृष्ट हो तो अधम भृत्य होता है॥ २९४—२९६ ॥

(स्त्रीजातककी विशेषता—) ऊपर कहे हुए पुरुष जातकके जो-जो फल स्त्री-जातकमें सम्भव हों, वे वैसे योगमें उत्पन्न स्त्रीमात्रके लिये समझने चाहिये। जो फल स्त्रीमें असम्भव हों, वे सब उसके पतिमें समझने चाहिये। स्त्रीके स्वामीकी मृत्युका विचार अष्टम भावसे, शरीरके शुभाशुभ फलका विचार लग्न और चन्द्रमासे तथा सौभाग्य और पतिके स्वरूप, गुण आदिका विचार सप्तम भावसे करना चाहिये॥ २९७ $\frac{1}{2}$ ॥ स्त्रीके जन्मसमयमें लग्न और चन्द्रमा दोनों समराशि और सम नवमांशमें हों तो वह स्त्री अपनी प्रकृति (स्त्रीस्वभाव)-से

युक्त होती है। यदि उन दोनों (लग्न और चन्द्रमा) पर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो वह सुशीलतारूप आभूषणसे विभूषित होती है। यदि वे दोनों (लग्न तथा चन्द्रमा) विषमराशि और विषम नवमांशमें हों तो वह स्त्री पुरुषसदृश आकार और स्वभाववाली होती है। यदि उन दोनोंपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो स्त्री पापस्वभाववाली और गुणहीना होती है॥ २९८½ ॥

लग्न और चन्द्रमाके आश्रित मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो वह स्त्री बाल्यावस्थामें ही दुष्ट-स्वभाववाली होती है। शनिका त्रिंशांश हो तो दासी होती है। गुरुका त्रिंशांश हो तो सच्चरित्रा, बुधका त्रिंशांश हो तो मायावती (धूर्त) और शुक्रका त्रिंशांश हो तो वह उतावली होती है। शुक्रराशि (वृष-तुला)-में स्थित लग्न या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी बुरे स्वभाववाली, शनिका त्रिंशांश हो तो पुनर्भू[1] (दूसरा पति करनेवाली), गुरुका त्रिंशांश हो तो गुणवती, बुधका त्रिंशांश हो तो कलाओंको जाननेवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो लोकमें विख्यात होती है। बुधराशि (मिथुन-कन्या)-में स्थित लग्न या चन्द्रमामें यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो मायावती, शनिका हो तो हीजड़ी, गुरुका हो तो पतिव्रता, बुधका हो तो गुणवती और शुक्रका हो तो चञ्चला होती है। चन्द्रराशि (कर्क)-में स्थित लग्न या चन्द्रमामें यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी स्वेच्छाचारिणी, शनिका हो तो पतिके लिये घातक, गुरुका हो तो गुणवती, बुधका हो तो शिल्पकला जाननेवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो नीच स्वभाववाली होती है। सिंहराशिस्थ लग्न या चन्द्रमामें यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो पुरुषके समान आचरण करनेवाली, शनिका हो तो कुलटा स्वभाववाली, गुरुका हो तो रानी, बुधका हो तो पुरुषसदृश बुद्धिवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो अगम्यगामिनी होती है। गुरुराशि (धनु-मीन)-स्थित लग्न या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी गुणवती, शनिका हो तो भोगोंमें अल्प आसक्तिवाली, गुरुका हो तो गुणवती, बुधका हो तो ज्ञानवती और शुक्रका त्रिंशांश हो तो पतिव्रता होती है। शनिराशि (मकर-कुम्भ) स्थित लग्न या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो स्त्री दासी, शनिका हो तो नीच पुरुषमें आसक्त, गुरुका हो तो पतिव्रता, बुधका हो तो दुष्ट-स्वभाववाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो संतान-हीना होती है। इस प्रकार लग्न और चन्द्राश्रित राशियोंके फल ग्रहोंके बलके अनुसार न्यून या अधिक समझने चाहिये॥ २९९½—३०४॥

शुक्र और शनि ये दोनों परस्पर नवमांशमें (शुक्रके नवमांशमें शनि और शनिके नवमांशमें शुक्र) हों अथवा शुक्रराशि (वृष-तुला) लग्नमें कुम्भका नवमांश हो तो इन दोनों योगोंमें जन्म लेनेवाली स्त्री कामाग्निसे संतप्त हो स्त्रियोंसे भी क्रीड़ा करती है॥ ३०५॥

(पतिभाव—) स्त्रीके जन्मलग्नसे सप्तम भावमें कोई ग्रह नहीं हो तो उसका पति कुत्सित होता है। सप्तम स्थान निर्बल हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि नहीं हो तो उस स्त्रीका पति नपुंसक होता है। सप्तम स्थानमें बुध और शनि हों तो भी पति नपुंसक होता है। यदि सप्तम भावमें चरराशि हो तो उसका पति परदेशवासी होता है। सप्तम भावमें सूर्य हो तो उस स्त्रीको पति त्याग देता है। मङ्गल हो तो वह स्त्री बालविधवा होती है। शनि सप्तम भावमें पापग्रहसे दृष्ट हो तो वह स्त्री कन्या (अविवाहिता) रहकर ही वृद्धावस्थाको प्राप्त होती है॥ ३०६-३०७॥

१. 'पुनर्भू' कहनेसे यह सिद्ध हुआ कि उसका जन्म शूद्रकुलमें होता है; क्योंकि शूद्रजातिमें स्त्रीके पुनर्विवाहकी प्रथा है।

यदि सप्तम भावमें एकसे अधिक पापग्रह हो तो भी स्त्री विधवा होती है, शुभ और पाप दोनों हों तो वह पुनर्भू होती है। यदि सप्तम भावमें पापग्रह निर्बल हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो भी स्त्री अपने पतिद्वारा त्याग दी जाती है, अन्यथा शुभग्रहकी दृष्टि होनेपर वह पतिप्रिया होती है॥ ३०८॥

मङ्गलके नवमांशमें शुक्र और शुक्रके नवमांशमें मङ्गल हो तो वह स्त्री परपुरुषमें आसक्त होती है। इस योगमें चन्द्रमा यदि सप्तम भावमें हो तो वह अपने पतिकी आज्ञासे कार्य करती है॥ ३०९॥

यदि चन्द्रमा और शुक्रसे संयुक्त शनि एवं मङ्गलकी राशि (मकर, कुम्भ, मेष और वृश्चिक) लग्नमें हों तो वह स्त्री कुलटा-स्वभाववाली होती है। यदि उक्त लग्नपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो वह स्त्री अपनी मातासहित कुलटा-स्वभाववाली होती है। यदि सप्तम भावमें मङ्गलका नवमांश हो और उसपर शनिकी दृष्टि हो तो वह नारी रोगयुक्त योनिवाली होती है। यदि सप्तम भावमें शुभग्रहका नवमांश हो तब तो वह पतिकी प्यारी होती है। शनिकी राशि या नवमांश सप्तम भावमें हो तो उस स्त्रीका पति वृद्ध और मूर्ख होता है। सप्तम भावमें मङ्गलकी राशि या नवमांश हो तो उसका पति स्त्रीलोलुप और क्रोधी होता है। बुधकी राशि या नवमांश हो तो विद्वान् और सब कार्यमें निपुण होता है। गुरुकी राशि या नवमांश हो तो जितेन्द्रिय और गुणी होता है। चन्द्रमाकी राशि या नवमांश हो तो कामी और कोमल होता है। शुक्रकी राशि या नवमांश हो तो भाग्यवान् तथा मनोहर स्वरूपवाला होता है। सूर्यकी राशि या नवमांश सप्तम भावमें हो तो उस स्त्रीका पति अत्यन्त कोमल और अधिक कार्य करनेवाला होता है॥ ३१०—३१२ $\frac{1}{2}$ ॥

शुक्र और चन्द्रमा लग्नमें हों तो वह स्त्री सुख तथा ईर्ष्यावाली होती है। यदि बुध और चन्द्रमा लग्नमें हों तो कलाओंको जाननेवाली तथा सुख और गुणोंसे युक्त होती है। शुक्र और बुध लग्नमें हों तो सौभाग्यवती, कलाओंको जाननेवाली और अत्यन्त सुन्दरी होती है। लग्नमें तीन शुभग्रह हों तो वह अनेक प्रकारके सुख, धन और गुणोंसे युक्त होती है॥ ३१३-३१४ $\frac{1}{2}$ ॥

पापग्रह अष्टम भावमें हो तो वह स्त्री अष्टमेश जिस ग्रहके नवमांशमें हो उस ग्रहके पूर्वकथित बाल्य आदि वयस्‌में विधवा होती है। यदि द्वितीय भावमें शुभग्रह हों तो वह स्त्री स्वयं ही स्वामीके सम्मुख मृत्युको प्राप्त होती है। कन्या, वृश्चिक, सिंह या वृष राशिमें चन्द्रमा हो तो स्त्री थोड़ी संततिवाली होती है। यदि शनि मध्यम बली तथा चन्द्रमा, शुक्र और बुध ये तीनों निर्बल हों तथा शेष ग्रह (रवि, मङ्गल और गुरु) सबल होकर विषम राशि-लग्नमें हों तो वह स्त्री कुरूपा होती है॥ ३१५—३१७॥

गुरु, मङ्गल, शुक्र, बुध ये चारों बली होकर समराशि लग्नमें स्थित हों तो वह स्त्री अनेक शास्त्रोंको और ब्रह्मको जाननेवाली तथा लोकमें विख्यात होती है॥ ३१८॥

जिस स्त्रीके जन्मलग्नसे सप्तममें पापग्रह हो और नवम भावमें कोई ग्रह हो तो स्त्री पूर्वकथित नवमस्थ ग्रहजनित प्रव्रज्याको प्राप्त होती है। इन (कहे हुए) विषयोंका विवाह, वरण या प्रश्नकालमें भी विचार करना चाहिये॥ ३१९॥

(निर्याण (मृत्यु) विचार—) लग्नसे अष्टम भावको जो-जो ग्रह देखते हैं, उनमें जो बलवान् हो उसके धातु (कफ, पित्त या वात)-के प्रकोपसे जातक (स्त्री-पुरुष)-का मरण होता है। अष्टम भावमें जो राशि हो, वह काल पुरुषके जिस अङ्ग (मस्तकादि)-में पड़ती हो; उस अङ्गमें रोग होनेसे जातककी मृत्यु होती है। बहुत ग्रहोंकी दृष्टि या योग हो तो उन-उन ग्रहोंसे सम्बन्ध रखनेवाले रोगोंसे मरण होता है। यथा अष्टममें सूर्य हों तो अग्निसे, चन्द्रमा हों तो

जलसे; मङ्गल हों तो शस्त्रघातसे, बुध हों तो ज्वरसे, गुरु हों तो अज्ञात रोगसे, शुक्र हों तो प्याससे और शनि हों तो भूखसे मरण होता है। तथा अष्टम भावमें चर राशि हो तो परदेशमें, स्थिर राशि हो तो स्वस्थानमें और द्विस्वभाव राशि हो तो मार्गमें मृत्यु होती है। सूर्य और मङ्गल यदि १०, ४ भावमें हों तो पर्वत आदि ऊँचे स्थानसे गिरकर मनुष्यकी मृत्यु होती है॥ ३२०—३२२॥

४, ७, १० भावोंमें यदि शनि, चन्द्र, मङ्गल हों तो कूपमें गिरकर मरण होता है। कन्या-राशिमें रवि और चन्द्रमा दोनों हों, उनपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो अपने सम्बन्धीके द्वारा मरण होता है। यदि उभयोदय (मीन) लग्नमें चन्द्रमा और सूर्य दोनों हों तो जलमें मरण होता है। यदि मङ्गलकी राशिमें स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो शस्त्र या अग्निसे मृत्यु होती है॥ ३२३-३२४॥

मकरमें चन्द्रमा और कर्कमें शनि हों तो जलोदररोगसे मरण होता है। कन्याराशिमें स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहोंके बीचमें हों तो रक्तशोषरोगसे मृत्यु होती है। यदि दो पापग्रहोंके बीचमें स्थित चन्द्रमा, शनिकी राशि (मकर और कुम्भ)-में हों तो रज्जु (रस्सी), अग्नि अथवा ऊँचे स्थानसे गिरकर मृत्यु होती है। ५, ९ भावोंमें पापग्रह हो और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो बन्धनसे मृत्यु होती है। अष्टम भावमें पाश, सर्प या निगड द्रेष्काण हो तो भी बन्धनसे ही मृत्यु होती है। पापग्रहके साथ बैठा हुआ चन्द्रमा यदि कन्याराशिमें होकर सप्तम भावमें स्थित हो तथा मेषमें शुक्र और लग्नमें सूर्य हो तो अपने घरमें स्त्रीके निमित्तसे मरण होता है। चतुर्थ भावमें मङ्गल या सूर्य हों, दशम भावमें शनि हो और लग्न, ५, ९ भावोंमें पापग्रहसहित चन्द्रमा हो अथवा चतुर्थ भावमें सूर्य और दशममें मङ्गल रहकर क्षीण चन्द्रमासे दृष्ट हों तो इन योगोंमें काष्ठसे आहत होकर मनुष्यकी मृत्यु होती है। यदि ८, १०, लग्न तथा ४ भावोंमें क्षीण चन्द्रमा, मङ्गल, शनि और सूर्य हों तो लाठीके प्रहारसे मृत्यु होती है। यदि वे ही (क्षीण चन्द्रमा, मङ्गल, शनि तथा सूर्य) १०, ९ लग्न और ५ भावोंमें हों तो मुद्गर आदिके आघातसे मृत्यु होती है। यदि ४, ७, १० भावोंमें क्रमशः मङ्गल, रवि और शनि हों तो शस्त्र, अग्नि तथा राजाके द्वारा मृत्यु होती है। यदि शनि, चन्द्रमा और मङ्गल—ये २, ४, १० भावोंमें हों तो कीड़ोंके क्षतसे शरीरका पतन (मरण) होता है। यदि दशम भावमें सूर्य और चतुर्थ भावमें मङ्गल हों तो सवारीपरसे गिरनेके कारण मृत्यु होती है। यदि क्षीण चन्द्रमाके साथ मङ्गल सप्तम भावमें हो तो यन्त्र (मशीन)-के आघातसे मृत्यु होती है। यदि मङ्गल, शनि और चन्द्रमा—ये तुला, मेष तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)-में हों अथवा क्षीण चन्द्रमा, सूर्य और मङ्गल—ये १०, ७, ४ भावोंमें स्थित हो तो विष्ठाके समीप मृत्यु होती है। क्षीण चन्द्रमापर मङ्गलकी दृष्टि हो और शनि सप्तम भावमें हो तो गुह्य (बवासीर आदि)-रोग या कीड़ा, शस्त्र, अग्नि अथवा काष्ठके आघातसे मरण होता है। मङ्गलसहित सूर्य सप्तम भावमें, शनि अष्टममें और क्षीण चन्द्रमा चतुर्थ भावमें हों तो पक्षीद्वारा मरण होता है। यदि लग्न, ५, ८, ९ भावोंमें सूर्य, मङ्गल, शनि और चन्द्रमा हों तो पर्वत-शिखरसे गिरनेके कारण अथवा वज्रपातसे या दीवार गिरनेसे मृत्यु होती है॥ ३२५—३३५॥

लग्नसे २२ वाँ द्रेष्काण अर्थात् अष्टम भावका द्रेष्काण जो हो, उसका स्वामी अथवा अष्टम भावका स्वामी—ये दोनों या इनमेंसे जो बली हो, वह अपने गुणोंसे (पूर्वोक्त अग्निशस्त्रादिद्वारा) मनुष्यके लिये मरणकारक होता है। लग्नमें जो

नवमांश होता है, उसका स्वामी जो ग्रह हो उसके समान स्थान (अर्थात् वह जिस राशिमें हो उस राशिका जैसा स्थान बताया गया है, वैसे स्थान) तथा उसपर जिस ग्रहका योग या दृष्टि हो उसके समान स्थानमें, परदेशमें मनुष्यका मरण होता है तथा लग्नके जितने अंश अनुदित (भोग्य) हों, उन अंशोंमें जितने समय हों[1], उतने समयतक मरणकालमें मोह होता है। यदि उसपर अपने स्वामीकी दृष्टि हो तो उससे द्विगुणित और शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उससे त्रिगुणित समयपर्यन्त मोह होता है। इस विषयकी अन्य बातें अपनी बुद्धिसे विचारकर समझनी चाहिये॥ ३३६-३३७ १/२॥

(शव-परिणाम—) अष्टम स्थानमें जिस प्रकारका द्रेष्काण हो उसके अनुसार देहधारीकी मृत्यु और उसके शवके परिणामपर विचार करना चाहिये। यथा—अग्नि (पापग्रह)-का द्रेष्काण हो तो मृत्युके बाद उसका शव जलाकर भस्म किया जाता है। जल (सौम्य) द्रेष्काण हो तो जलमें फेंका जानेपर वह वहीं गल जाता है। यदि सौम्य द्रेष्काण पापग्रहसे युक्त या पाप द्रेष्काण शुभग्रहसे युक्त हो तो मुर्दा न जलाया जाता है, न जलमें गलाया जाता है, अपितु सूर्यकिरण और हवासे सूख जाता है। यदि सर्प द्रेष्काण[2] अष्टम भावमें हो तो उस मुर्देको गीदड़ और कौए आदि नोंचकर खाते हैं॥ ३३८ १/२॥

(पूर्वजन्मस्थिति—) सूर्य और चन्द्रमामें जो अधिक बलवान् हो, वह जिस द्रेष्काणमें स्थित हो उस द्रेष्काणके स्वामीके अनुसार पूर्वजन्मकी स्थिति समझी जाती है। यथा—उक्त द्रेष्काणका स्वामी गुरु हो तो जातक पूर्वजन्ममें देवलोकमें था। चन्द्रमा या शुक्र द्रेष्काणका स्वामी हो तो वह पितृलोकमें था। सूर्य या मङ्गल द्रेष्काणका स्वामी हो तो वह जातक पहले जन्ममें भी मर्त्यलोकमें ही था और शनि या बुध हो तो वह पहले नरकलोकमें रहा है—ऐसा समझना चाहिये। यदि उक्त द्रेष्काणका स्वामी अपने उच्चमें हो तो जातक पूर्वजन्ममें देवादि लोकमें श्रेष्ठ था। यदि उच्च और नीचके मध्यमें हो तो उस लोकमें उसकी मध्यम स्थिति थी और यदि अपने नीचमें हो तो वह उस लोकमें निम्नकोटिकी अवस्थामें था—ऐसा उच्च और नीच स्थानके तारतम्यसे समझना चाहिये।

(गति—भावी जन्मकी स्थिति—) षष्ठ और अष्टम भावके द्रेष्काणोंके स्वामीमेंसे जो अधिक बली हो, मरनेके बाद जातक उसी ग्रहके (पूर्वदर्शित) लोकमें जाता है तथा सप्तम स्थानमें स्थित ग्रह बली हो तो वह अपने लोकमें ले जाता है।

(मोक्षयोग—) यदि बृहस्पति अपने उच्चमें होकर ६, १, ४, ७, ८, १० अथवा १२ में शुभग्रहके नवमांशमें हो और अन्य ग्रह निर्बल हों तो मरण होनेपर मनुष्यका मोक्ष होता है। यह योग जन्म और मरण दोनों कालोंसे देखना चाहिये॥ ३३९—३४१ १/२॥

(अज्ञात जन्म-समयको जाननेका प्रकार—) जिस व्यक्तिके आधान या जन्मका समय अज्ञात हो, उसके प्रश्न-लग्नसे जन्म-समय समझना चाहिये। प्रश्न-लग्नके पूर्वार्ध (१५ अंशतक)-में उत्तरायण और उत्तरार्ध (१५ अंशके बाद)-में दक्षिणायन जन्मका समय समझना चाहिये। त्र्यंश (द्रेष्काण) द्वारा क्रमशः लग्न, ५, ९ राशिमें गुरु समझकर फिर प्रश्नकर्ताके वयस्के अनुसार वर्षमानकी कल्पना करनी चाहिये[3]। लग्नमें सूर्य हो तो ग्रीष्मऋतु, अन्यथा अन्य ग्रहोंके ऋतुका वर्णन

१. ३० अंशोंमें मध्यममानसे दो घंटा (५ घटी) समय होता है; उसी अनुपातसे समय समझना चाहिये।

२. आगे (पृष्ठ ३१६ में) द्रेष्काणके स्वरूप देखिये।

३. अर्थात् लग्नमें प्रथम द्रेष्काण हो तो प्रश्नकर्ताके जन्म-समयमें लग्नराशिमें ही गुरु था, द्वितीय द्रेष्काण हो तो प्रश्नलग्नसे ५वीं राशिमें, तृतीय द्रेष्काण हो तो प्रश्नलग्नसे ९वीं राशिमें जन्मकालीन गुरुकी स्थिति समझे। फिर वर्तमान समयमें गुरुकी राशितक गिनकर वर्ष-संख्या बनावे। इस प्रकार संख्या १२ से कम ही होगी। इतने वर्षका वयस् यदि प्रश्नकर्ताके अनुमानसे

पहले किया जा चुका है। अयन और ऋतुमें भिन्नता हो तो चन्द्रमा, बुध और गुरुकी ऋतुओंके स्थानमें क्रमसे शुक्र, मङ्गल, शनिकी ऋतु परिवर्तित करके समझना चाहिये तथा ऋतु सर्वथा सूर्यकी राशिसे ही (सौरमाससे ही) ग्रहण करनी चाहिये। इस प्रकार अयन और ऋतुके ज्ञान होनेपर लग्नके द्रेष्काणमें पूर्वार्ध हो तो ऋतुका प्रथम मास, उत्तरार्ध हो तो द्वितीय मास समझना चाहिये तथा द्रेष्काणके पूर्वार्ध या उत्तरार्धके भुक्तांशोंसे अनुपात[1] द्वारा तिथि (सूर्यके गत अंशादि)का ज्ञान करना चाहिये॥ ३४२—३४४$\frac{1}{2}$॥

(दिन-रात्रि जन्म-ज्ञान—) प्रश्न लग्नमें दिनसंज्ञक, रात्रि-संज्ञक राशियाँ हों तो विलोमक्रमसे (दिनसंज्ञक राशिमें रात्रि और रात्रिसंज्ञक राशिमें दिन) जन्मका समय समझना चाहिये और लग्नके अंशादिसे अनुपात[2] द्वारा इष्ट घट्यादिको समझना चाहिये।

(जन्म-लग्नज्ञान—) केवल जन्म-लग्न जाननेके लिये प्रश्नकर्ता प्रश्न करे तो लग्नसे (१, ५, ९में) जो राशि बली हो, वही उसका जन्म-लग्न समझना चाहिये अथवा वह जिस अङ्गका स्पर्श करते हुए प्रश्न करे, उस अङ्गकी राशिको ही जम-लग्न कहना चाहिये।

ठीक हो तो ठीक माने, नहीं तो उस संख्यामें १२ जोड़ता जाय। जब प्रश्नकर्ताके वयस्के अनुसार वर्ष-संख्याका अनुमान हो जाय तो उस संख्याको वर्तमान संवत्में घटानेसे प्रश्नकर्ताका जन्मसंवत् होगा। उस संवत्में गुरु उस राशिमें मिलेगा ही, चाहे १ वर्ष आगे मिले या पीछे। जहाँ उस राशिमें गुरु मिले, वही प्रश्नकर्ताका जन्म-संवत्सर समझना चाहिये। फिर उक्त रीतिसे अयनका ज्ञान करना चाहिये।

१. अनुपात इस प्रकार है कि ५ अंशकी कला (३००)-में ३० तिथि (अंश) हैं तो भुक्त द्रेष्काणार्धांशकी कलामें क्या होंगी?

इसकी उत्तर-क्रिया नीचे देखिये—

मान लीजिये, किसी अनाथ-बालकको अपने जन्म-समयका ज्ञान नहीं है। उसकी उम्र अनुमानसे ८ या ९ वर्षकी प्रतीत होती है। उसने अपना जन्म-समय जाननेके लिये संवत् २०१० ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा गुरुवारको प्रश्न किया। उस समयकी लग्न-राश्यादि २। १४। ४५ है और बृहस्पति-राश्यादि १। १८। २। ५ (वृष राशिमें) है। यहाँ लग्नमें द्वितीय द्रेष्काण है, अतः लग्न (मिथुन)- से पाँचवीं तुला राशिमें उसके जन्म-समयमें बृहस्पतिकी स्थिति ज्ञात हुई। प्रश्न-समयका बृहस्पति वृषमें है, जो तुलासे ८वीं संख्यामें है, इसलिये गत वर्ष-संख्या ७ हुई, इससे ज्ञात हुआ कि आजसे ७, १९ तथा ३१ इत्यादि वर्ष पूर्व बृहस्पतिकी तुलामें स्थिति हो सकती है, क्योंकि बृहस्पति एक राशिमें एक वर्ष रहता है। परंतु इन (७, १९, ३१) संख्याओंमें ७ संख्या ही प्रश्नकर्ताकी उम्रके समीप होनेके कारण आजसे ७ वर्ष पूर्व जन्म-समय स्थिर हुआ। इसलिये प्रश्न-संवत् २०१० में ७ घटानेसे शेष २००३ जन्मका संवत् निश्चित हुआ। उस संवत्के पञ्चाङ्गको देखा तो तुलामें बृहस्पतिकी स्थिति ज्ञात हुई। राशिके पूर्वार्धमें प्रश्नलग्न है, अतः जन्मका समय उत्तरायण सिद्ध हुआ। तथा प्रश्नलग्नमें शुक्रका द्रेष्काण है, अतः वसन्त ऋतु होनेका निश्चय हुआ। प्रश्नकालमें द्वितीय द्रेष्काणका पूर्वार्ध होनेके कारण वसन्त ऋतुका प्रथम मास (सौर चैत्र) जन्मका मास निश्चित हुआ।

फिर प्रश्नलग्नस्थ द्रेष्काणके गतांशादि ४। ४५। ० की कला २८५ को ३० से गुणा कर गुणनफल ८५५० में ३०० का भाग देनेसे लब्ध २८। ३० यह मीनमें सूर्यके भुक्तांश हुए। अतः मेषसे ११ वीं राशि जोड़नेपर जन्मकालका स्पष्ट सूर्य ११। २८। ३० हुआ। यह चैत्र शुक्ला ११ शुक्रवारको मिलता है, अतः प्रश्नकर्ताका वही जन्म-मास और संवत् निश्चित हुआ।

अब इष्टकाल जाननेके लिये उस दिन उदयकालिक स्पष्ट सूर्य-राश्यादि ११। २८। १५। २० तथा सूर्यकी गति ५८। ४५ है तो निश्चित किये हुए जन्मकालिक सूर्य ११। २८। ३०। ० और उदयकालिक सूर्य ११। २८। १५। २० के अन्तर १४। ४० कलाको ६० से गुणा कर गुणनफल ८८० में सूर्यकी गति ५८। ४५ का भाग देनेपर लब्धि घट्यादि १४। ५९ हुई। यह जन्म सूर्यसे अधिक होनेके कारण उदयकालके बादका इष्टकाल हुआ। इसके द्वारा तात्कालिक अन्य ग्रह और लग्नादि द्वादश भावोंका साधन करके जन्म-पत्र बनता है, वह नष्ट जन्म-पत्र कहलाता है, उससे भी असली जन्म-पत्रके समान ही फल घटित होता है।

२. यहाँ अनुपात ऐसा है कि ३० अंशमें दिनमान या रात्रिमानकी घटी तो लग्न भुक्तांशमें क्या?

(जन्म-राशि-ज्ञान—) जन्म-राशि जाननेके लिये प्रश्न करे तो प्रश्न-लग्नसे जितने आगे चन्द्रमा हो, चन्द्रमासे उतने ही आगे जो राशि हो वह पूछनेवालेकी जन्मराशि समझनी चाहिये॥ ३४५-३४६ ॥

(प्रकारान्तरसे अज्ञात जन्मकालादिका ज्ञान—) प्रश्नलग्नमें वृष या सिंह हो तो लग्नराश्यादिको कलात्मक बनाकर १० से गुणा करे। मिथुन या वृश्चिक हो तो ८ से, मेष या तुला हो तो ७ से, मकर या कन्या हो तो ५ से गुणा करे। शेष राशियों (कर्क, धन, कुम्भ, मीन)-मेंसे कोई लग्न हो तो उसकी कलाको अपनी संख्यासे (जैसे कर्कको ४ से) गुणा करे। यदि लग्नमें ग्रह हो तो फिर उसी गुणनफलको ग्रहगुणकोंसे भी गुणा करे। जैसे—बृहस्पति हो तो १० से, मङ्गल हो तो ८ से, शुक्र हो तो ७ से, बुध हो तो ५ से, अन्य ग्रह (रवि, शनि और चन्द्रमा) हो तो ५ से गुणा करे। इस प्रकार लग्नकी राशिके अनुसार गुणन तो निश्चित ही रहता है। यदि उसमें ग्रह हो तभी ग्रहका गुणन भी करना चाहिये। जितने ग्रह हों, सबके गुणकसे गुणा करना चाहिये इस प्रकार गुणनफलको ध्रुवपिण्ड मानकर उसको ७ से गुणाकर २७ के द्वारा भाग देकर १ आदि शेषके अनुसार अश्विनी आदि जन्म-नक्षत्र समझने चाहिये। इस प्रणालीमें विशेषता यह है कि उक्त रीतिसे आयी हुई संख्यामें कभी ९ जोड़कर और कभी ९ घटाकर नक्षत्र लिया जाता है।[1] तथा उक्त ध्रुवपिण्डको १० से गुणा करके गुणनफलसे वर्ष, ऋतु और मास समझे[2]। पक्ष और तिथि जाननी हो तो ध्रुवपिण्डको ८ से गुणा करके २ से भाग देकर एक शेष हो तो शुक्लपक्ष और दो शेष हो तो कृष्णपक्ष समझे। इसमें भी ९ जोड़ या घटाकर ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् गुणनफलमें ९ जोड़ या ९ घटाकर भाग देना चाहिये। इसी प्रकार पक्षज्ञान होनेपर गुणनफलमें ही १५ से भाग देकर शेषके अनुसार प्रतिपदा आदि तिथि समझे तथा अहोरात्र जानना हो तो ध्रुवपिण्डको ७ से गुणा करके दोसे भाग देकर एक शेष हो तो दिन और दो शेष हो तो रात्रि समझे। लग्न-नवांश, इष्ट-घड़ी तथा होरा जानना हो तो ध्रुवपिण्डको ५ से गुणा करके अपने-अपने विकल्पसे (अर्थात् लग्न जाननेके लिये १२से, इष्ट घड़ी[3] जाननेके लिये ६० से (अथवा

---

१. ९ जोड़ने-घटानेका नियम यह है कि प्रश्नलग्नमें प्रथम द्रेष्काण हो तो ९ जोड़कर, तीसरा द्रेष्काण हो तो ९ घटाकर तथा मध्य द्रेष्काण हो तो यथाप्राप्त नक्षत्र ग्रहण करे।

२. यथा—गुणनफलमें १२० का भाग देकर शेष तुल्य वर्ष तथा इसी गुणनफलमें ६ का भाग देकर शेषके अनुसार शिशिरादि ऋतु जाने एवं मास जानना हो तो गुणनफलमें १२ से भाग देकर शेष तुल्य चैत्रादि मास समझे। यदि ऋतुज्ञान होनेपर मास जानना हो तो उक्त गुणनफलमें दोसे भाग देकर एक शेषमें प्रथम और दो शेषमें द्वितीय मास समझे।

३. जैसे—संवत् २०१० चैत्र शुक्ला ५ गुरुवारको अनुमानत: ३० वर्षकी अवस्थावाले किसी पुरुषने अपना अज्ञात जन्म-समय जाननेके लिये प्रश्न किया। उस समयकी लग्न-(वृष) राश्यादि १। ५। २९ है और लग्नमें कोई ग्रह नहीं है तो लग्न-राश्यादिकी २१२९ कलाको वृषलग्नके गुणकाङ्क १० से गुणा करनेपर २१२९० यह ध्रुवपिण्ड हुआ। लग्नमें कोई ग्रह नहीं है, अत: दूसरा गुणक नहीं प्राप्त हुआ। अब प्रश्नकर्ताकी गत वर्ष-संख्या जाननेके लिये ध्रुवपिण्डको फिर १० से गुणा करके गुणनफल २१२९०० में १२० का भाग देनेसे शेष २० वर्ष-संख्या हुई; परंतु यह संख्या अनुमानसे कुछ न्यून है, अत: लग्नमें प्रथम द्रेष्काण होनेके कारण आगत शेषमें ९ जोड़नेसे २९ हुआ। यही सम्भावित वर्ष होनेके कारण प्रश्नकर्ताके जन्मसे गत वर्ष हुए। इस संख्याको वर्तमान संवत् २०१० में घटानेपर शेष १९८१ यह प्रश्नकर्ताका जन्म-संवत् हुआ। पुन: मास जाननेके लिये दशगुणित ध्रुवपिण्डमें ९ जोड़ा गया तो २१२९०९ हुआ। इसमें १२ का भाग देनेसे शेष ५ रहा। अत: चैत्रसे पाँचवाँ श्रावण जन्म-मास हुआ। पक्ष जाननेके लिये ध्रुवपिण्ड २१२९० को ८ से गुणा कर गुणनफल १७०३२० में ९ जोड़कर २ का भाग देनेसे १ शेष रहनेके कारण शुक्लपक्ष हुआ। तिथि जाननेके लिये उसी अष्टगुणित एवं नवयुत ध्रुवपिण्ड १७०३२९ में १५ का भाग देनेपर शेष ८ रहा, अत: चतुर्थी तिथि हुई। इष्ट घड़ी जाननेके लिये ध्रुवपिण्ड २१२९० को ५ से गुणाकर गुणनफलमें ९ जोड़कर योगफल १०६४५९ में ६० का भाग देनेपर शेष १९ रहा। वही इष्ट घड़ी हुई। इस प्रकार संवत् १९८१ श्रावण शुक्ला ४ की गतघटी १९ (घड़ी बीतनेपर) प्रश्नकर्ताका जन्म-समय निश्चित हुआ।

दिन या रात्रिका ज्ञान होनेपर दिनमान या रात्रिमान-घटीसे), नवमांशके लिये ९ से तथा होराके लिये २ से भाग देकर शेषद्वारा सबका ज्ञान करना चाहिये। इस प्रकार जिनके जन्म-समय आदिका ज्ञान न हो उनके लिये इन सब बातोंका विचार करना चाहिये॥ ३४७—३५०॥

(**द्रेष्काणका स्वरूप—**) हाथमें फरसा लिये हुए काले रंगका पुरुष, जिसकी आँखें लाल हों और जो सब जीवोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हो, मेषके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। प्याससे पीडित एक पैरसे चलनेवाला, घोड़ेके समान मुख, लाल वस्त्रधारी और घड़ेके समान आकार—यह मेषके द्वितीय द्रेष्काणका स्वरूप है। कपिलवर्ण, क्रूरदृष्टि, क्रूरस्वभाव, लाल वस्त्रधारी और अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवाला—यह मेषके तृतीय द्रेष्काणका स्वरूप है। भूख और प्याससे पीड़ित, कटे-छँटे घुँघराले केश तथा दूधके समान धवल वस्त्र—यह वृषके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। मलिनशरीर, भूखसे पीडित, बकरेके समान मुख और कृषि आदि कार्योंमें कुशल—यह वृषके दूसरे द्रेष्काणका रूप है। हाथीके समान विशालकाय, शरभ[१]के समान पैर, पिङ्गल वर्ण और व्याकुल चित्त—यह वृषके तीसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। सुईसे सीने-पिरोनेका काम करनेवाली, रूपवती, सुशीला तथा संतानहीना नारी, जिसने हाथको ऊपर उठा रखा है, मिथुनका प्रथम द्रेष्काण है। कवच और धनुष धारण किये हुए उपवनमें क्रीडा करनेकी इच्छासे उपस्थित गरुडसदृश मुखवाला पुरुष मिथुनका दूसरा द्रेष्काण है। नृत्य आदिकी कलामें प्रवीण, वरुणके समान रत्नोंके अनन्त भण्डारसे भरा-पूरा, धनुर्धर वीर पुरुष मिथुनका तीसरा द्रेष्काण है। गणेशजीके समान कण्ठ, शूकरके सदृश मुख, शरभके-से पैर और वनमें रहनेवाला—यह कर्कके प्रथम द्रेष्काणका रूप है। सिरपर सर्प धारण किये, पलाशकी शाखा पकड़कर रोती हुई कर्कशा स्त्री—यह कर्कके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। चिपटा मुख, सर्पसे वेष्टित, स्त्रीकी खोजमें नौकापर बैठकर जलमें यात्रा करनेवाला पुरुष—यह कर्कके तीसरे द्रेष्काणका रूप है॥ ३५१—३५६॥ सेमलके वृक्षके नीचे गीदड़ और गीधको लेकर रोता हुआ कुत्ते-जैसा मनुष्य—यह सिंहके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। धनुष और कृष्ण मृगचर्म धारण किये, सिंह-सदृश पराक्रमी तथा घोड़ेके समान आकृतिवाला मनुष्य—यह सिंहके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। फल और भोज्यपदार्थ रखनेवाला, लंबी दाढ़ीसे सुशोभित, भालू-जैसा मुख और वानरोंके-से चपल स्वभाववाला मनुष्य—सिंहके तृतीय द्रेष्काणका रूप है। फूलसे भरे कलशवाली, विद्याभिलाषिणी, मलिन वस्त्रधारिणी कुमारी कन्या—यह कन्या राशिके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। हाथमें धनुष, आय-व्ययका हिसाब रखनेवाला, श्याम-वर्ण शरीर, लेखनकार्यमें चतुर तथा रोएँसे भरा मनुष्य—यह कन्या राशिके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। गोरे अङ्गोंपर धुले हुए स्वच्छ वस्त्र, ऊँचा कद, हाथमें कलश लेकर देवमन्दिरकी ओर जाती हुई स्त्री—यह कन्या राशिके तीसरे द्रेष्काणका परिचय है॥ ३५७—३५९॥ हाथमें तराजू और बटखरे लिये बाजारमें वस्तुएँ तौलनेवाला तथा बर्तन-भाँड़ोंकी कीमत कूतनेवाला पुरुष तुलाराशिका प्रथम द्रेष्काण है। हाथमें कलश लिये भूख-प्याससे व्याकुल तथा गीधके समान मुखवाला पुरुष, जो स्त्री-पुत्रके साथ

१. पुराणोंमें शरभके आठ पैर कहे गये हैं और उसे व्याघ्र-सिंहसे भी अधिक बलिष्ठ एवं भयङ्कर बताया गया है; परंतु यह अब कहीं उपलब्ध नहीं होता। शरभका दूसरा अर्थ ऊँट भी है।

विचरता है, तुलाका दूसरा द्रेष्काण है। हाथमें धनुष लिये हरिनका पीछा करनेवाला, किन्नरके समान चेष्टवाला, सुवर्णकवचधारी पुरुष तुलाका तृतीय द्रेष्काण है। एक नारी, जिसके पैर नाना प्रकारके सर्प लिपटे होनेसे श्वेत दिखायी देते हैं, समुद्रसे किनारेकी ओर जा रही है, यही वृश्चिकके प्रथम द्रेष्काणका रूप है। जिसके सब अङ्ग सर्पोंसे ढके हैं और आकृति कछुएके समान है तथा जो स्वामीके लिये सुखकी इच्छा करनेवाली है; ऐसी स्त्री वृश्चिकका दूसरा द्रेष्काण है। मलयगिरिका निवासी सिंह, मुखाकृति कछुए-जैसी है, कुत्ते, शूकर और हरिन आदिको डरा रहा है, वही वृश्चिकका तीसरा द्रेष्काण है॥ ३६०—३६२॥ मनुष्यके समान मुख, घोड़े-जैसा शरीर, हाथमें धनुष लेकर तपस्वी और यज्ञोंकी रक्षा करनेवाला पुरुष धनुराशिका द्रेष्काण है। चम्पापुरुषके समान कान्तिवाली, आसनपर बैठी हुई, समुद्रके रत्नोंको बढ़ानेवाली, मझोले कदकी स्त्री धनुका दूसरा द्रेष्काण है। दाढ़ी-मूँछ बढ़ाये, आसनपर बैठा हुआ, चम्पापुष्पके सदृश कान्तिमान्, दण्ड, पट्ट-वस्त्र और मृगचर्म धारण करनेवाला पुरुष धनुका तीसरा द्रेष्काण है। मगरके समान दाँत, रोएँसे भरा शरीर तथा सूअर-जैसी आकृतिवाला पुरुष मकरका प्रथम द्रेष्काण है। कमलदलके समान नेत्रोंवाली, आभूषण-प्रिया श्यामा स्त्री मकरका दूसरा द्रेष्काण है। हाथमें धनुष, कम्बल, कलश और कवच धारण करनेवाला किन्नरके समान पुरुष मकरका तीसरा द्रेष्काण है॥ ३६३—३६६॥ गीधके समान मुख, तेल, घी और मधु पीनेकी इच्छावाला, कम्बलधारी पुरुष कुम्भका प्रथम द्रेष्काण है। हाथमें लोहा, शरीरमें आभूषण तथा मस्तकपर भाँड़ (बर्तन) लिये मलिन वस्त्र पहनकर जली गाड़ीपर बैठी हुई स्त्री कुम्भका दूसरा द्रेष्काण है। कानमें बड़े-बड़े रोम, शरीरमें श्याम कान्ति, मस्तकपर किरीट तथा हाथमें फल-पत्र धारण करनेवाला बर्तनका व्यापारी कुम्भका तीसरा द्रेष्काण है। भूषण बनानेके लिये नाना प्रकारके रत्नोंको हाथमें लेकर समुद्रमें नौकापर बैठा हुआ पुरुष मीनका प्रथम द्रेष्काण है। जिसके मुखकी कान्ति चम्पाके पुष्पके सदृश मनोहर है, वह अपने परिवारके साथ नौकापर बैठकर समुद्रके बीचसे तटकी ओर आती हुई स्त्री मीनका दूसरा द्रेष्काण है। गड्ढेके समीप तथा चोर और अग्निसे पीड़ित होकर रोता हुआ, सर्पसे वेष्टित, नग्न शरीरवाला पुरुष मीन राशिका तीसरा द्रेष्काण है। इस प्रकार मेषादि बारहों राशियोंमें होनेवाले छत्तीस द्रेष्काणांशके रूप क्रमसे बताये गये हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद! यह संक्षेपमें जातक नामक स्कन्ध कहा गया है। अब लोक-व्यवहारके लिये उपयोगी संहितास्कन्धका वर्णन सुनो—॥ ३६७—३७०॥

(पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५५)

त्रिस्कन्ध ज्यौतिषका संहिताप्रकरण (विविध उपयोगी विषयोंका वर्णन)

सनन्दनजी बोले—नारदजी! चैत्रादि मासोंमें क्रमशः मेषादि राशियोंमें सूर्यकी संक्रान्ति होती है[1]। चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके आरम्भमें जो वार (दिन) हो, वही ग्रह उस (चान्द्र) वर्षका राजा होता है। सूर्यके मेषराशि-प्रवेशके समय जो वार हो, वह सेनापति (या मन्त्री) होता है। कर्क राशिकी संक्रान्तिके समय जो वार हो, वह सस्य (धान्य)-का अधिपति होता है। उक्त वर्ष आदिका

१. जैसे मेषमें सूर्यके रहते जो अमावास्या होती है, वहाँ चैत्रकी समाप्ति समझी जाती है एवं वृषादिके सूर्यमें वैशाखादि मास समझना चाहिये।

अधिपति यदि सूर्य हो तो वह मध्यम (शुभ और अशुभ दोनों) फल देता है। चन्द्रमा हो तो उत्तम फल देता है। मङ्गल अधिपति हो तो अनिष्ट (अशुभ) फल देनेवाला होता है। बुध, गुरु और शुक्र—ये तीनों अति उत्तम (शुभ) फलकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं। शनि अधिपति हो तो अशुभ फल होता है। इन ग्रहोंके बलाबल देखकर तदनुसार इनके न्यून या पूर्ण फल समझने चाहिये॥ १—३॥

(धूमकेतु—पुच्छलतारा आदिके फल—) यदि कदाचित् कहींसे सूर्य-मण्डलमें दण्ड (लाठी), कबन्ध (मस्तकहीन शरीर) कौआ या कीलके आकारवाले केतु (चिह्न) देखनेमें आवे, तो वहाँ व्याधि, भ्रान्ति तथा चोरोंके उपद्रवसे धनका नाश होता है। छत्र, ध्वज, पताका या सजल मेघखण्ड-सदृश अथवा स्फुलिङ्ग (अग्निकण) सहित धूम सूर्यमण्डलमें दीख पड़े, तो उस देशका नाश होता है। शुक्ल, लाल, पीला अथवा काला सूर्यमण्डल दीखनेमें आवे, तो क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णोंको पीड़ा होती है। मुनिवर! यदि दो, तीन या चार प्रकारके रंग सूर्यमण्डलमें दीख पड़ें, तो राजाओंका नाश होता है। यदि सूर्यकी ऊर्ध्वगामिनी किरण लाल रंगकी दीख पड़े, तो सेनापतिका नाश होता है। यदि उसका पीला वर्ण हो तो राजकुमारका, श्वेत वर्ण हो तो राजपुरोहितका तथा उसके अनेक वर्ण हों तो प्रजाजनोंका नाश होता है। इसी तरह धूम्र वर्ण हो तो राजाका और पिशङ्ग (कपिल) वर्ण हो तो मेघका नाश होता है। यदि सूर्यकी उक्त किरणें नीचेकी ओर हों, तो संसारका नाश होता है॥ ४—७ $\frac{1}{2}$॥

सूर्य शिशिर ऋतु (माघ-फाल्गुन)-में ताँबेके समान (लाल) दीख पड़े, तो संसारके लिये शुभ (कल्याणकारी) होता है। ऐसे ही वसन्त (चैत्र-वैशाख)-में कुंकुमवर्ण, ग्रीष्ममें पाण्डु (श्वेत-पीत-मिश्रित)-वर्ण, वर्षामें अनेक वर्ण, शरद्-ऋतुमें कमलवर्ण तथा हेमन्तमें रक्तवर्णका सूर्यबिम्ब दिखायी दे, तो उसे शुभप्रद समझना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ नारद! यदि शीतकालमें (अगहनसे फाल्गुनतक) सूर्यका बिम्ब पीला, वर्षामें (श्रावणसे कार्तिकतक) श्वेत (उजला) तथा ग्रीष्ममें (चैत्रसे आषाढ़तक) लाल रंगका दीख पड़े, तो क्रमसे रोग, अवर्षण तथा भय उपस्थित करनेवाला होता है। यदि कदाचित् सूर्यका आधा बिम्ब इन्द्रधनुषके सदृश दीख पड़े तो राजाओंमें परस्पर विरोध बढ़ता है। खरगोशके रक्तके सदृश सूर्यका वर्ण हो तो शीघ्र ही राजाओंमें महायुद्ध प्रारम्भ होता है। यदि सूर्यका वर्ण मोरकी पाँखके समान हो, तो वहाँ बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं होती है। यदि सूर्य कभी चन्द्रमाके समान दिखायी दे, तो वहाँके राजाको जीतकर दूसरा राजा राज्य करता है। यदि सूर्य श्याम रंगका दीख पड़े तो कीड़ोंका भय होता है। भस्म समान दीख पड़े तो समूचे राज्यपर भय उपस्थित होता है और यदि सूर्यमण्डलमें छिद्र दिखायी दे, तो वहाँके सबसे बड़े सम्राट्की मृत्यु होती है। कलशके समान आकारवाला सूर्य देशमें भूखमरीका भय उपस्थित करता है। तोरण-सदृश आकारवाला सूर्य ग्राम तथा नगरोंका नाशक होता है। छत्राकार सूर्य उदित हो तो देशका नाश और सूर्य-बिम्ब खण्डित दीख पड़े तो राजाका नाश होता है॥ ८—१४॥

यदि सूर्योदय या सूर्यास्तके समय बिजलीकी गड़गड़ाहट और वज्रपात एवं उल्कापात हो तो राजाका नाश या राजाओंमें परस्पर युद्ध होता है। यदि पंद्रह या साढ़े सात दिनतक दिनमें सूर्यपर तथा रातमें चन्द्रमापर परिवेष (मण्डल) हो अथवा उदय और अस्त-समयमें वह अत्यन्त रक्तवर्णका दिखायी दे, तो राजाका परिवर्तन होता

है ॥ १५-१६ ॥ उदय या अस्तके समय यदि सूर्य शस्त्रके समान आकारवाले या गदहे, ऊँट आदिके सदृश अशुभ आकारवाले मेघसे खण्डित-सा प्रतीत हो तो राजाओंमें युद्ध होता है ॥ १७ ॥

(**चन्द्रशृङ्गोन्नति-फल—**) मीन तथा मेष राशिमें यदि (द्वितीया-तिथिको उदयकालमें) चन्द्रमाका दक्षिण शृङ्ग उन्नत (ऊपर उठा) हो तो वह शुभप्रद होता है। मिथुन और मकरमें यदि उत्तर शृङ्ग उन्नत हो तो उसे श्रेष्ठ समझना चाहिये। कुम्भ और वृषमें यदि दोनों शृङ्ग सम हों तो शुभ है। कर्क और धनुमें यदि शृङ्ग शरसदृश हो तो शुभ है। वृश्चिक और सिंहमें भी धनुष-सदृश हो तो शुभ है तथा तुला और कन्यामें यदि चन्द्रमाका शृङ्ग शूलके सदृश दीख पड़े तो शुभ फल समझना चाहिये। इससे विपरीत स्थितिमें चन्द्रमाका उदय हो तो उस मासमें पृथ्वीपर दुर्भिक्ष, राजाओंमें परस्पर विरोध तथा युद्ध आदि अशुभ फल प्रकट होते हैं ॥ १८-१९½ ॥

पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, मूल और ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें चन्द्रमा यदि दक्षिण दिशामें हो[1] तो जलचर, वनचर और सर्पका नाश तथा अग्निका भय होता है। विशाखा और अनुराधामें यदि दक्षिणभागमें हो तो पापफल देनेवाला होता है। मघा और विशाखामें यदि चन्द्रमा मध्यभागमें होकर चले तो भी सौम्य (शुभ)-प्रद होता है। रेवतीसे मृगशिरापर्यन्त ६ नक्षत्र 'अनागत', आर्द्रासे अनुराधापर्यन्त बारह नक्षत्र 'मध्ययोगी' और वासव (ज्येष्ठा) से नौ नक्षत्र 'गतयोगी' हैं। इनमें भी चन्द्रमा उत्तर भागमें रहनेपर शुभप्रद होता है ॥ २०—२२½ ॥

भरणी, ज्येष्ठा, आश्लेषा, आर्द्रा, शतभिषा और स्वाती ये अर्धभोग (४०० कला), ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी), पुनर्वसु और विशाखा—ये सार्धैकभोग (१२०० कला) तथा अन्य नक्षत्र सम (पूर्ण) भोग (८०० कला) हैं[2]। साधारणतया चन्द्रमाकी दक्षिण शृङ्गोन्नति अशुभ और उत्तर शृङ्गोन्नति शुभप्रद है। तिथिके अनुसार चन्द्रमामें शुक्ल न होकर यदि शुक्लतामें हानि (कमी) हो तो प्रजाके कार्योंमें हानि और शुक्लतामें वृद्धि (अधिकता) हो तो प्रजाजनकी वृद्धि होती है[3]। समतामें समता समझनी चाहिये। यदि चन्द्रमाका विम्ब मध्यम मानसे विशाल (बड़ा) देखनेमें आवे तो सुभिक्षकारक (सस्ती लानेवाला) और छोटा दीख पड़े तो दुर्भिक्षकारक (महँगी या अकाल लानेवाला) होता है। चन्द्रमाका शृङ्ग अधोमुख हो तो शस्त्रका भय लाता है। दण्डाकार हो तो कलह (राजा-प्रजामें युद्ध) होता है। चन्द्रमाका शृङ्ग अथवा विम्ब मङ्गलादि ग्रहों (मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि)-से आहत (भेदित) दीख पड़े तो क्रमशः क्षेम, अन्नादि, वर्षा, राजा और प्रजाका नाश होता है ॥ २३—२६½ ॥

(**भौम-चार-फल—**) जिस नक्षत्रमें मङ्गलका उदय हो, उससे सातवें, आठवें या नवें नक्षत्रमें

---

१. दिशाका ज्ञान तात्कालिक शरके ज्ञानसे होता है। इसकी विधि पृष्ठ २३६ में देखिये।

२. राशि-मण्डलमें सब नक्षत्रोंका भोग ८०० कलाके बराबर है। परंतु प्रत्येक नक्षत्रविभागमें योगताराका स्थान जहाँ पड़ता है, वहाँ उसका भोग-स्थान कहलाता है। वह छः नक्षत्रोंमें मध्यभागमें पड़ता है और छः नक्षत्रोंमें आगे बढ़ जाता है। जिसका वास्तविक मान क्रमसे ३९५ कला १७ विकला और ११८५ कला ५२ विकला है, जो स्वल्पान्तरसे ४०० और १२०० मान लिये गये हैं। क्रमशः इन्हें ही 'अनागत' और 'गतयोगी' कहा गया है। शेष नक्षत्रोंके भोगस्थान अन्तिमांशमें ही पड़ते हैं; अतः इनके मान ८०० कला हैं। ये ही मध्ययोगी हैं।

३. प्रतिपदाके अन्तमें (शुक्ल-द्वितीयारम्भमें) चन्द्रमा दृश्य हो तो समता, उससे पश्चात् दृश्य हो तो हानि और पूर्व दृश्य हो तो वृद्धि समझी जाती है।

वक्र हो तो वह 'उष्ण' नामक वक्र होता है। उसमें प्रजाको पीड़ा और अग्निका भय प्राप्त होता है। यदि उदयके नक्षत्रसे दसवें, ग्यारहवें तथा बारहवें नक्षत्रमें मङ्गल वक्र हो तो वह 'अश्वमुख' नामक वक्र होता है। उसमें अन्न और वर्षाका नाश होता है। यदि तेरहवें या चौदहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो 'व्यालमुख' वक्र कहलाता है। उसमें भी अन्न और वर्षाका नाश होता है। पंद्रहवें या सोलहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो 'रुधिरमुख' वक्र कहलाता है। उसमें मङ्गल दुर्भिक्ष, क्षुधा तथा रोगको बढ़ाता है। सत्रहवें या अट्ठारहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो वह 'मुसल' नामक वक्र होता है। उससे धन-धान्यका नाश तथा दुर्भिक्षका भय होता है। यदि मङ्गल पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उदित होकर उत्तराषाढ़में वक्र हो तथा रोहिणीमें अस्त हो तो तीनों लोकोंके लिये नाशकारी होता है। यदि मङ्गल श्रवणमें उदित होकर पुष्यमें वक्रगति हो तो धनकी हानि करनेवाला होता है॥ २७—३३॥

मङ्गल जिस दिशामें उदित होता है, उस दिशाके राजाके लिये भयकारक होता है। यदि मघा-नक्षत्रके मध्य होकर चलता हुआ मङ्गल उसीमें वक्र हो जाय तो अवर्षण (वर्षाका अभाव) और शस्त्रका भय लाता है तथा राजाके लिये विनाशकारी होता है। यदि मङ्गल मघा, विशाखा या रोहिणीके योगताराका भेदन करके चले तो दुर्भिक्ष, मरण तथा रोग लानेवाला होता है। उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, मूल, श्रवण और मृगशिरा—इन नक्षत्रोंके बीचमें तथा रोहिणीके दक्षिण होकर मङ्गल चले तो अनावृष्टिकारक होता है। मङ्गल सब नक्षत्रोंके उत्तर होकर चले तो शुभप्रद है और दक्षिण होकर चले तो अशुभ फल देनेवाला तथा प्रजामें कलह उत्पन्न करनेवाला होता है॥ ३४—३७ $\frac{1}{2}$॥

(बुध-चार-फल—) यदि कदाचित् आँधी, मेघ आदि उत्पात न होनेपर (शुद्ध आकाशमें) भी बुधका उदय देखनेमें न आवे तो अनावृष्टि, अग्निभय, अनर्थ और राजाओंमें युद्धकी सम्भावना समझनी चाहिये। धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराषाढ़, मृगशिरा और रोहिणीमें चलता हुआ बुध यदि उन नक्षत्रोंके योगताराओंका भेदन करे तो वह लोकमें बाधा और अनावृष्टि आदिके द्वारा भयकारी होता है। यदि आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा और मघा—इन नक्षत्रोंमें बुध दृश्य हो तो दुर्भिक्ष, कलह, रोग तथा अनावृष्टि आदिका भय उपस्थित करनेवाला होता है। हस्तसे छः (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा तथा ज्येष्ठा) नक्षत्रोंमें बुधके रहनेसे लोकमें कल्याण, सुभिक्ष तथा आरोग्य होता है। उत्तर भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, कृत्तिका और भरणीमें विचरनेवाला बुध वैद्य, घोड़े और व्यापारियोंका नाश करनेवाला होता है। पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ और पूर्व भाद्रपदमें विचरता हुआ बुध यदि इन नक्षत्रोंके योगताराओंका भेदन करे तो क्षुधा, शस्त्र, अग्नि और चोरोंसे प्राणियोंको भय प्राप्त होता है॥ ३८—४३ $\frac{1}{2}$॥

भरणी, कृत्तिका, रोहिणी और स्वाती—इन नक्षत्रोंमें बुधकी गति 'प्राकृतिकी' कही गयी है। आर्द्रा, मृगशिरा, आश्लेषा और मघा—इन नक्षत्रोंमें बुधकी गति 'मिश्रा' मानी गयी है। पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, पुष्य और पुनर्वसु—इनमें बुधकी 'संक्षिप्ता' गति कही गयी। पूर्व भाद्रपद, उत्तर भाद्रपद, रेवती और अश्विनी—इनमें बुधकी 'तीक्ष्णा' गति होती है। उत्तराषाढ़, पूर्वाषाढ़ और मूलमें उनकी 'योगान्तिका' गति मानी गयी है। श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा और शतभिषामें 'घोरा' गति और विशाखा, अनुराधा तथा हस्त—इन नक्षत्रोंमें बुधकी 'पाप' संज्ञक गति होती है। इन प्राकृत आदि सात

प्रकारकी गतियोंमें उदित होनेपर जितने दिनतक बुध दृश्य रहता है, उतने ही दिन उनमें अस्त होनेपर अदृश्य रहता है। उन दिनोंकी संख्या क्रमसे ४०, ३०, २२, १८, ९, १५ और ११ है। बुध जब प्राकृत गतिमें रहता है, तब संसारमें कल्याण, आरोग्य और सुभिक्ष (अन्न-वस्त्र आदिकी वृद्धि) करता है। मिश्र और संक्षिप्त गतिमें मध्यम फल देता है तथा अन्य गतियोंमें अनावृष्टि (दुर्भिक्ष)-कारक होता है। वैशाख, श्रावण, पौष और आषाढ़में उदित होनेपर बुध पापरूप फल देता है और अन्य मासोंमें उदित होनेपर वह शुभ फल देता है। आश्विन और कार्तिकमें बुधका उदय हो तो शस्त्र, दुर्भिक्ष और अग्निका भय प्राप्त होता है। यदि उदित हुए बुधकी कान्ति चाँदी अथवा स्फटिकके समान स्वच्छ हो तो वह श्रेष्ठ फल देनेवाला होता है॥ ४४—५२॥

(बृहस्पति-चार-फल—) कृत्तिका आदि दो-दो नक्षत्रोंके आश्रयसे कार्तिक आदि मास होते हैं; परंतु अन्तिम (आश्विन), पञ्चम (फाल्गुन) और एकादश (भाद्रपद)—ये तीन नक्षत्रोंसे पूर्ण होते हैं[1]। इसी प्रकार बृहस्पतिका जिन नक्षत्रोंमें उदय होता है, उन नक्षत्रोंसे (मासके अनुसार ही) संवत्सरोंके नाम होते हैं। उन संवत्सरोंमें कार्तिक और मार्गशीर्ष नामक संवत्सर प्राणियोंके लिये अशुभ फलदायक होते हैं। पौष और माघ नामक संवत्सर शुभ फल देनेवाले होते हैं। फाल्गुन और चैत्र नामक संवत्सर मध्यम (शुभ-अशुभ दोनों) फल देते हैं। वैशाख शुभप्रद और ज्येष्ठ मध्यम फल देनेवाला होता है। आषाढ़ मध्यम और श्रावण श्रेष्ठ होता है तथा भाद्रपद भी कभी श्रेष्ठ होता है और कभी नहीं होता; परंतु आश्विन संवत्सर तो प्रजाजनोंके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार संवत्सरोंका फल समझना चाहिये॥ ५३—५५½॥

बृहस्पति जब नक्षत्रोंके उत्तर होकर चलता है, तब संसारमें कल्याण, आरोग्य तथा सुभिक्ष करनेवाला होता है। जब नक्षत्रोंके दक्षिण होकर चलता है, तब विपरीत परिणाम (अशुभ, रोगवृद्धि तथा दुर्भिक्ष) उपस्थित करता है तथा जब मध्य होकर चलता है, उस समय मध्यम फल प्रस्तुत करता है। गुरुका विम्ब यदि पीतवर्ण, अग्निसदृश, श्याम, हरित और लाल दिखायी दे तो प्रजाजनोंमें क्रमशः व्याधि, अग्नि, चोर, शस्त्र और अस्त्र[2]का भय उपस्थित होता है। यदि गुरुका वर्ण धूएँके

---

१. कृत्तिका आदि नक्षत्रोंमें पूर्णिमा होनेसे मासोंके कार्तिक आदि नाम होते हैं। नीचे चक्रमें देखिये—

कार्तिक	मार्गशीर्ष	पौष	माघ	फाल्गुन	चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्रपद	आश्विन
कृत्तिका रोहिणी	मृगशिरा आर्द्रा	पुनर्वसु पुष्य	आश्लेषा मघा	पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी हस्त	चित्रा स्वाती	विशाखा अनुराधा	ज्येष्ठा मूल	पूर्वाषाढ़ उत्तराषाढ़	श्रवण धनिष्ठा	शतभिषा पूर्व भाद्रपद उत्तर भाद्रपद	रेवती अश्विनी भरणी
२	२	२	२	३	२	२	२	२	२	३	३

२. जो हाथमें धारण किये हुए ही चलाया जाता है, वह शस्त्र है; जैसे तलवार आदि; तथा जो हाथसे फेंककर चलाया जाता है, वह अस्त्र कहलाता है, जैसे बाण और बंदूककी गोली आदि।

समान हो तो वह अनावृष्टिकारक होता है। यदि गुरु दिनमें (प्रातः-सायं छोड़कर) दृश्य हो तो राजाका नाश, रोगभय अथवा राष्ट्रका विनाश होता है। कृत्तिका तथा रोहिणी ये संवत्सरके शरीर हैं। पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ ये दोनों नाभि हैं, आर्द्रा हृदय और मघा संवत्सरका पुष्प है। यदि शरीर पापग्रहसे पीड़ित हो तो दुर्भिक्ष, अग्नि और वायुका भय उपस्थित होता है। नाभि पापग्रहसे युक्त हो तो क्षुधा और तृषासे पीड़ा होती है। पुष्प पापग्रहसे आक्रान्त हो तो मूल और फलोंका नाश होता है। यदि हृदय-नक्षत्र पापग्रहसे पीडित हो तो अन्नादिका नाश होता है। शरीर आदि शुभग्रहसे संयुक्त हों तो सुभिक्ष और कल्याणादि शुभ फल प्राप्त होते हैं॥ ५६—६१॥ यदि मघा आदि नक्षत्रोंमें बृहस्पति हो तो वह क्रमशः शस्य-वृद्धि, प्रजामें आरोग्य, युद्ध, अनावृष्टि, द्विजातियोंको पीड़ा, गौओंको सुख, राजाओंको सुख, स्त्री-समाजको सुख, वायुका अवरोध, अनावृष्टि, सर्पभय, सुवृष्टि, स्वास्थ्य, उत्सववृद्धि, महार्घ, सम्पत्तिकी वृद्धि, देशका नाश, अतिवृष्टि, निर्वैरता, रोग-वृद्धि, भयकी हानि, रोगभय, अन्नकी वृद्धि, वर्षा, रोगकी वृद्धि, धान्यकी वृद्धि और अनावृष्टिरूप फल देता है॥ ६२—६४॥

(**शुक्र-चार-फल—**) शुक्रके तीन मार्ग हैं—सौम्य (उत्तरा), मध्य और याम्य (दक्षिण)। इनमेंसे प्रत्येकमें तीन-तीन वीथियाँ हैं और एक-एक वीथीमें बारी-बारीसे तीन-तीन नक्षत्र आते हैं। इन नक्षत्रोंको अश्विनीसे आरम्भ करके जानना चाहिये। इस प्रकार उत्तरसे दक्षिणतक शुक्रके मार्गमें क्रमशः नाग, इभ, ऐरावत, वृष, उष्ट्र, खर, मृग, अज तथा दहन—ये नौ वीथियाँ हैं[1]॥ ६५-६६॥ उत्तरमार्गकी तीन वीथियोंमें विचरण करनेवाला शुक्र धान्य, धन, वृष्टि और शस्य (अन्नकी फस्ल)—इन सब वस्तुओंको पुष्ट एवं परिपूर्ण करता है। मध्यमार्गकी जो तीन वीथियाँ हैं, उनमें शुक्रके जानेसे सब अशुभ ही फल प्राप्त होते हैं। मघासे पाँच नक्षत्रोंमें जब शुक्र जाता है तो पूर्व दिशामें उठा हुआ मेघ सुवृष्टिकारक तथा शुभप्रद होता है। स्वातीसे तीन नक्षत्रतक जब शुक्र रहता है तब पश्चिम दिशा (देश)-में मेघ सुवृष्टिकारक और शुभदायक होता है। शेष सब नक्षत्रोंमें उसका फल विपरीत (अनावृष्टि और दुर्भिक्ष करनेवाला) होता है। शुक्र जब बुधके साथ रहता है तो सुवृष्टिकारक होता है। कृष्णपक्षकी अष्टमी, चतुर्दशी और अमावास्यामें यदि शुक्रका उदय या अस्त हो तो पृथ्वी जलसे परिपूर्ण होती है। गुरु और शुक्र परस्पर सप्तम राशिमें हों तथा एक पूर्व वीथीमें और दूसरा पश्चिम वीथीमें

---

१. शुक्रके ३ मार्ग और ९ वीथियाँ इस प्रकार हैं—

मार्ग	सौम्य १		मध्यम २				याम्य ३		
नक्षत्र	अश्विनी भरणी कृत्तिका	रोहिणी मृगशिरा आर्द्रा	पुनर्वसु पुष्य आश्लेषा	मघा पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी	हस्त चित्रा स्वाती	विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा	मूल पूर्वाषाढ़ उत्तराषाढ़	श्रवण धनिष्ठा शतभिषा	पूर्वभाद्रपद उत्तर भाद्रपद रेवती
वीथि	१ नाग	२ इभ	३ ऐरावत	४ वृष	५ उष्ट्र	६ खर	७ मृग	८ अज	९ दहन

विद्यमान हो तो वे दोनों देशमें अनावृष्टि तथा दुर्भिक्ष लानेवाले और राजाओंमें परस्पर युद्ध करानेवाले होते हैं। मङ्गल, बुध, गुरु और शनि यदि शुक्रसे आगे होते हैं तो युद्ध, अतिवायु, दुर्भिक्ष और अनावृष्टि करनेवाले होते हैं॥ ६७—७२॥ पूर्वाषाढ़, अनुराधा, उत्तरा फाल्गुनी, आश्लेषा, ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें शुक्र हो तो वह सुभिक्षकारक होता है। मूलमें हो तो शस्त्रभय और अनावृष्टि देनेवाला होता है। उत्तर भाद्रपद और रेवतीमें शुक्रके रहनेपर भय प्राप्त होता है॥ ७३॥

(शनि-चार-फल—) श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और पूर्वा फाल्गुनी—इन नक्षत्रोंमें विचरनेवाला शनि मनुष्योंके लिये सुभिक्ष, आरोग्य तथा खेतीकी उपज बढ़ानेवाला होता है॥ ७४॥ जन्मनक्षत्रसे प्रारम्भ करके मनुष्याकृति शनि-चक्रके मुखमें एक, गुदामें दो, सिरमें तीन, नेत्रोंमें दो, हृदयमें पाँच, बायें हाथमें चार, बायें पैरमें तीन, दक्षिण पादमें तीन तथा दक्षिण हाथमें चार—इस तरह नक्षत्रोंकी स्थापना करे। शनिका वर्तमान नक्षत्र जिस अङ्गमें पड़े, उसका फल निम्नलिखितरूपसे जानना चाहिये। शनि-नक्षत्र मुखमें हो तो रोग, गुदामें हो तो लाभ, सिरमें हो तो हानि, नेत्रमें हो तो लाभ, हृदयमें हो तो सुख, बायें हाथमें हो तो बन्धन, बायें पैरमें हो तो परिश्रम, दाहिने पैरमें हो तो श्रेष्ठ यात्रा और दाहिने हाथमें हो तो धन-लाभ होता है। इस प्रकार क्रमशः फल कहे गये हैं॥ ७५—७७॥ बहुधा वक्रगामी होनेपर शनि इन फलोंकी प्राप्ति कराता ही है। यदि वह सम मार्गपर हो तो फल भी मध्यम होता है और यदि वह शीघ्रगति हो तो उत्तम फल प्राप्त होते हैं॥ ७८॥

(राहु-चार-फल—) भगवान् विष्णुने अपने चक्रसे राहुका मस्तक काट दिया तो भी अमृत पी लेनेके कारण उसकी मृत्यु नहीं हुई; अतः उसे ग्रहके पदपर प्रतिष्ठित कर लिया गया॥ ७९॥ वह ब्रह्माजीके वरसे सम्पूर्ण पर्वों (पूर्णिमा और अमावास्या)-के समय चन्द्रमा और सूर्यको पीड़ा देता है; किंतु 'शर' तथा 'अवनति' अधिक होनेके कारण वह उन दोनोंसे दूर ही रहता है॥ ८०॥ एक सूर्यग्रहणके बाद दूसरे सूर्यग्रहणका तथा एक चन्द्रग्रहणके बाद दूसरे चन्द्रग्रहणका विचार छः मासपर पुनः कर लेना चाहिये। प्रति छः मासपर क्रमशः ब्रह्मादि सात देवता पर्वेश (ग्रहणके अधिपति) होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—ब्रह्मा, चन्द्रमा, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि तथा यम। ब्राह्मपर्वमें ग्रहण होनेपर पशु, धान्य और द्विजोंकी वृद्धि होती है॥ ८१-८२॥ चन्द्रपर्वमें ग्रहण हो तो भी ऐसा ही फल होता है; विशेषता इतनी ही है कि लोगोंको कफसे पीड़ा होती है। इन्द्रपर्वमें ग्रहण होनेपर राजाओंमें विरोध, जगत्‌में दुःख तथा खेती-बारीका नाश होता है। वारुणपर्वमें ग्रहण होनेपर राजाओंका अकल्याण और प्रजाजनोंका कल्याण होता है॥ ८३-८४॥ अग्निपर्वमें ग्रहण हो तो वृष्टि, धान्यवृद्धि तथा कल्याणकी प्राप्ति होती है और यमपर्वमें ग्रहण होनेपर वर्षाका अभाव, खेतीकी हानि तथा दुर्भिक्षरूप फल प्राप्त होते हैं॥ ८५॥ वेलाहीन समयमें अर्थात् वेलासे पहले ग्रहण हो तो खेतीकी हानि तथा राजाओंको दारुण भय प्राप्त होता है और 'अतिवेल' कालमें अर्थात् वेला बिताकर ग्रहण हो[१] तो फूलोंकी हानि होती है,

१. गणितसे ग्रहणका जो समय प्राप्त होता हो उससे पहले ग्रहण होना 'वेलाहीन' है और उसे बिताकर जो ग्रहण होता है, वह 'अतिवेल' कहलाता है।

जगत्‌में भय होता है और खेती चौपट हो जाती है॥ ८६॥ जब एक ही मासमें चन्द्रमा-सूर्य—दोनोंका ग्रहण हो तो राजाओंमें विरोध होता है तथा धन और वृष्टिका विनाश होता है॥ ८७॥ ग्रहण लगे हुए चन्द्रमा और सूर्यका उदय अथवा अस्त हो तो वे राजाओं और धान्योंका विनाश करनेवाले होते हैं। यदि चन्द्रमा और सूर्यका सर्वग्रास ग्रहण हो तो वे भूखमरी, रोग तथा अग्निका भय उपस्थित करनेवाले होते हैं॥ ८८॥ उत्तरायणमें ग्रहण हो तो ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी हानि होती है तथा दक्षिणायनमें ग्रहण होनेपर अन्य वर्णके लोगोंको हानि पहुँचती है। सूर्य या चन्द्रमाके विम्बके उत्तर, पूर्व आदि भागमें यदि राहुका दर्शन हो (स्पर्श देखनेमें आवे) तो वह क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको हानि पहुँचाता है॥ ८९॥ इसी तरह ग्रहणके समय ग्रासके और मोक्षके भी दस-दस भेद होते हैं; जिनकी सूक्ष्म गतिको देवता भी नहीं जान सकते, फिर साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या है॥ ९०॥ गणितद्वारा ग्रहोंको लाकर उनके 'चार' (गतिमान, स्पर्श और मोक्ष कालकी स्थिति)-पर विचार करना चाहिये। जिससे उन ग्रहोंद्वारा ग्रहणकालके शुभ और अशुभ लक्षण (फल)-को हम देख और जान सकें॥ ९१॥ अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उस समयका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अनुसंधान करे। धूम-केतु आदि तारोंका उदय और अस्त मनुष्योंके लिये उत्पातरूप होता है॥ ९२॥ वे उत्पात दिव्य, भौम और अन्तरिक्ष भेदसे तीन प्रकारके हैं। वे शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके फल देनेवाले हैं। आकाशमें यज्ञकी ध्वजा, अस्त्र-शस्त्र, भवन और बड़े हाथीके सदृश तथा खंभा, त्रिशूल और अङ्कुश—इन वस्तुओंके समान जो केतु दिखायी देते हैं, उन्हें 'आन्तरिक्ष' उत्पात कहते हैं। साधारण ताराके समान उदित होकर किसी नक्षत्रके साथ केतु हो तो 'दिव्य' उत्पात कहा गया है। भूलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले (भूकम्प आदि) उत्पातोंको 'भौम' उत्पात कहते हैं॥ ९३-९४॥ केतुतारा एक होकर भी प्राणियोंको अशुभ फल देनेके लिये भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है। जितने दिनोंतक आकाशमें विविधरूपधारी केतु देखनेमें आता है, उतने ही मास या सौर वर्षोंतक वह अपना शुभाशुभ फल देता है। जो दिव्य केतु हैं, वे सदा प्राणियोंको विविध फल देनेवाले होते हैं॥ ९५-९६॥ ह्रस्व, चिकना और प्रसन्न (स्वच्छ) श्वेत रङ्गका केतु सुवृष्टि देता है। शीघ्र अस्त होनेवाला विशाल केतु अवृष्टि देता है॥ ९७॥ इन्द्रधनुषके समान कान्तिवाला धूमकेतु तारा अनिष्ट फल देता है। दो, तीन या चार रूपोंमें प्रकट त्रिशूलके समान आकारवाला केतु राष्ट्रका विनाशक होता है॥ ९८॥ पूर्व तथा पश्चिम दिशामें सूर्य-सम्बन्धी केतु मणि, हार एवं सुवर्णके समान देदीप्यमान दिखायी दे तो उन दिशाओंके राजाओंको हानि होती है॥ ९९॥ पलाश, विम्बफल, रक्त और तोतेकी चोंच आदिके समान वर्णका केतु अग्निकोणमें उदित हो तो शुभ फल देनेवाला होता है॥ १००॥ भूमिसम्बन्धी केतुओंकी कान्ति जल एवं तेलके समान होती है। वे भूखमरीका भय देनेवाले हैं। चन्द्रजनित केतुओंका वर्ण श्वेत होता है। वे सुभिक्ष और कल्याण प्रदान करनेवाले होते हैं॥ १०१॥ ब्रह्मदण्डसे उत्पन्न तथा तीन रंग और तीन अवस्थाओंसे युक्त धूमकेतु नामक पितामहजनित (आन्तरिक्ष) केतु प्रजाओंका विनाश करनेवाला माना गया है॥ १०२॥ यदि ईशानकोणमें श्वेतवर्णके शुक्रजनित केतु उदित हों तो वे अनिष्ट फल देनेवाले होते हैं। शिखारहित एवं कनकनामसे प्रसिद्ध शनैश्चरसम्बन्धी केतु भी अनिष्ट फलदायक हैं॥ १०३॥ गुरुसम्बन्धी

केतुओंकी विकच संज्ञा है। वे दक्षिण दिशामें प्रकट होनेपर भी अभीष्ट साधक माने गये हैं। उसी दिशामें सूक्ष्म तथा शुक्लवर्णवाले बुधसम्बन्धी केतु हों तो वे चोर तथा रोगका भय प्रदान करनेवाले हैं॥ १०४॥ कुङ्कुनामसे प्रसिद्ध मङ्गल-सम्बन्धी केतु लाल रंगके होते हैं। उनकी आकृति सूर्यके समान होती है। वे भी उक्त दिशामें उदित होनेपर अनिष्टदायक होते हैं। अग्निके समान कान्तिवाले अग्निसम्बन्धी केतु विश्वरूप नामसे प्रसिद्ध हैं। वे अग्निकोणमें उदित होनेपर सुखद होते हैं॥ १०५॥ श्याम वर्णवाले सूर्यसम्बन्धी केतु अरुण कहलाते हैं। वे पाप अर्थात् दुःख देनेवाले होते हैं। रीछके समान रंगवाले शुक्रसम्बन्धी केतु शुभदायक होते हैं॥ १०६॥ कृत्तिका तारामें उदित हुआ धूमकेतु निश्चय ही प्रजाजनोंका नाश करता है। राजमहल, वृक्ष और पर्वतपर प्रकट हुआ केतु राजाओंका नाश करनेवाला होता है॥ १०७॥ कुमुद पुष्पके समान वर्णवाला कौमुद नामक केतु सुभिक्ष लानेवाला होता है। संध्याकालमें मस्तकसहित उदित हुआ गोलाकार केतु अनिष्ट फल देनेवाला होता है॥ १०८॥

(**कालमान—**) ब्राह्म, दैव, मानव, पित्र्य, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र तथा बार्हस्पत्य—ये नौ मान होते हैं॥ १०९॥ इस लोकमें इन नौ मानोंमेंसे पाँचके ही द्वारा व्यवहार होता है। किंतु उन नवों मानोंका व्यवहारके अनुसार पृथक्-पृथक् कार्य बताया जायगा॥ ११०॥ सौर मानसे ग्रहोंकी सब प्रकारकी गति (भगणादि) जाननी चाहिये। वर्षाका समय तथा स्त्रीके प्रसवका समय सावन मानसे ही ग्रहण किया जाता है॥ १११॥ वर्षोंके भीतरका घटीमान आदि नाक्षत्र मानसे ही लिया जाता है। यज्ञोपवीत, मुण्डन, तिथि एवं वर्षेशका निर्णय तथा पर्व, उपवास आदिका निश्चय चान्द्र मानसे किया जाता है। बार्हस्पत्य मानसे प्रभवादि संवत्सरका स्वरूप ग्रहण किया जाता है॥ ११२-११३॥ उन-उन मानोंके अनुसार बारह महीनोंका उनका अपना-अपना विभिन्न वर्ष होता है। बृहस्पतिकी अपनी मध्यम गतिसे प्रभव आदि नामवाले साठ संवत्सर होते हैं॥ ११४॥ प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अङ्गिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृत, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकारी, शर्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभन, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवङ्ग, कीलक, सौम्य, समान, विरोधकृत्, परिभावी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, अनल, पिङ्गल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र, दुर्मति, दुन्दुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्ष, क्रोधन तथा क्षय—ये साठ संवत्सर जानने चाहिये। ये सभी अपने नामके अनुरूप फल देनेवाले हैं। पाँच वर्षोंका युग होता है। इस तरह साठ संवत्सरोंमें बारह युग होते हैं॥ ११५—१२१॥ उन युगोंके स्वामी क्रमशः इस प्रकार जानने चाहिये—विष्णु, बृहस्पति, इन्द्र, लोहित, त्वष्टा, अहिर्बुध्न्य, पितर, विश्वेदेव, चन्द्रमा, इन्द्राग्नि, अश्विनीकुमार तथा भग। इसी प्रकार युगके भीतर जो पाँच वर्ष होते हैं, उनके स्वामी क्रमशः अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा और शिव हैं॥ १२२-१२३॥

संवत्सरके राजा, मन्त्री तथा धान्येशरूप ग्रहोंके बलाबलका विचार करके तथा उनकी तात्कालिक स्थितिको भी भलीभाँति जानकर संवत्सरका फल समझना चाहिये॥ १२४॥ मकरादि छः राशियोंमें छः मासतक सूर्यके भोगसे सौम्यायन (उत्तरायण) होता है। वह देवताओंका दिन और कर्कादि छः राशियोंमें छः मासतक सूर्यके भोगसे दक्षिणायन होता है, वह देवताओंकी रात्रि है॥ १२५॥ गृहप्रवेश,

विवाह, प्रतिष्ठा तथा यज्ञोपवीत आदि शुभकर्म माघ आदि उत्तरायणके मासोंमें करने चाहिये॥ १२६॥ दक्षिणायनमें उक्त कार्य गर्हित (त्याज्य) माना गया है, अत्यन्त आवश्यकता हो तो उस समय पूजा आदि यत्न करनेसे शुभ होता है[1]। माघसे दो-दो मासोंकी शिशिरादि छः ऋतुएँ होती हैं॥ १२७॥ मकरसे दो-दो राशियोंमें सूर्यभोगके अनुसार क्रमशः शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म—ये तीन ऋतुएँ उत्तरायणमें होती हैं और कर्कसे दो-दो राशियोंमें सूर्यभोगके अनुसार क्रमशः वर्षा, शरद् और हेमन्त—ये तीन ऋतुएँ दक्षिणायनमें होती हैं॥ १२८॥ शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे अमावास्यातक 'चान्द्र मास' होता है। सूर्यकी एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तितक 'सौर मास' होता है। तीस दिनोंका एक 'सावन मास' होता है और चन्द्रमाद्वारा सब नक्षत्रोंके उपभोगमें जितने दिन लगते हैं, उतने अर्थात् २७ दिनोंका एक 'नाक्षत्र मास' होता है॥ १२९॥ मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभः, नभस्य, इष, उर्ज, सहाः, सहस्य, तप और तपस्य—ये चैत्रादि बारह मासोंकी संज्ञाएँ हैं। जिस मासकी पौर्णमासी जिस नक्षत्रसे युक्त हो, उस नक्षत्रके नामसे ही उस मासका नामकरण होता है। (जैसे जिस मासकी पूर्णिमा चित्रा नक्षत्रसे युक्त होती है, उस मासका नाम 'चैत्र' होता है और वह पौर्णमासी भी उसी नामसे विख्यात होती है, जैसे चैत्री, वैशाखी आदि।) प्रत्येक मासके दो पक्ष क्रमशः देवपक्ष और पितृपक्ष हैं, अन्य विद्वान् उन्हें शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष कहते हैं॥ १३०—१३२॥ वे दोनों पक्ष शुभाशुभ कार्योंमें सदा उपयुक्त माने जाते हैं। ब्रह्मा, अग्नि, विरञ्चि, विष्णु, गौरी, गणेश, यम, सर्प, चन्द्रमा, कार्तिकेय, सूर्य, इन्द्र, महेन्द्र, वासव, नाग, दुर्गा, दण्डधर, शिव, विष्णु, हरि, रवि, काम, शंकर, कलाधर, यम, चन्द्रमा (विष्णु, काम और शिव)—ये सब शुक्ल प्रतिपदासे लेकर क्रमशः उनतीस तिथियोंके स्वामी होते हैं। अमावास्या नामक तिथिके स्वामी पितर माने गये हैं।

(तिथियोंकी नन्दादि पाँच संज्ञा—) प्रतिपदा आदि तिथियोंकी क्रमशः नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा—ये पाँच संज्ञाएँ मानी गयी हैं। पंद्रह तिथियोंमें इनकी तीन आवृत्ति करके इनका पृथक्-पृथक् ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। शुक्लपक्षमें प्रथम आवृत्तिकी (१, २, ३, ४, ५—ये) तिथियाँ अधम द्वितीय आवृत्तिकी (६, ७, ८, ९, १०—ये) तिथियाँ मध्यम और तृतीय आवृत्तिकी (११, १२, १३, १४, १५—ये) तिथियाँ शुभ होती हैं। इसी प्रकार कृष्णपक्षकी प्रथम आवृत्तिकी नन्दादि तिथियाँ इष्ट (शुभ), द्वितीय आवृत्तिकी मध्यम और तृतीय आवृत्तिकी अनिष्टप्रद (अधम) होती हैं। दोनों पक्षोंकी ८, १२, ६, ४, ९, १४—ये तिथियाँ पक्षरन्ध्र कही गयी हैं। इन्हें अत्यन्त रूक्ष कहा गया है। इनमें क्रमशः आरम्भकी ४, १४, ९, ९, २५ और ५ घड़ियाँ सब शुभ कार्योंमें त्याग देने योग्य हैं। अमावास्या और नवमीको छोड़कर अन्य सब विषम तिथियाँ (३, ५, ७, ११, १३) सब कार्योंमें प्रशस्त हैं। शुक्लपक्षकी प्रतिपदा मध्यम है (कृष्ण पक्षकी प्रतिपदा शुभ है)।

षष्ठीमें तैल, अष्टमीमें मांस[2] चतुर्दशीमें क्षौर एवं पूर्णिमा और अमावास्यामें स्त्रीका सेवन त्याग दे।

---

१. 'मार्गशीर्षमपीच्छन्ति विवाहे केऽपि कोविदाः।'

'कुछ विद्वान् अगहनमें भी विवाह होना ठीक मानते हैं' इस मान्यताके अनुसार 'अगहन' में दक्षिणायन होनेपर भी विवाह हो सकता है।

२. मांस तो सबके लिये सदा ही त्याज्य है, किंतु जो मांसाहारी हैं उन्हें भी अष्टमीको तो मांस त्याग ही देना चाहिये।

अमावास्या, षष्ठी, प्रतिपदा, द्वादशी, सभी पर्व और नवमी—इन तिथियोंमें कभी दातौन नहीं करना चाहिये। व्यतीपात, संक्रान्ति, एकादशी, पर्व, रवि और मङ्गलवार तथा षष्ठी तिथि और वैधृति-योगमें अभ्यञ्जन (उबटन)-का निषेध है। जो मनुष्य दशमी तिथिमें आँवलेसे स्नान करता है, उसको पुत्रकी हानि उठानी पड़ती है। त्रयोदशीको आँवलेसे स्नान करनेपर धनका नाश होता है और द्वितीयाको उससे स्नान करनेवालोंके धन और पुत्र दोनोंका नाश होता है। इसमें संशय नहीं है। अमावास्या, नवमी और सप्तमी—इन तीन तिथियोंमें आँवलेसे स्नान करनेवालोंके कुलका विनाश होता है॥ १३३—१४४½ ॥

जो पूर्णिमा दिनमें पूर्ण चन्द्रमासे युक्त हो (अर्थात् जिसमें रात्रिके समय चन्द्रमा कलाहीन हो) वह पूर्णिमा 'अनुमती' कहलाती है और जो रात्रिमें पूर्ण चन्द्रमासे युक्त हो वह 'राका' कहलाती है। इसी प्रकार अमावास्या भी दो प्रकारकी होती है। जिसमें चन्द्रमाकी किंचित् कलाका अंश शेष रहता है, वह 'सिनीवाली' कही गयी है तथा जिसमें चन्द्रमाकी सम्पूर्ण कला लुप्त हो जाती है, वह अमावास्या 'कुहू' कहलाती है[1] ॥ १४५-१४६ ॥

(**युगादि तिथियाँ—**) कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी सत्ययुगकी आदि तिथि है (इसी दिन सत्ययुगका प्रारम्भ हुआ था), वैशाख शुक्लपक्षकी पुण्यमयी तृतीया त्रेतायुगकी आदि तिथि है। माघकी अमावास्या द्वापरयुगकी आदि तिथि और भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी कलियुगकी आदि तिथि है। (ये सब तिथियाँ अति पुण्य देनेवाली कही गयी हैं) ॥ १४७-१४८ ॥

(**मन्वादि तिथियाँ—**) कार्तिकशुक्ला द्वादशी, आश्विनशुक्ला नवमी, चैत्रशुक्ला तृतीया, भाद्रपदशुक्ला तृतीया, पौषशुक्ला एकादशी, आषाढ़शुक्ला दशमी, माघशुक्ला सप्तमी, भाद्रपदकृष्णा अष्टमी, श्रावणकी अमावास्या, फाल्गुनकी पूर्णिमा, आषाढ़की पूर्णिमा, कार्तिककी पूर्णिमा, ज्येष्ठकी पौर्णमासी और चैत्रकी पूर्णिमा—ये चौदह मन्वादि तिथियाँ हैं। ये सब तिथियाँ मनुष्योंके लिये पितृकर्म (पार्वण-श्राद्ध)-में अत्यन्त पुण्य देनेवाली हैं॥ १४९—१५१½ ॥

(**गजच्छाया-योग—**) भादोंके[2] कृष्णपक्षकी (शुक्लादि क्रमसे भाद्रकृष्ण और कृष्णादि क्रमसे आश्विन कृष्ण पक्षकी) त्रयोदशीमें यदि सूर्य हस्त-नक्षत्रमें और चन्द्रमा मघामें हो तो 'गजच्छाया' नामक योग होता है; जो पितरोंके पार्वणादि श्राद्ध कर्ममें अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाला है॥ १५२½ ॥

किसी एक दिनमें तीन तिथियोंका स्पर्श हो तो क्षयतिथि तथा एक ही तिथिका तीन दिनमें स्पर्श हो तो अधिक तिथि (अधितिथि) होती है। ये दोनों ही निन्दित हैं। जिस दिन सूर्योदयसे सूर्यास्तपर्यन्त जो तिथि रहती है, उस दिन वह 'अखण्ड तिथि' कहलाती है। यदि सूर्यास्तसे पूर्व ही समाप्त होती है तो वह 'खण्ड तिथि' कही जाती है॥ १५३½१५४ - ॥

(**क्षणतिथिकथन—**) प्रत्येक तिथिमें तिथि-मानका पंद्रहवाँ भाग 'क्षणतिथि' कहलाता है। (अर्थात् प्रत्येक तिथिमें उसी तिथिसे आरम्भ करके पंद्रह तिथियोंके अन्तर्भोग होते हैं।) तथा उन क्षणतिथियोंका भी आधा क्षण तिथ्यर्ध (क्षण

---

१. अमावास्या प्राय: दो दिन हुआ करती है। उनमें प्रथम दिनकी 'सिनीवाली' और दूसरे दिनकी 'कुहू' होती है। चतुर्दशीयुक्ता अमावास्याका क्षय न हो तो वह सिनीवाली होती है।

२. 'अमावास्यान्त' मासकी दृष्टिसे यहाँ भादोंका कृष्णपक्ष कहा गया है। जहाँ पूर्णिमान्त मास माना जाता है, वहाँके लिये इस भादोंका अर्थ आश्विन समझना चाहिये।

करण) होता है[१] ॥ १५५$\frac{१}{२}$ ॥

(वारप्रकरण—) रवि स्थिर, सोम चर, मङ्गल क्रूर, बुध अखिल (सम्पूर्ण), गुरु लघु, शुक्र मृदु और शनि तीक्ष्ण धर्मवाला है।

(वारोंमें तेल लगानेका फल—) जो मनुष्य रविवारको तेल लगाता है, वह रोगी होता है। सोमवारको तेल लगानेसे कान्ति बढ़ती है। मङ्गलको व्याधि होती है। बुधको तैलाभ्यङ्गसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है। गुरुवारको सौभाग्यकी हानि होती है, शुक्रवारको भी हानि होती है तथा शनिवारको तेल लगानेसे धन-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है ॥ १५६—१५८ ॥

(रवि आदि वारोंका आरम्भकाल—) जिस समय लङ्कामें (भूमध्यरेखापर) सूर्योदय होता है, उसी समयसे सर्वत्र रवि आदि वारोंका आरम्भ होता है। उस समयसे देशान्तर (लङ्कोदयकालसे अपने उदय कालका अन्तर) और चरार्ध घटीतुल्य आगे या पीछे अन्य देशमें सूर्योदय हुआ करता है[२] ॥ १५९ ॥ जो ग्रह बलवान् होता है, उसके वारमें जो कोई भी कार्य किया जाता है, वह सिद्ध हुआ करता है; किंतु जो ग्रह बलहीन (जातक-अध्यायमें कहे हुए बलसे रहित) होता है, उसके वारमें बहुत यत्न करनेपर भी कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥ १६० ॥ सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र सम्पूर्ण शुभ कार्योंमें शुभप्रद होते हैं, अन्य वार (शनि, रवि और मङ्गल) क्रूर कर्ममें इष्टसिद्धिदायक होते हैं ॥ १६१ ॥

सूर्यका वर्ण लाल है, चन्द्रमा गौर वर्णके हैं, मङ्गल अधिक लाल हैं, बुधकी कान्ति दूर्वादलके समान श्याम है, गुरुका वर्ण सुवर्णके सदृश पीत है, शुक्र श्वेत और शनि कृष्ण वर्णके हैं; इसलिये उन ग्रहोंके वारोंमें इनके गुण और वर्णके अनुरूप कार्य ही सिद्ध एवं हितकर होते हैं।

(निन्द्य मुहूर्त—) रविवारसे आरम्भ करके—रविमें ७, ५, ४; सोममें ६, ४, ७; मङ्गलमें ५, ३, २; बुधमें ४, २, ५; गुरुवारमें ३, १, ८; शुक्रवारमें २, ७, ३ और शनिमें १, ६, ८—ये प्रहरार्ध क्रमशः कुलिक, उपकुलिक और वारवेला कहे गये हैं। इनका मान आधे पहरका समझना चाहिये ॥ १६२—१६५ ॥

(प्रत्येक वारमें क्षणवार-कथन—) जिस वारमें क्षणवार जानना हो उस वारमें प्रथम क्षणवार उसी वारपतिका होता है। उससे छठे वारेशका द्वितीय, उससे भी छठेका तृतीय, इस प्रकार छठे-छठेके क्रमसे दिन-रातमें २४ क्षणवार (कालहोरा या होरा) होते हैं। एक-एक क्षणवारका मान ढाई-ढाई घटी

---

१. जैसे प्रतिपदाका भोगमान (आरम्भसे अन्ततक) ६० घड़ी है तो उस तिथिमें आरम्भसे ४ घड़ी प्रतिपदा है, उसके बादकी ४ घड़ी द्वितीया है और उसके बादकी ४ घड़ी तृतीया है। इसी प्रकार आगे भी चतुर्थी आदि सब तिथि प्राप्त होती है। इसी तरह द्वितीयामें भी द्वितीया आदि सब तिथियोंका भोग समझना चाहिये तथा क्षणतिथिमें भी २-२ घड़ी क्षणकरणका मान समझना चाहिये। इसका प्रयोजन यह है कि जिस तिथिमें जो कार्य शुभ या अशुभ कहा गया है, वह क्षणतिथिमें भी शुभ या अशुभ समझना चाहिये। जैसे चतुर्दशीमें क्षौर कराना अशुभ कहा गया है तो तृतीया आदि अन्य तिथियोंमें भी जब चतुर्दशी क्षणतिथिके रूपमें प्राप्त हो तो उसमें क्षौर कराना अशुभ होता है तथा चतुर्दशीमें भी आवश्यक हो तो अन्य तिथिके भोगसमयमें क्षौर करानेमें दोष नहीं समझा जायगा। विशेष आवश्यक शुभ कार्यमें ही तिथि और क्षणतिथिका विचार करना चाहिये।

२. इससे सिद्ध होता है कि अपने-अपने सूर्योदयकालसे देशान्तर और चरार्धकाल आगे या पीछे वारप्रवेश हुआ करता है।

(या १ घंटा) है[1] ॥ १६६-१६७ ॥

(क्षणवारका प्रयोजन—) जिस वारमें जो कर्म शुभ या अशुभ कहा गया है, वह उसके क्षणवारमें भी उसी प्रकार शुभ-अशुभ समझना चाहिये ॥ १६७ $\frac{१}{२}$ ॥

(नक्षत्राधिपति-कथन—) १ दस्र (अश्विनी-कुमार), २ यम, ३ अग्नि, ४ ब्रह्मा, ५ चन्द्र, ६ शिव, ७ अदिति, ८ गुरु, ९ सर्प, १० पितर, ११ भग, १२ अर्यमा, १३ सूर्य, १४ विश्वकर्मा, १५ वायु, १६ इन्द्र और अग्नि, १७ मित्र, १८ इन्द्र, १९ राक्षस (निर्ऋति), २० जल, २१ विश्वेदेव, २२ ब्रह्मा, २३ विष्णु, २४ वसु, २५ वरुण, २६ अजैकपाद, २७ अहिर्बुध्न्य और २८ पूषा—ये क्रमशः (अभिजित्‌सहित) अश्विनी आदि २८ नक्षत्रोंके स्वामी कहे गये हैं ॥ १६८—१७० ॥

(नक्षत्रोंके मुख—) पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, मघा, आश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मूल—ये नौ नक्षत्र अधोमुख (नीचे मुखवाले) हैं। इनमें बिलप्रवेश (कुआँ, भूविवर या पाताल आदिमें जाना), गणित, भूतसाधन, लेखन, शिल्प (चित्र आदि) कला, कुआँ खोदना तथा गाड़े हुए धनको निकालना आदि सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १७१-१७२ ॥

१. दिन-रातमें होरा जाननेका चक्र—

होरा	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
२	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु
३	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल
४	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि
५	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र
६	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध
७	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम
८	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
९	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु
१०	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल
११	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि
१२	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र
१३	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध
१४	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम
१५	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१६	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु
१७	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल
१८	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि
१९	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र
२०	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध
२१	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम
२२	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
२३	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु
२४	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल

क्षणवार (होरेश) जाननेका प्रकार यह है कि जिस दिन होरेश (क्षणवार)-का विचार करना हो, उस दिनका प्रथम घंटा उसी दिनका क्षणवार होता है। इससे आगे उससे छठे-छठे दिनका क्षणवार समझे। जैसे रविवारमें वारप्रवेश-कालसे पहला घंटा रविका, दूसरा घंटा रविसे छठे शुक्रका, तीसरा घंटा शुक्रसे छठे बुधका इत्यादि क्रमसे ऊपर चक्रमें देखिये।

अनुराधा, मृगशिरा, चित्रा, हस्त, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, रेवती, अश्विनी और स्वाती—ये नौ नक्षत्र तिर्यक् (सामने) मुखवाले हैं। इनमें हल जोतना, यात्रा करना, गाड़ी बनाना, पत्र लिखकर भेजना, हाथी, ऊँट आदिकी सवारी करना, गदहे, बैल आदिसे चलनेवाले रथ बनाना, नौकापर चलना तथा भैंस, घोड़े आदि-सम्बन्धी कार्य करने चाहिये॥ १७३-१७४॥

रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, शतभिषा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ तथा उत्तर भाद्रपद—ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुख (ऊपर मुखवाले) कहे गये हैं। इनमें राज्याभिषेक, मङ्गल (विवाहादि)-कार्य, गजारोहण, ध्वजारोपण, मन्दिर-निर्माण, तोरण (फाटक) बनाना, बगीचे लगाना और चहारदीवारी बनवाना आदि कार्य सिद्ध होते हैं॥ १७५-१७६॥

(नक्षत्रोंकी ध्रुवादि संज्ञा—) रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद—ये ध्रुवनामक नक्षत्र हैं। हस्त, अश्विनी और पुष्य—ये क्षिप्रसंज्ञक हैं। विशाखा और कृत्तिका—ये दोनों साधारणसंज्ञक हैं। धनिष्ठा, पुनर्वसु, शतभिषा, स्वाती और श्रवण—ये चरसंज्ञक हैं। मृगशिरा, अनुराधा, चित्रा तथा रेवती—ये मृदुनामक नक्षत्र हैं। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद और भरणी—ये उग्रसंज्ञक नक्षत्र हैं। मूल, आर्द्रा, आश्लेषा और ज्येष्ठा—ये तीक्ष्णनामक नक्षत्र हैं। ये सब अपने नामके अनुसार ही फल देते हैं (इसलिये इन नक्षत्रोंमें इनके नामके अनुरूप ही कार्य करने चाहिये)॥ १७७-१७८ $\frac{१}{२}$॥

(कर्णवेध-मुहूर्त—) चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, हस्त, रेवती, अश्विनी, अनुराधा, धनिष्ठा, मृगशिरा और पुष्य—इन नक्षत्रोंमें कर्णवेध हितकर होता है।

(हाथी और घोड़े सम्बन्धी कार्य—) अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा और स्वाती—इनमें तथा स्थिरसंज्ञक नक्षत्रोंमें हाथीसम्बन्धी सब कृत्य करने चाहिये; तथा इन्हीं नक्षत्रोंमें घोड़ेके भी सब कृत्य शुभ होते हैं; किंतु रविवारको इन कृत्योंका त्याग कर देना चाहिये॥ १७९-१८१॥

(अन्य पशुकृत्य—) चित्रा, शतभिषा, रोहिणी तथा तीनों उत्तरा—इन नक्षत्रोंमें पशुओंको कहींसे लाना या ले जाना शुभ है। परंतु अमावास्या, अष्टमी और चतुर्दशीको कदापि पशुओंका कोई कृत्य नहीं करना चाहिये॥ १८२॥

(प्रथम हलप्रवाह—हल जोतना—) मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चरसंज्ञक नक्षत्र, विशाखा, मघा और मूल—इन नक्षत्रोंमें बैलोंद्वारा प्रथम बार हल जोतना शुभ होता है। सूर्य जिस नक्षत्रमें हो, उससे पिछले नक्षत्रसे तीन नक्षत्र हलके आदि (मूल)-में रहते हैं। इनमें प्रथम बार हल जोतने-जुतानेसे बैलका नाश होता है। उसके आगे तीन नक्षत्र हलके अग्रभागमें रहते हैं। इनमें हल जोतनेसे वृद्धि होती है। उससे आगेके पाँच नक्षत्र उत्तर पार्श्वमें रहते हैं, इनमें लक्ष्मीप्राप्ति होती है। तीन शूलोंमें नौ नक्षत्र रहते हैं; इनमें हल जोतनेसे कृषककी मृत्यु होती है। उससे आगे पाँच नक्षत्रोंमें सम्पत्तिकी वृद्धि होती है; फिर उससे आगेके तीन नक्षत्रोंमें प्रथम बार हल जोतनेसे श्रेष्ठ फल प्राप्त होते हैं॥ १८३—१८५॥

(बीज-वपन—) मृदु, ध्रुव और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र, मघा, स्वाती, धनिष्ठा और मूल—इनमें धान्यके बीज बोना श्रेष्ठ होता है। इस बीज-वपनमें राहु जिस नक्षत्रमें हो, उससे तीन नक्षत्र लाङ्गल-चक्रके अग्रभागमें रहते हैं। इन तीनोंमें बीज-वपनसे धान्यका नाश होता है। उससे आगेके तीन नक्षत्र गलेमें रहते हैं, उनमें बीज-वपनसे जलकी अल्पता होती है। उससे आगेके बारह नक्षत्र उदरमें रहते हैं, उनमें बीज बोनेसे धान्यकी वृद्धि होती है। उससे आगेके चार नक्षत्र लाङ्गलमें

रहते हैं, इनमें निस्तण्डुलत्व होता है (अर्थात् धानमें दाने नहीं लगते, केवल भूसीमात्र रह जाती है)। उससे आगेके पाँच नक्षत्र नाभिमें रहते हैं, इनमें प्रथम बीज-वपनसे अग्निभय प्राप्त होता है। इस चक्रका विचार बीज-वपनमें अवश्य करना चाहिये ॥ १८६—१८८ ॥

(रोगविमुक्तका स्नान—) स्थिरसंज्ञक, पुनर्वसु, आश्लेषा, रेवती, मघा और स्वाती—इन नक्षत्रोंमें तथा सोम और शुक्रके दिन रोगमुक्त पुरुषको पहले-पहल स्नान नहीं करना चाहिये ॥ १८९ ॥

(नृत्यारम्भ—) उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, हस्त और रेवती—इन नक्षत्रोंमें नृत्यारम्भ (नाट्य-विद्याका प्रारम्भ) उत्तम कहा गया है ॥ १९० ॥

रेवतीसे छः नक्षत्र पूर्वार्धयोगी, आर्द्रासे बारह नक्षत्र मध्ययोगी और धनिष्ठासे नौ नक्षत्र परार्धयोगी हैं। इनमेंसे पूर्वयोगीमें यदि वर और कन्या—दोनोंके नक्षत्र पड़ते हों तो स्त्रीका स्वामीमें अधिक प्रेम होता है। मध्ययोगीमें हों तो दोनोंमें परस्पर समान प्रेम होता है और परार्धयोगीमें दोनोंके नक्षत्र हों तो स्त्रीमें पतिका अधिक प्रेम होता है ॥ १९१ $\frac{१}{२}$ ॥

(बृहत्, सम और अधम नक्षत्र—) शतभिषा, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाती, भरणी और ज्येष्ठा—ये छः नक्षत्र जघन्य (अधम) कहे गये हैं। ध्रुवसंज्ञक, पुनर्वसु और विशाखा—ये नक्षत्र बृहत् (श्रेष्ठ) कहलाते हैं तथा अन्य नक्षत्र समसंज्ञक हैं। इनका विंशोपक मान क्रमशः ३०, ९० और ६० घड़ी कहा गया है[१] ॥१९२-१९३॥ यदि द्वितीया तिथिको बृहत्संज्ञक नक्षत्रमें चन्द्रोदय हो तो अन्नका भाव सस्ता होता है। समसंज्ञक नक्षत्रमें चन्द्रदर्शन हो तो अन्नादिके भावमें समता होती है और जघन्यसंज्ञक नक्षत्रमें चन्द्रोदय हो तो उस महीनेमें अन्नका भाव महँगा हो जाता है ॥ १९३ $\frac{१}{२}$ ॥

(यात्रा करनेवालेको जय तथा पराजय देनेवाले नक्षत्र—) अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मूल, चित्रा, श्रवण, तीनों उत्तरा, पूर्वाफाल्गुनी, मघा, विशाखा, धनिष्ठा[२]—इतने नक्षत्र कुलसंज्ञक हैं। रोहिणी, ज्येष्ठा[३], पुनर्वसु, स्वाती, रेवती, हस्त, अनुराधा, पूर्व भाद्रपद, भरणी और आश्लेषा—ये नक्षत्र अकुलसंज्ञक हैं। शेष नक्षत्र कुलाकुलसंज्ञक हैं। इनमें कुलसंज्ञक नक्षत्रोंमें विजयकी इच्छासे यात्रा करनेवाले राजाकी पराजय होती है। अकुलसंज्ञक नक्षत्रोंमें यात्रा करनेसे वह निश्चय ही शत्रुपर विजय प्राप्त करता है और कुलाकुलसंज्ञक नक्षत्रोंमें युद्धार्थ यात्रा करनेपर शत्रुओंके साथ सन्धि होती है। अथवा यदि युद्ध हुआ तो भी दोनोंमें समानता सिद्ध होती है (किसी एक पक्षकी हार या जीत नहीं होती) ॥ १९४-१९७ $\frac{१}{२}$ ॥

(त्रिपुष्कर, द्विपुष्कर योग—) रवि, शनि या मङ्गलवारमें भद्रा, (२, ७, १२) तिथि तथा विषम चरणवाले नक्षत्र (कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ और पूर्व भाद्रपद) हों तो (इन तीनोंके संयोगसे) 'त्रिपुष्कर' नामक योग होता है। तथा उन्हीं रवि, शनि और मङ्गलवार एवं भद्रा तिथियोंमें दो चरणवाले नक्षत्र (मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा) हों तो 'द्विपुष्कर' योग होता है। त्रिपुष्करयोग त्रिगुणित (तीन गुने) और

१. वास्तवमें किसी भी नक्षत्रका ५६ घटीसे कम और ६६ घटीसे अधिक काल-मान नहीं होता। यहाँ जो 'बृहत्' संज्ञक नक्षत्रोंका ९० घटी (४५ मुहूर्त), समसंज्ञक नक्षत्रोंका ६० घटी (३० मुहूर्त) और जघन्यसंज्ञक नक्षत्रोंका ३० घटी (१५ मुहूर्त) समय बताया गया है, वह क्रमशः सस्ती, समता और महँगीका सूचक है।

२-३. अन्य संहितामें धनिष्ठा नक्षत्र अकुलगणमें, ज्येष्ठा कुलगणमें और मूल कुलाकुलगणमें लिया गया है।

द्विपुष्करयोग द्विगुणित (दुगुने) लाभ और हानिको देनेवाले हैं। अतः इनमें किसी वस्तुकी हानि हो तो उस दोषकी शान्तिके लिये तीन गोदान या तीन गौओंका मूल्य तथा द्विपुष्कर दोषकी शान्तिके लिये दो गोदान या दो गौओंका मूल्य ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इससे उक्त (तिथि, वार और) नक्षत्र-सम्बन्धी दोषका निवारण हो जाता है॥ १९८-१९$\frac{१}{२}$॥

(पुष्य नक्षत्रकी प्रशंसा-) पापग्रहसे विद्ध या युक्त होनेपर भी पुष्य नक्षत्र बलवान् होता है और विवाह छोड़कर वह सब शुभ कर्मोंमें अभीष्ट फल देनेवाला है॥ २०$\frac{१}{२}$॥

(नक्षत्रोंमें योग-ताराओंकी संख्या—) अश्विनी आदि (अभिजित्सहित) अट्ठाईस नक्षत्रोंमें क्रमशः ३, ३, ६, ५, ३, १, ४, ३, ५, ५, २, २, ५, १, १, ४, ४, ३, ११, २, २, ३, ३, ४, १००, २, २ और ३२ योगताराएँ होती हैं। अपने-अपने आकाशीय विभागमें जो अनेक ताराओंका पुञ्ज होता है, उसमें जो अत्यन्त उद्दीप्त (चमकीली) ताराएँ दीख पड़ती हैं, वे ही योगताराएँ कहलाती हैं॥ २०१—२०३॥

(नक्षत्रोंसे वृक्षोंकी उत्पत्ति—) जितने भी वृष अर्थात् श्रेष्ठ वृक्ष हैं उनकी उत्पत्ति अश्विनीसे हुई है। भरणीसे यमक (जुड़े हुए दो) वृक्ष, कृत्तिकासे उदुम्बर (गूलर), रोहिणीसे जामुन, मृगशिरासे खैर, आर्द्रासे काली पाकर, पुनर्वसुसे बाँस, पुष्यसे पीपल, आश्लेषासे नागकेसर, मघासे बरगद, पूर्वाफाल्गुनीसे पलाश, उत्तराफाल्गुनीसे रुद्राक्षका वृक्ष, हस्तसे अरिष्ट (रीठीका वृक्ष), चित्रासे श्रीवृक्ष (बेल), स्वातीसे अर्जुन वृक्ष, विशाखासे विकङ्कत (जिसकी लकड़ीसे कलछियाँ बनती हैं), अनुराधासे बकुल (मौलश्री), ज्येष्ठासे विष्टिवृक्ष, मूलसे सर्ज (शालका वृक्ष), पूर्वाषाढ़से वञ्जुल (अशोक), उत्तराषाढ़से कटहल, श्रवणसे आक, धनिष्ठसे शमीवृक्ष, शतभिषासे कदम्ब, पूर्व भाद्रपदसे आम्रवृक्ष, उत्तर भाद्रपदसे पिचुमन्द (नीमका पेड़) तथा रेवतीसे महुआकी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार ये नक्षत्रसम्बन्धी वृक्ष कहे गये हैं॥ २०४—२१०॥

जब जिस नक्षत्रमें शनैश्चर विद्यमान हो, उस समय उस नक्षत्र-सम्बन्धी वृक्षका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये॥ २११$\frac{१}{२}$॥

(योगोंके स्वामी—) यम, विश्वेदेव, चन्द्र, ब्रह्मा, गुरु, चन्द्र, इन्द्र, जल, सर्प, अग्नि, सूर्य, भूमि, रुद्र, ब्रह्मा, वरुण, गणेश, रुद्र, कुबेर, विश्वकर्मा, मित्र, षडानन, सावित्री, कमला, गौरी, अश्विनीकुमार, पितर और अदिति—ये क्रमशः विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंके स्वामी हैं॥ २१२$\frac{१}{२}$॥

(निन्द्य योग—) वैधृति और व्यतीपात—ये दोनों महापात हैं, इन दोनोंको शुभ कार्योंमें सदा त्याग देना चाहिये। परिघ योगका पूर्वार्ध और वज्रयोगके आरम्भकी तीन घड़ियाँ, गण्ड और अतिगण्डकी छः घड़ी, व्याघात योगकी ९ घड़ी और शूल योगकी ५ घड़ी सब शुभ कार्योंमें निन्दित हैं।

(खार्जूरचक्र—) इन नौ निन्द्य योगों (वैधृति, व्यतीपात, परिघ, विष्कम्भ, वज्र, गण्ड, अतिगण्ड, व्याघात और शूल)-में क्रमशः पुनर्वसु, मृगशिरा, मघा, आश्लेषा, अश्विनी, मूल, अनुराधा, पुष्य और चित्रा—ये नौ मूर्धा (मस्तक)-के नक्षत्र माने गये हैं। एक ऊर्ध्वरेखा लिखे, फिर उसके उपर तेरह तिरछी रेखाएँ अङ्कित करे। यह 'खार्जूरचक्र' कहलाता है। इस चक्रमें ऊपर कहे हुए निन्द्य योगोंमें उनके मूर्धगत नक्षत्रको रेखाके मस्तकके ऊपर लिखकर क्रमशः २८ नक्षत्रोंको लिखे। इसमें यदि सूर्य और चन्द्रमा एक रेखामें विभिन्न भागमें पड़ें तो उन दोनोंका परस्परका दृष्टिपात 'एकार्गल'

दोष कहलाता है, जो शुभकार्यमें त्याज्य है, परंतु यदि सूर्य और चन्द्रमामें कोई एक अभिजित्‌में हो तो वेध-दोष नहीं होता है॥ २१३—२१७ $\frac{१}{२}$ ॥

(**प्रत्येक योगमें अन्तर्भोग—**) १२ पलरहित २ घड़ीके मानसे एक-एक योगमें सत्ताईस योग बीतते हैं॥ २१८ $\frac{१}{२}$ ॥

(**करणके स्वामी और शुभाशुभ-विभाग—**) इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, विश्वकर्मा, भूमि, हरितप्रिया (लक्ष्मी), कीनाश (यम), कलि, रुद्र, सर्प तथा मरुत्—ये ग्यारह देवता, क्रमशः बव आदि (बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न—इन) ग्यारह करणोंके स्वामी हैं। इनमें बवसे लेकर छः करण शुभ होते हैं। किंतु 'विष्टि' नामक करण क्रमसे आया हो या विपरीतक्रमसे, किसी भी दशामें वह मङ्गलकार्यमें शुभ नहीं है॥ २१९—२२० $\frac{१}{२}$ ॥

(**विष्टिके अङ्गोंमें घटी और फल—**) विष्टिके मुखमें पाँच घटी, गलेमें एक, हृदयमें ग्यारह, नाभिमें चार, कटिमें छः और पुच्छमें तीन घड़ियाँ होती हैं। मुखकी घड़ियोंमें कार्य आरम्भ करनेसे कार्यकी हानि होती है। गलेकी घड़ीमें मृत्यु, हृदयकी घड़ीमें निर्धनता, कटिकी घड़ीमें उन्मत्तता, नाभिकी घड़ीमें पतन तथा पुच्छकी घड़ीमें कार्य करनेसे निश्चय ही विजय (सिद्धि) प्राप्त होती है। भद्राके बाद जो चार स्थिर करण हैं, वे मध्यम हैं, विशेषतः नाग और चतुष्पद॥ २२१—२२३॥

(**मुहूर्त-कथन—**) दिनमें क्रमशः रुद्र, सर्प, मित्र, पितर, वसु, जल, विश्वेदेव, विधि (अभिजित्), ब्रह्मा, इन्द्र, इन्द्राग्नि, राक्षस, वरुण, अर्यमा और भग—ये पंद्रह मुहूर्त जानने चाहिये। रात्रिमें शिव, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनीकुमार, यम अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अदिति, बृहस्पति, विष्णु, सूर्य, विश्वकर्मा और वायु—ये क्रमशः पंद्रह मुहूर्त व्यतीत होते हैं। दिनमानका पंद्रहवाँ भाग दिनके मुहूर्तका मान है और रात्रिमानका पंद्रहवाँ भाग रात्रिके मुहूर्तका मान समझना चाहिये; इनसे दिन तथा रात्रिमें क्षण-नक्षत्रका विचार करें[१]॥ २२४—२२६ $\frac{१}{२}$ ॥

(**वारोंमें निन्द्य मुहूर्त—**) रविवारको अर्यमा, सोमवारको ब्राह्म तथा राक्षस, मङ्गलवारको पितर और अग्नि, बुधवारको अभिजित्, गुरुवारको राक्षस और जल, शुक्रवारको ब्राह्म और पितर तथा शनिवारको शिव और सर्प मुहूर्त निन्द्य माने गये हैं; इसलिये इन्हें शुभ कार्योंमें त्याग देना चाहिये॥ २२७-२२८॥

(**मुहूर्तका विशेष प्रयोजन—**) जिस-जिस नक्षत्रमें यात्रा आदि जो-जो कर्म शुभ या अशुभ कहे गये हैं; वे कार्य उस-उस नक्षत्रके स्वामीके मुहूर्तमें भी शुभ या अशुभ होते हैं। ऐसा समझकर उस मुहूर्तमें सदा वैसे कार्य करने या त्याग देने चाहिये॥ २२९॥

(**भूकम्पादि संज्ञाओंसे युक्त नक्षत्र—**) सूर्य जिस नक्षत्रमें हो, उससे सातवें नक्षत्रकी भूकम्प, पाँचवेंकी विद्युत्, आठवेंकी शूल, दसवेंकी अशनि, अठारहवेंकी केतु, पंद्रहवेंकी दण्ड, उन्नीसवेंकी उल्का, चौदहवेंकी निर्घातपात, इक्कीसवेंकी मोह, बाईसवेंकी निर्घात, तेईसवेंकी कम्प, चौबीसवेंकी कुलिश तथा पचीसवेंकी परिवेष संज्ञा समझनी चाहिये; इन संज्ञाओंसे युक्त चन्द्र-नक्षत्रोंमें शुभ कर्म नहीं करने चाहिये॥ २३०—२३२ $\frac{१}{२}$ ॥

सूर्यके नक्षत्रसे आश्लेषा, मघा, चित्रा, अनुराधा,

१. उदाहरण—जिस समय ब्रह्माका मुहूर्त हो, उस समय उसीका क्षण-नक्षत्र होता है। जैसे—दिनमें नवाँ मुहूर्त ब्रह्माका है और दिनमान ३० घड़ीका है तो १६ घड़ीके बाद १८ घड़ीतक ब्रह्माजीके ही नक्षत्र (रोहिणी)-को क्षण-नक्षत्र समझना चाहिये। इसलिये दिनमें नवम मुहूर्त 'ब्राह्म' या 'रौहिण' कहलाता है, जो श्राद्धमें श्रेष्ठ माना गया है।

रेवती तथा श्रवणतककी जितनी संख्या हो, उतनी ही यदि अश्विनीसे चन्द्र-नक्षत्रतककी संख्या हो तो उसपर दुष्टयोगका सम्पात अर्थात् रुद्रके प्रचण्ड अस्त्रका प्रहार होता है। अतः उसका नाम 'चण्डीशचण्डायुध' योग है। उसमें शुभ कर्म नहीं करना चाहिये॥ २३३-२३४ $\frac{1}{2}$ ॥

(क्रकचयोग—) प्रतिपदादि तिथिकी तथा रवि आदि बारकी संख्या मिलानेसे यदि १३ हो तो वह क्रकचयोग होता है जो शुभ कार्यमें अत्यन्त निन्दित माना गया है॥ २३५ -॥

(संवर्तयोग—) रविवारको सप्तमी और बुधवारको प्रतिपदा हो तो 'संवर्तयोग' जानना चाहिये। यह शुभ कार्यको नष्ट करनेवाला है॥ २३६ $\frac{1}{2}$ ॥

(आनन्दादि योग—) १ आनन्द, २ कालदण्ड, ३ धूम्र, ४ धाता, ५ सुधाकर (सौम्य), ६ ध्वाङ्क्ष, ७ केतु, ८ श्रीवत्स, ९ वज्र, १० मुद्गर, ११ छत्र, १२ मित्र, १३ मानस, १४ पद्म, १५ लुम्ब, १६ उत्पात, १७ मृत्यु, १८ काण, १९ सिद्धि, २० शुभ, २१ अमृत, २२ मुसल, २३ अन्तक (गद), २४ कुञ्जर (मातङ्ग), २५ राक्षस, २६ चर, २७ सुस्थिर और २८ वर्धमान—ये क्रमशः पठित २८ योग अपने-अपने नामके समान ही फल देनेवाले कहे गये हैं।

(इन योगोंको जाननेकी रीति—) रविवारको अश्विनी नक्षत्रसे, सोमवारको मृगशिरासे, मङ्गलवारको आश्लेषासे, बुधवारको हस्तसे, गुरुवारको अनुराधासे, शुक्रवारको उत्तराषाढ़से और शनिवारको शतभिषासे आरम्भ करके उस दिनके नक्षत्रतक गणना करनेपर जो संख्या हो, उसी संख्यावाला योग उस दिन होगा[1] ॥ २३७—२४१ ॥

(सिद्धियोग—) रविवारको हस्त, सोमवारको मृगशिरा, मङ्गलवारको अश्विनी, बुधवारको अनुराधा, बृहस्पतिवारको पुष्य, शुक्रवारको रेवती और शनिवारको रोहिणी हो तो सिद्धियोग होता है॥ २४२ $\frac{1}{2}$ ॥

रवि और मङ्गलवारको नन्दा (१। ६। ११), शुक्र और सोमवारको भद्रा (२। ७। १२), बुधवारको जया (३। ८। १३), गुरुवारको रिक्ता (४। ९। १४) और शनिवारको पूर्णा (५। १०। १५) हो तो मृत्युयोग[2] होता है। अतः इसमें शुभ कर्म न करे॥ २४३ $\frac{1}{2}$ ॥

(सिद्धयोग—) शुक्रवारको नन्दा, बुधवारको भद्रा, मङ्गलवारको जया, शनिवारको रिक्ता और गुरुवारको पूर्णा तिथि हो तो 'सिद्धयोग' कहा गया है॥ २४४ $\frac{1}{2}$ ॥

(दग्धयोग—) सोमवारको एकादशी, गुरुवारको षष्ठी, बुधवारको तृतीया, शुक्रवारको अष्टमी, शनिवारको नवमी तथा मङ्गलवारको पञ्चमी तिथि हो तो 'दग्धयोग' कहा गया है॥ २४५-२४६ ॥

(ग्रहोंके जन्मनक्षत्र—) रविवारको भरणी, सोमवारको चित्रा, मङ्गलवारको उत्तराषाढ़, बुधवारको धनिष्ठा, गुरुवारको उत्तराफाल्गुनी, शुक्रवारको ज्येष्ठा और शनिवारको रेवती—ये क्रमशः सूर्यादि ग्रहोंके जन्मनक्षत्र होनेके कारण शुभ कार्यके विनाशक होते हैं॥ २४७ $\frac{1}{2}$ ॥

यदि रवि आदि वारोंमें विशाखा आदि चार-चार नक्षत्र हों अर्थात् रविवारको विशाखासे, सोमको पूर्वाषाढ़से, मङ्गलको धनिष्ठासे, बुधको रेवतीसे, गुरुवारको रोहिणीसे, शुक्रको पुष्यसे और शनिको उत्तरा फाल्गुनीसे चार-चार नक्षत्र हों तो क्रमशः उत्पात, मृत्यु, काण तथा सिद्ध नामक योग कहे गये हैं॥ २४८ $\frac{1}{2}$ ॥

---

१. संक्षिप्त उदाहरण—जैसे रविवारको अश्विनी हो तो आनन्द, भरणी हो तो कालदण्ड इत्यादि। सोमवारको मृगशिरा हो तो आनन्द, आर्द्रा हो तो कालदण्ड। ऐसे ही मङ्गलादि वारोंमें कथित आश्लेषादिसे गिनकर योगोंका निश्चय करना चाहिये।

२. अन्य संहिताओंमें इसका नाम मृत्युयोग आया है, इसलिये वैसा लिखा गया है। मूलमें कोई संज्ञा न देकर इन्हें अशुभ बताया है और इनमें शुभ कर्मको त्याज्य कहा है।

(परिहार—) ये जो ऊपर तिथि और वारके संयोगसे तथा वार और नक्षत्रके संयोगसे अनिष्टकारक योग बताये गये हैं, वे सब हूणेंकि देश—भारतके पश्चिमोत्तर-भागमें, बंगालमें और नैपाल देशमें ही त्याज्य हैं। अन्य देशोंमें ये अत्यन्त शुभप्रद हैं॥ २४९½॥

(सूर्यसंक्रान्तिकथन—) रवि आदि वारोंमें सूर्यकी संक्रान्ति होनेपर क्रमशः घोरा, ध्वांक्षी, महोदरी, मन्दा, मन्दाकिनी, मिश्रा तथा राक्षसी—ये संक्रान्तिके नाम होते हैं। उक्त घोरा आदि संक्रान्तियाँ क्रमशः शूद्र, चोर, वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, गौ आदि पशु तथा चारों वर्णोंसे अतिरिक्त मनुष्योंको सुख देनेवाली होती हैं। यदि सूर्यकी संक्रान्ति पूर्वाह्णमें हो तो वह क्षत्रियोंको हानि पहुँचाती है। मध्याह्नमें हो तो ब्राह्मणोंको, अपराह्णमें हो तो वैश्योंको, सूर्यास्त-समयमें हो तो शूद्रोंको, रात्रिके प्रथम प्रहरमें हो तो पिशाचोंको, द्वितीय प्रहरमें हो तो निशाचरोंको, तृतीय प्रहरमें हो तो नाट्यकारोंको, चतुर्थ प्रहरमें हो तो गोपालकोंको और सूर्योदय-समयमें हो तो लिङ्गधारियों (वेशधारी बहुरूपियों, पाखण्डियों अथवा आश्रम या सम्प्रदायके चिह्न धारण करनेवालों) को हानि पहुँचाती है॥ २५०-२५३½॥

यदि सूर्यकी मेष-संक्रान्ति दिनमें हो तो संसारमें अनर्थ और कलह पैदा करनेवाली है। रात्रिमें मेष-संक्रान्ति हो तो अनुपम सुख और सुभिक्ष होता है तथा दोनों संध्याओंके समय हो तो वह वृष्टिका नाश करनेवाली है॥ २५४½॥

(करण-संक्रान्तिवश सूर्यके वाहन-भोजनादि—) बव आदि ग्यारह करणोंमें संक्रान्ति होनेपर क्रमशः १ सिंह, २ बाघ, ३ सूअर, ४ गदहा, ५ हाथी, ६ भैंसा, ७ घोड़ा, ८ कुत्ता, ९ बकरा, १० बैल और ११ मुर्गा—ये सूर्यके वाहन होते हैं तथा १ भुशुण्डी, २ गदा, ३ तलवार, ४ लाठी, ५ धनुष, ६ बरछी, ७ कुन्त (भाला), ८ पाश, ९ अङ्कुश, १० अस्त्र (जो फेंका जाता है) और ११ बाण—इन्हें क्रमशः सूर्यदेव अपने हाथोंमें धारण करते हैं। १ अन्न, २ खीर, ३ भिक्षान्न, ४ पकवान, ५ दूध, ६ दही, ७ मिठाई, ८ गुड़, ९ मधु, १० घृत और ११ चीनी—ये बव आदिकी संक्रान्तिमें क्रमशः भगवान् सूर्यके हविष्य (भोजन) होते हैं॥ २५५—२५७½॥

(सूर्यकी स्थिति—) बव, वणिज, विष्टि, बालव और गर—इन कारणोंमें सूर्य बैठे हुए, कौलव, शकुनि और किंस्तुघ्न—इन करणोंमें खड़े हुए तथा चतुष्पद, तैतिल और नाग—इन तीन करणोंमें सोते हुए, संक्रान्ति करते (एक राशिसे दूसरी राशिमें जाते) हों तो इन तीनों अवस्थाओंकी संक्रान्तिमें प्रजाको क्रमशः धर्म, आयु और वर्षाके विषयमें समान, श्रेष्ठ और अनिष्ट फल प्राप्त होते हैं तथा ऊपर कहे हुए अस्त्र, वाहन और भोजन तथा उससे आजीविका या व्यवहार करनेवाले मनुष्यादि प्राणियोंका अनिष्ट होता है एवं जिस प्रकार सोये, बैठे, खड़े हुए संक्रान्ति होती है, उसी प्रकार सोये, बैठे और खड़े हुए प्राणियोंका अनिष्ट होता है॥ २५८—२६०½॥

नक्षत्रोंकी अन्धाक्षादि संज्ञाएँ—रोहिणी नक्षत्रसे आरम्भ करके चार-चार नक्षत्रोंको क्रमशः अन्ध, मन्दनेत्र, मध्यनेत्र और सुलोचन माने और पुनः आगे इसी क्रमसे सूर्यके नक्षत्रतक गिनकर नक्षत्रोंकी अन्ध आदि चार संज्ञाएँ समझे[1]।

१. नीचे चक्रमें स्पष्ट देखिये—

अन्धाक्ष	रोहिणी	पुष्य	उत्तरा फाल्गुनी	विशाखा	पूर्वाषाढ़	धनिष्ठा	रेवती
मन्दाक्ष	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उत्तराषाढ़	शतभिषा	अश्विनी
मध्याक्ष	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित्	पूर्व भाद्रपद	भरणी
सुलोचन	पुनर्वसु	पूर्वा फाल्गुनी	स्वाती	मूल	श्रवण	उत्तर भाद्रपद	कृत्तिका

(**संक्रान्तिकी विशेष संज्ञा—**) स्थिर राशियों (वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ)-में सूर्यकी संक्रान्तिका नाम 'विष्णुपदी', द्विस्वभाव राशियों (मिथुन, कन्या, धनु और मीन)-में 'षडशीतिमुखा', तुला और मेषमें 'विषुव' (विषुवत्), मकरमें 'सौम्यायन' और कर्कमें 'याम्यायन' संज्ञा होती है॥ २६१—२६३ १/२॥

(**पुण्यकाल—**) याम्यायन और स्थिर राशियोंकी (विष्णुपद) संक्रान्तिमें संक्रान्तिकालसे पूर्व १६ घड़ी, द्विस्वभाव राशियोंकी षडशीतिमुखा और सौम्यायन-संक्रान्तिमें संक्रान्तिकालके पश्चात् १६ घड़ी तथा विषुवत् (मेष, तुला) संक्रान्तिमें मध्य (संक्रान्ति-कालसे ८ पूर्व और ८ पश्चात्)-की १६ घड़ीका समय पुण्यदायक होता है॥ २६४॥

सूर्योदयसे पूर्वकी तीन घड़ी प्रातः-संध्या तथा सूर्यास्तके बादकी तीन घड़ी सायं-संध्या कहलाती है। यदि सायं-सध्यामें याम्यायन या सौम्यायन कोई संक्रान्ति हो तो पूर्व दिनमें और प्रातः-संध्यामें संक्रान्ति हो तो पर दिनमें सूर्योदयके बाद पुण्यकाल होता है॥ २६५॥

जब सूर्यकी संक्रान्ति होती है, उस समय प्रत्येक मनुष्यके लिये जैसा शुभ या अशुभ चन्द्रमा होता है, उसीके अनुसार इस महीनेमें मनुष्योंको चन्द्रमाका शुभ या अशुभ फल प्राप्त होता है॥ २६६॥ किसी संक्रान्तिके बाद सूर्य जितने अंश भोगकर उस संक्रान्तिके आगे अयनसंक्रान्ति करे, उतने समयतक संक्रान्ति या ग्रहणका जो नक्षत्र हो, वह तथा उसके आगे-पीछेवाले दोनों नक्षत्र उपनयन और विवाहादि शुभ कार्योंमें अशुभ होते हैं। संक्रान्ति या ग्रहणजनित अनिष्ट फलों (दोषों)-की शान्तिके लिये तिलोंकी ढेरीपर तीन त्रिशूलवाला त्रिकोण-चक्र लिखे और उसपर यथाशक्ति सुवर्ण रखकर ब्राह्मणोंको दान दे॥ २६७—२६९॥

(**ग्रह-गोचर—**) ताराके बलसे चन्द्रमा बली होता है और चन्द्रमाके बली होनेपर सूर्य बली हो जाता है तथा संक्रमणकारी सूर्यके बली होनेसे अन्य सब ग्रह भी बली समझे जाते हैं[1]॥ २७०॥

मुनीश्वर! अपनी जन्मराशियोंसे ३, ११, १०, ६ स्थानमें सूर्य शुभ होता है; परंतु यदि क्रमशः जन्मराशिसे ही ९, ५, ४ तथा १२ वें स्थानमें स्थित शनिके अतिरिक्त अन्य ग्रहोंसे वह विद्ध न हो तभी शुभ होता है[2]। इसी प्रकार चन्द्रमा जन्मराशिसे ७, ६, ११, १, १० तथा ३ में शुभ होते हैं; यदि क्रमशः २, १२, ८, ५, ४ और ९ वेंमें स्थित बुधसे भिन्न ग्रहोंसे विद्ध न हों। मङ्गल जन्मराशिसे ३, ११, ६ में शुभ हैं; यदि क्रमशः १२, ५ तथा ९ वें स्थानमें स्थित अन्य ग्रहसे विद्ध न हों। शनि भी अपनी जन्मराशिसे इन्हीं ३, ११, ६ स्थानोंमें शुभ हैं; यदि क्रमशः १२, ५, ९ स्थानोंमें स्थित सूर्यके सिवा अन्य ग्रहोंसे विद्ध न हों। बुध अपनी जन्मराशिसे २, ४, ६, ८, १० और ११ स्थानोंमें शुभ हों; यदि क्रमशः ५, ३, ९, १, ८ और १२ स्थानोंमें स्थित चन्द्रमाके सिवा

---

१. भाव यह है कि तारा और ग्रहके बलको देखकर किसी कार्यको आरम्भ करनेका आदेश है। यदि अपनी तारा बलवती हो तो निर्बल चन्द्रमा भी बली माना जाता है तथा रविशुद्धि-विचारसे यदि अपने चन्द्रमा बली हों तो निर्बल सूर्य भी बली हो जाते हैं एवं सूर्यके बली होनेपर अन्य ग्रह अनिष्ट भी हो तो इष्टसाधक हो जाते हैं। इसलिये इन्हीं तीनों (तारा, चन्द्रमा तथा रवि) के बल देखे जाते हैं।

२. सब ग्रहोंके जितने शुभ स्थान कहे गये हैं, क्रमशः उतने ही उनके वेध-स्थान भी कहे गये हैं। जैसे सूर्य तीसरेमें शुभ होता है; किंतु यदि नवेंमें कोई ग्रह हो तो विद्ध हो जाता है; इसी प्रकार अन्य शुभ-स्थान और वेध-स्थान समझने चाहिये।

अन्य किसी ग्रहसे विद्ध न हों। मुनीश्वर! गुरु जन्मराशिसे २, ११, ९, ५ और ७ इन स्थानोंमें शुभ होते हैं; यदि क्रमशः १२, ८, १०, ४ और ३ स्थानोंमें स्थित अन्य किसी ग्रहसे विद्ध न हों। इसी प्रकार शुक्र भी जन्मराशिसे १, २, ३, ४, ५, ८, ९, १२ तथा ११ स्थानोंमें शुभ होते हैं; यदि क्रमशः ८, ७, १, १०, ९, ५, ११, ६, ३ स्थानोंमें स्थित अन्य ग्रहसे विद्ध न हों[१] ॥ २७१—२७६ ॥

जो ग्रह गोचरमें वेधयुक्त हो जाता है, वह शुभ या अशुभ फलको नहीं देता; इसलिये वेधका विचार करके ही शुभ या अशुभ फल समझना चाहिये ॥ २७७ ॥ वामवेध होने (वेध-स्थानमें ग्रह और शुभ स्थानमें अन्य ग्रहके होने)-से दुष्ट (अशुभ) ग्रह भी शुभकारक हो जाता है। यदि दुष्ट ग्रह भी शुभग्रहसे दृष्ट हो तो शुभकारक हो जाता है तथा शुभप्रद ग्रह भी पापग्रहसे दृष्ट हो तो अनिष्ट फल देता है। शुभ और पाप दोनों ग्रह यदि अपने शत्रुसे देखे जाते हों अथवा नीच राशिमें या अपने शत्रुकी राशिमें हों तो निष्फल हो जाते हैं। इसी प्रकार जो ग्रह अस्त हो वह भी अपने शुभ या अशुभ फलको नहीं देता है। ग्रह यदि दुष्ट-स्थानमें हो तो यत्नपूर्वक उसकी शान्ति कर लेनी चाहिये। हानि और लाभ ग्रहोंके ही अधीन हैं, इसलिये ग्रहोंकी विशेष यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ २७८—२८०$\frac{1}{2}$ ॥

सूर्य आदि नवग्रहोंकी तुष्टिके लिये क्रमशः मणि (पद्मराग-लाल), मुक्ता (मोती), विद्रुम (मूँगा), मरकत (पन्ना), पुष्पराग (पोखराज), वज्र (हीरा), नीलम, गोमेद-रत्न एवं वैदूर्य (लहसनिया) धारण करना चाहिये ॥ २८१-२८२ ॥

(चन्द्र-शुद्धिमें विशेषता—) शुक्लपक्षके प्रथम दिन प्रतिपदामें जिस व्यक्तिके चन्द्रमा शुभ होते हैं, उसके लिये शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष दोनों ही शुभद होते हैं। अन्यथा (यदि शुक्ल प्रतिपदामें चन्द्रमा अशुभ हो तो) दोनों पक्ष अशुभ ही होते हैं। (पहले जो जन्मराशिसे २, ९, ५ वें चन्द्रमाको अशुभ कहा गया है, वह केवल कृष्णपक्षमें ही होता है।) शुक्ल पक्षमें २, ९ तथा ५ वें स्थानमें स्थित चन्द्रमा भी शुभप्रद ही होता है, यदि वह ६, ८, १२वें स्थानोंमें स्थित अन्य ग्रहोंसे विद्ध न हो ॥ २८३-२८४ ॥

(तारा-विचार—) अपने-अपने जन्मनक्षत्रसे नौ नक्षत्रोंतक गिने तो क्रमशः १ जन्म, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेम, ५ प्रत्यरि, ६ साधक, ७ वध, ८ मित्र तथा ९ परम मित्र—इस प्रकार ९ ताराएँ होती हैं। फिर इसी प्रकार आगे गिननेपर १० से १८ तक तथा १९ से २७ तक क्रमशः वे ही ९ ताराएँ होंगी। इनमें १, ३, ५ और ७वीं तारा अपने नामके अनुसार अनिष्ट फल देनेवाली होती हैं। इन चारों ताराओंमें इनके दोषकी शान्तिके लिये ब्राह्मणोंको क्रमशः शाक, गुड़, लवण और तिलसहित सुवर्णका दान देना चाहिये। कृष्णपक्षमें तारा बलवती होती है और शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बलवान् होता है ॥ २८५—२८७ ॥

(चन्द्रमाकी अवस्था—) प्रत्येक राशिमें चन्द्रमाकी बारह-बारह अवस्थाएँ होती हैं, जो यात्रा तथा विवाह आदि शुभ कार्योंमें अपने नामके सदृश ही फल देती हैं।

---

१. भाव यह है कि ऊपर जो ग्रहोंके शुभ और वेध-स्थान कहे गये हैं, उनमें मनुष्योंको अपनी-अपनी जन्मराशिसे शुभ स्थानोंमें ग्रहोंके जानेसे शुभ फल और वेध-स्थानमें जानेसे अशुभ फल प्राप्त होते हैं। विशेषता यह है कि शुभ स्थानमें जानेपर भी यदि उन ग्रहोंके वेध-स्थानोंमें कोई अन्य ग्रह हो तो वे शुभ नहीं होते हैं, तथा शुभ और वेध-स्थानोंसे भिन्न स्थानमें रहनेपर ग्रह मध्यम फल देनेवाले होते हैं। इसी बातको संक्षेपमें आगे कहते हैं।

(**अवस्थाका ज्ञान—**) अभीष्ट दिनमें गत नक्षत्र-संख्याको ६० से गुणा करके उसमें वर्तमान नक्षत्रकी भुक्त (भयात) घड़ीको जोड़ दे, योगफलको चारसे गुणा करके गुणनफलमें ४५ का भाग दे। जो लब्धि आवे, उसमें पुनः १२ से भाग देनेपर १ आदि शेषके अनुसार मेषादि राशियोंमें क्रमशः प्रवास, नष्ट, मृत, जय, हास्य, रति, मुदा, सुप्ति, भुक्ति, ज्वर, कम्प और सुस्थिति—ये बारह गत अवस्थाएँ सूचित होती हैं[1]। ये अपने-अपने नामके समान फल देनेवाली होती हैं॥ २८८-२८९॥

(**मेषादि लग्नोंमें कर्तव्य—**) पट्ट-बन्धन (राजसिंहासन, राजमुकुट आदि धारण), यात्रा, उग्र कर्म, संधि, विग्रह, आभूषणधारण, धातु, खानसम्बन्धी कार्य और युद्धकर्म—ये सब मेष लग्नमें आरम्भ करनेसे सिद्ध होते हैं॥ २९०॥ वृष लग्नमें विवाह मङ्गलकर्म, गृहारम्भ आदि स्थिर-कर्म, जलाशय, गृहप्रवेश, कृषि, वाणिज्य तथा पशुपालन आदि कार्य सिद्ध होते हैं॥ २९१॥ मिथुन लग्नमें कला, विज्ञान, शिल्प, आभूषण, युद्ध संश्रव (कीर्ति साधक कर्म), राज-कार्य, विवाह, राज्याभिषेक आदि कार्य करने चाहिये॥ २९२॥ कर्क लग्नमें वापी, कूप, तड़ाग, जल रोकनेके लिये बाँध, जल निकालनेके लिये नाली बनाना, पौष्टिक कर्म, चित्रकारी तथा लेखन आदि कार्य करने चाहिये॥ २९३॥ सिंह लग्नमें ईख तथा धान्यसम्बन्धी सब कार्य, वाणिज्य (क्रय-विक्रय), हाट, कृषिकर्म तथा सेवा आदि कर्म, स्थिर कार्य, साहस, युद्ध तथा आभूषण बनाना आदि कार्य सम्पन्न होते हैं॥ २९४॥ कन्या लग्नमें विद्यारम्भ, शिल्पकर्म, ओषधिनिर्माण एवं सेवन, आभूषण-निर्माण और उसका धारण, समस्त चर और स्थिर कार्य, पौष्टिक कर्म तथा विवाहादि समस्त शुभ कार्य करने चाहिये॥ २९५॥ तुला लग्नमें कृषिकर्म, व्यापार, यात्रा, पशुपालन, विवाह-उपनयनादि संस्कार तथा तौलसम्बन्धी जितने कार्य हैं, वे सब सिद्ध होते हैं॥ २९६॥ वृश्चिक लग्नमें गृहारम्भादि समस्त स्थिर कार्य, राजसेवा, राज्याभिषेक, गोपनीय और स्थिर कर्मोंका आरम्भ करना चाहिये॥ २९७॥ धनु लग्नमें उपनयन, विवाह, यात्रा, अश्वकृत्य, गजकृत्य, शिल्पकला तथा चर, स्थिर और मिश्रित कार्योंको करना चाहिये॥ २९८॥ मकर लग्नमें धनुष बनाना, उसमें प्रत्यञ्चा बाँधना, बाण छोड़ना, अस्त्र बनाना और चलाना, कृषि, गोपालन, अश्वकृत्य, गजकृत्य तथा पशुओंका क्रय-विक्रय और दास आदिकी नियुक्ति—ये सब कार्य करने चाहिये॥ २९९॥ कुम्भ लग्नमें कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, जलाशय, शिल्पकर्म, कला आदि, जलपात्र (कलश आदि) तथा अस्त्र-शस्त्रका निर्माण आदि कार्य करना चाहिये॥ ३००॥ मीन लग्नमें उपनयन, विवाह, राज्याभिषेक, जलाशयकी प्रतिष्ठा, गृहप्रवेश, भूषण, जलपात्रनिर्माण तथा अश्वसम्बन्धी कृत्य शुभ होते हैं॥ ३०१॥

इस प्रकार मेषादि लग्नोंके शुद्ध (शुभ स्वामीसे युक्त या दृष्ट) रहनेसे शुभ कार्य सिद्ध होते हैं। पापग्रहसे युक्त या दृष्ट लग्न हो तो उसमें केवल क्रूर कर्म ही सिद्ध होते हैं, शुभ कर्म नहीं॥ ३०२॥

वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, मीन, तुला और

१. जैसे रोहिणी नक्षत्रकी १२ घटी बीत जानेपर चन्द्रमाकी क्या अवस्था होगी? यह जानना है तो गत नक्षत्र-संख्या ३ को ६० से गुणा करके गुणनफल १८० में रोहिणीकी गत (भुक्त) घटी १२ जोड़नेसे १९२ हुआ। इसे चारसे गुणा करके गुणनफल ७६८ में ४५ का भाग देनेपर लब्धि १७ हुई। इसमें पुनः १२से भाग देनेपर शेष ५ रहा। अतः उस समय पाँच अवस्थाएँ गत होकर छठी अवस्था वर्तमान है। वृष राशिमें नष्ट आदिके क्रमसे गणना होती है; अतः उक्त गणनासे छठी अवस्था 'मुदा' सूचित होती है।

धनु—ये शुभग्रहकी राशि होनेके कारण शुभ हैं तथा अन्य (मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर और कुम्भ—ये) पापराशियाँ हैं॥ ३०३॥ लग्नपर जैसे (शुभ या अशुभ) ग्रहोंका योग या दृष्टि हो उसके अनुसार ही लग्न अपना फल देता है। यदि लग्नमें ग्रहके योग या दृष्टिका अभाव हो तो लग्न अपने स्वभावके अनुकूल फल देता है॥ ३०४॥ किसी लग्नके आरम्भमें कार्यका आरम्भ होनेपर उसका पूर्ण फल मिलता है। लग्नके मध्यमें मध्यम और अन्तमें अल्प फल प्राप्त होता है। यह बात सब लग्नोंमें समझनी चाहिये॥ ३०५॥ कार्यकर्ताके लिये सर्वत्र पहले लग्नबल, उसके बाद चन्द्रबल देखना चाहिये। चन्द्रमा यदि बली हो और सप्तम भावमें स्थित हो तो सब ग्रह बलवान् समझे जाते हैं॥ ३०६॥ चन्द्रमाका बल आधार और अन्य ग्रहोंके बल आधेय हैं। आधारके बलपर ही आधेय स्थिर रहता है॥ ३०७॥ यदि चन्द्रमा शुभदायक हो तो सब ग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। यदि चन्द्रमा अशुभ हो तो अन्य सब ग्रह भी अशुभ फल देनेवाले हो जाते हैं। लेकिन धन-स्थानके स्वामीको छोड़कर ही यह नियम लागू होता है; क्योंकि यदि धनेश शुभ हो तो वह चन्द्रमाके अशुभ होनेपर भी अपने शुभ फलको ही देता है॥ ३०८॥

लग्नके जितने अंश उदित हो गये (क्षितिजसे ऊपर आ गये) हों, उनमें जो ग्रह हो वह लग्नके फलको देता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि लग्नके जितने भावांश हों, उनके भीतर रहनेवाला ग्रह लग्नभावका फल देता है तथा उससे आगे-पीछे हो तो लग्नराशिमें रहता हुआ भी आगे-पीछेके भावका फल देता है। लग्नके कथित अंशसे जो ग्रह आगे बढ़ जाता है, वह द्वितीय भावका फल देता है। इस प्रकार सब भावोंमें ग्रहोंकी स्थिति और फलकी कल्पना करनी चाहिये। सब गुणोंसे युक्त लग्न तो थोड़े दिनोंमें नहीं मिल सकता; अतः स्वल्प दोष और अधिक गुणोंसे युक्त लग्नको ही सब कार्योंमें सर्वदा ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि अधिक दोषोंसे युक्त कालको ब्रह्माजी भी शुद्ध नहीं कर सकते; इसलिये थोड़े दोषसे युक्त होनेपर भी अधिक गुणवाला लग्न-काल हितकर होता है॥ ३०९—३११$\frac{1}{2}$॥

(स्त्रियोंके प्रथम रजोदर्शन—) अमावास्या, रिक्ता (४, ९, १४), ८, ६, १२ और प्रतिपदा—इन तिथियोंमें परिघ योगके पूर्वार्धमें, व्यतीपात और वैधृतिमें, संध्याके समय, सूर्य और चन्द्रके ग्रहणकालमें तथा विष्टि (भद्रा)-में स्त्रीका प्रथम मासिकधर्म अशुभ होता है। रवि आदि वारोंमें प्रथम रजोदर्शन हो तो वह स्त्री क्रमशः रोगयुक्ता, पतिकी प्रिया, दुःखयुक्ता, पुत्रवती, भोगवती, पतिव्रता एवं क्लेशयुक्त होती है॥ ३१२—३१४॥ भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, पूर्वा फाल्गुनी, आश्लेषा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ और पूर्व भाद्रपद—ये नक्षत्र तथा चैत्र, कार्तिक, आषाढ़ और पौष—ये मास प्रथम मासिकधर्ममें अनिष्टकारक कहे गये हैं। भद्रा, सूर्यकी संक्रान्ति, निद्रा-अवस्था—रात्रिकाल, सूर्यग्रहण तथा चन्द्र-ग्रहण—ये सब प्रथम मासिकधर्ममें शुभ नहीं हैं। अशुभ योग, निन्द्य नक्षत्र तथा निन्दित दिनमें प्रथम मासिकधर्म हो तो वह स्त्री कुलटा स्वभाववाली होती है॥ ३१५-३१६॥ इसलिये इन सब दोषोंकी शान्तिके लिये विज्ञ पुरुषको चाहिये कि वह तिल, घृत और दूर्वासे गायत्री-मन्त्रद्वारा १०८ बार आहुति करे तथा सुवर्णदान, गोदान एवं तिलदान करे॥ ३१७॥

(गर्भाधान-संस्कार—) मासिकधर्मके आरम्भसे चार रात्रियाँ गर्भाधानमें त्याज्य हैं। सम रात्रियोंमें जब चन्द्रमा विषमराशि और विषम नवमांशमें हो, लग्नपर पुरुषग्रह (रवि, मङ्गल तथा बृहस्पति)-की

दृष्टि हो तो पुत्रार्थी पुरुष सम (२, ४, ६, ८, १०, १२) तिथियोंमें, रेवती, मूल, आश्लेषा और मघा—इन नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें उपवीती और अनग्न (सवस्त्र) होकर स्त्रीका सङ्ग करे॥ ३१८-३१९॥

(पुंसवन और सीमन्तोन्नयन—) प्रथम गर्भ स्थिर हो जानेपर तृतीय या द्वितीय मासमें पुंसवन कर्म करे। उसी प्रकार ४, ६ या ८ वें मासमें उस मासके स्वामी जब बली हों तथा स्त्री-पुरुष दोनोंको चन्द्रमा और ताराका बल प्राप्त हो तो सीमन्त-कर्म करना चाहिये। रिक्ता तिथि और पर्वको छोड़कर अन्य तिथियोंमें ही उसको करनेकी विधि है। मङ्गल, बृहस्पति तथा रविवारमें, तीक्ष्ण और मिश्रसंज्ञक नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें जब चन्द्रमा विषमराशि और विषमराशिके नवमांशमें हो, लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो, स्त्री-पुरुषके जन्म-लग्नसे अष्टम राशिलग्न न हो तथा लग्नमें शुभग्रहका योग और दृष्टि हो, पापग्रहकी दृष्टि न हो एवं शुभग्रह लग्नसे ५, १, ४, ७, ९, १० में और पापग्रह ६, ११ तथा ३ में हों एवं चन्द्रमा १२, ८ तथा लग्नसे अन्य स्थानोंमें हो तो उक्त दोनों कर्म (पुंसवन और सीमन्तोन्नयन) करने चाहिये॥ ३२०—३२४॥ यदि एक भी बलवान् पापग्रह लग्नसे १२, ५ और ८ भावमें हो तो वह सीमन्तिनी स्त्री अथवा उसके गर्भका नाश कर देता है॥ ३२५॥

(जातकर्म और नामकर्म—) जन्मके समयमें ही जातकर्म कर लेना चाहिये। किसी प्रतिबन्धकवश उस समय न कर सके तो सूतक बीतनेपर भी उक्त लग्नमें पितरोंका पूजन (नान्दीमुख कर्म) करके बालकका जातकर्म-संस्कार अवश्य करना चाहिये एवं सूतक बीतनेपर अपने-अपने कुलकी रीतिके अनुसार बालकका नामकरण-संस्कार भी करना चाहिये। भलीभाँति सोच-विचारकर देवता आदिका वाचक, मङ्गलदायक एवं उत्तम नाम रखना चाहिये। यदि देश-कालादि-जन्य किसी प्रतिबन्धसे समयपर कर्म न हो सके तो समयके बाद जब गुरु और शुक्रका उदय हो, तब उत्तरायणमें चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रोंमें शुभग्रहके वार (सोम, बुध, गुरु और शुक्र)-में पिता और बालकके चन्द्रबल और ताराबल प्राप्त होनेपर शुभ लग्न और शुभ नवांशमें, लग्नसे अष्टम भावमें कोई ग्रह न हो तब बालकका जातकर्म और नामकर्म-संस्कार करने चाहिये॥ ३२६—३२९ $\frac{1}{2}$॥

(अन्न-प्राशन—) बालकोंका जन्मसे ६वें या ८ वें मासमें और बालिकाओंका जन्मसे ५वें या ७वें मासमें अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है। परंतु रिक्ता (४, ९, १४), तिथिक्षय, नन्दा (१, ६, ११), १२, ८—इन तिथियोंको छोड़कर (अन्य तिथियोंमें) शुभ दिनमें चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रमें लग्नसे अष्टम और दशम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) होनेपर शुभ नवांशयुक्त शुभ राशिलग्नमें, लग्नपर शुभग्रहका योग या दृष्टि होनेपर जब पापग्रह लग्नसे ३, ६, ११ भावमें और शुभग्रह १, ४, ७, १०, ५, ९ भावमें हो तथा चन्द्रमा १२, ६, ८ स्थानसे भिन्न स्थानमें हो तो पूर्वाह्न-समयमें बालकोंका अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है॥ ३३०—३३४॥

(चूडाकरण—) बालकोंके जन्मसमयसे तीसरे या पाँचवें वर्षमें अथवा अपने कुलके आचार-व्यवहारके अनुसार अन्य वर्षमासमें भी उत्तरायणमें, जब गुरु और शुक्र उदित हों (अस्त न हों), पर्व तथा रिक्तासे अन्य तिथियोंमें, शुक्र, गुरु, सोमवारमें, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशिरा, ज्येष्ठा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—इन नक्षत्रोंमें अपने-अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार चूडाकरणकर्म करना चाहिये। राजाओंके

पट्टबन्धन, बालकोंके चूडाकरण, अन्नप्राशन और उपनयनमें जन्म-नक्षत्र प्रशस्त (उत्तम) होता है। अन्य कर्मोंमें जन्म-नक्षत्र अशुभ कहा गया है। लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध हो, शुभ राशि लग्न हो, उसमें शुभग्रहका नवमांश हो तथा जन्मराशि या जन्मलग्नसे अष्टम राशिलग्न न हो, चन्द्रमा लग्नसे ६, ८, १२ स्थानोंसे भिन्न स्थानोंमें हो, शुभग्रह २, ५, ९, १, ४, ७, १० भावमें हों तथा पापग्रह ३, ६, ११ भावमें हों तो चूडाकरण कर्म प्रशस्त होता है॥ ३३५—३३९ $\frac{१}{२}$ ॥

(**सामान्य क्षौर-कर्म—**) तेल लगाकर तथा प्रात: और सायं संध्याके समयमें क्षौर नहीं कराना चाहिये। इसी प्रकार मङ्गलवारको तथा रात्रिमें भी क्षौरका निषेध है। दिनमें भी भोजनके बाद क्षौर नहीं कराना चाहिये। युद्धयात्रामें भी क्षौर कराना वर्जित है। शय्यापर बैठकर या चन्दनादि लगाकर क्षौर नहीं कराना चाहिये। जिस दिन कहींकी यात्रा करनी हो, उस दिन भी क्षौर न करावे तथा क्षौर करानेके बाद उससे नवें दिन भी क्षौर न करावे। राजाओंके लिये क्षौर करानेके बाद उससे ५ वें-५ वें दिन क्षौर करानेका विधान है। चूडाकरणमें जो नक्षत्र-वार आदि कहे गये हैं, उन्हीं नक्षत्रों और वार आदिमें अथवा कभी भी क्षौरमें विहित नक्षत्र और वारके उदय (मुहूर्त एवं क्षण)-में क्षौर कराना शुभ होता है॥ ३४०-३४१ $\frac{१}{२}$ ॥

(**क्षौरकर्ममें विशेष—**) राजा अथवा ब्राह्मणोंकी आज्ञासे यज्ञमें, माता-पिताके मरणमें, जेलसे छूटनेपर तथा विवाहके अवसरपर निषिद्ध नक्षत्र, वार एवं तिथि आदिमें भी क्षौर कराना शुभप्रद कहा गया है। समस्त मङ्गल कार्योंमें, मङ्गलार्थ इष्ट देवताके समीप क्षुरोंको अर्पण करना चाहिये[१] ॥ ३४२-३४३ ॥

(**उपनयन—**) जिस दिन उपनयनका मुहूर्त स्थिर हो, उससे पूर्व ९ वें, ७ वें, ५ वें या तीसरे दिन उपनयनके लिये विहित नक्षत्र (या उस नक्षत्रके मुहूर्त)-में शुभ वार और शुभ लग्नमें अपने घरोंको चँदोवा, पताका और तोरण आदिसे अच्छी तरह अलंकृत करके, ब्राह्मणोंद्वारा आशीर्वचन, पुण्याहवाचन आदि पुण्य कार्य कराकर, सौभाग्यवती स्त्रियोंके साथ, माङ्गलिक बाजा बजवाते और मङ्गलगान करते-कराते हुए घरसे पूर्वोत्तर-दिशा (ईशानकोण)-में जाकर पवित्र स्थानसे चिकनी मिट्टी खोदकर ले ले और पुन: उसी प्रकार गीत-वाद्यके साथ घर लौट आवे। वहाँ मिट्टी या बाँसके बर्तनमें उस मिट्टीको रखकर उसमें अनेक वस्तुओंसे युक्त और भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे सुशोभित पवित्र जल डाले। (इसी प्रकार और भी अपने कुलके अनुरूप आचारका पालन करे)॥ ३४४—३४७॥ गर्भाधान अथवा जन्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मण-बालकोंका, ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रिय बालकोंका और बारहवें वर्षमें वैश्य-बालकोंका मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत-संस्कार) होना चाहिये॥ ३४८॥ जन्मसे पाँचवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार करनेपर बालक वेद-शास्त्र-विशारद तथा श्रीसम्पन्न होता है। इसलिये उसमें ब्राह्मण-बालकका उपनयन-संस्कार करना चाहिये॥ ३४९॥ शुक्र और बृहस्पति निर्बल हों तब भी वे बालकके लिये शुभदायक होते हैं। अत: शास्त्रोक्त वर्षमें उपनयनसंस्कार अवश्य करना चाहिये। शास्त्रने जिस वर्षमें उपनयनकी आज्ञा नहीं दी है, उसमें वह संस्कार नहीं करना चाहिये॥ ३५०॥ गुरु, शुक्र तथा अपने वेदकी शाखाके स्वामी—ये दृश्य हों—अस्त न हुए हों तो उत्तरायणमें उपनयनसंस्कार करना उचित है। बृहस्पति, शुक्र, मङ्गल और बुध—ये क्रमश: ऋक्, यजु:, साम

१. चूडाकरण या उपनयनमें क्षुरसे ही कार्य होता है, इसलिये उसके रक्षार्थ लोग अपने-अपने कुलदेवताके पास क्षुरको समर्पण करते हैं।

और अथर्ववेदके अधिपति हैं ॥ ३५१ ॥ शरद्, ग्रीष्म और वसन्त—ये व्युत्क्रमसे द्विजातियोंके उपनयनका मुख्य काल हैं अर्थात् शरद् ऋतु वैश्योंके, ग्रीष्म क्षत्रियोंके और वसन्त ब्राह्मणोंके उपनयनका मुख्य काल है। माघ आदि पाँच महीनोंमें उन सबके लिये उपनयनका साधारण काल है ॥ ३५२ ॥ माघ मासमें जिसका उपनयन हो वह अपने कुलोचित आचार तथा धर्मका ज्ञाता होता है। फाल्गुनमें यज्ञोपवीत धारण करनेवाला पुरुष विधिज्ञ तथा धनवान् होता है। चैत्रमें उपनयन होनेपर ब्रह्मचारी वेद-वेदाङ्गोंका पारगामी विद्वान् होता है ॥ ३५३ ॥ वैशाख मासमें जिसका उपनयन हो, वह धनवान तथा वेद, शास्त्र एवं विविध विद्याओंमें निपुण होता है और ज्येष्ठमें यज्ञोपवीत लेनेवाला द्विज विधिज्ञोंमें श्रेष्ठ और बलवान् होता है ॥ ३५४ ॥

शुक्लपक्षमें द्वितीया, पञ्चमी, त्रयोदशी, दशमी और सप्तमी तिथियाँ यज्ञोपवीतसंस्कारके लिये ग्राह्य हैं। एकादशी, षष्ठी और द्वादशी—ये तिथियाँ अधिक श्रेष्ठ हैं। शेष तिथियोंको मध्यम माना गया है। कृष्णपक्षमें द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी ग्राह्य हैं। अन्य तिथियाँ अत्यन्त निन्दित हैं॥ ३५५-३५६ ॥ हस्त, चित्रा, स्वाती, रेवती, पुष्य, आर्द्रा, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, अनुराधा तथा रोहिणी—ये नक्षत्र उपनयन-संस्कारके लिये उत्तम हैं ॥ ३५७ ॥ जन्मनक्षत्रसे दसवाँ 'कर्म' संज्ञक है, सोलहवाँ 'संघात' नक्षत्र है, अठारहवाँ 'समुदय' नक्षत्र है, तेईसवाँ 'विनाश' कारक है और पचीसवाँ 'मानस' है। इनमें शुभ कर्म नहीं आरम्भ करने चाहिये। गुरु, बुध और शुक्र—इन तीनोंके वार उपनयनमें प्रशस्त हैं। सोमवार और रविवार ये मध्यम माने गये हैं। शेष दो वार मङ्गल और शनैश्चर निन्दित हैं। दिनके तीन भाग करके उसके आदि भागमें देव-सम्बन्धी कर्म (यज्ञ-पूजनादि) करने चाहिये ॥ ३५८—३६० ॥ द्वितीय भागमें मनुष्य-सम्बन्धी कार्य (अतिथि-सत्कार आदि) करनेका विधान है और तृतीय भागमें पैतृक कर्म (श्राद्ध-तर्पणादि)-का अनुष्ठान करना चाहिये। गुरु, शुक्र और अपनी वैदिक शाखाके अधिपति अपनी नीच राशिमें या उसके किसी अंशमें हों अथवा अपने शत्रुकी राशिमें या उसके किसी अंशमें स्थित हों तो उस समय यज्ञोपवीत लेनेवाला द्विज कला और शीलसे रहित होता है। इसी प्रकार अपनी शाखाके अधिपति, गुरु एवं शुक्र यदि अपने अधिशत्रु-गृहमें या उसके किसी अंशमें स्थित हों तो ब्रह्मचर्यव्रत (यज्ञोपवीत) ग्रहण करनेवाला द्विज महापातकी होता है। गुरु, शुक्र एवं अपनी शाखाके अधिपति ग्रह यदि अपनी उच्च राशि या उसके किसी अंशमें हों, अपनी राशि या उसके किसी अंशमें हों अथवा केन्द्र (१, ४, ७, १०) या त्रिकोण (५, ९)-में स्थित हों तो उस समय यज्ञोपवीत लेनेवाला ब्रह्मचारी अत्यन्त धनवान् तथा वेद-वेदाङ्गोंका पारङ्गत विद्वान् होता है ॥ ३६१—३६४ ॥ यदि गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति परमोच्च स्थानमें हों और मृत्यु (आठवाँ) स्थान शुद्ध हो तो उस समय ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेवाला द्विज वेद-शास्त्रमें 'निष्णात' होता है॥ ३६५ ॥ गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति यदि अपने अधिमित्रगृहमें या उसके उच्च गृहमें अथवा उसके अंशमें स्थित हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाला ब्रह्मचारी विद्या तथा धनसे सम्पन्न होता है ॥ ३६६ ॥ शाखाधिपतिका दिन हो, बालकको शाखाधिपतिका बल प्राप्त हो तथा शाखाधिपतिका ही लग्न हो—ये तीन बातें उपनयन-संस्कारमें दुर्लभ हैं॥ ३६७ ॥ उसके चतुर्थांशमें चन्द्रमा हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाला बालक विद्यामें निपुण होता है; किंतु यदि वह पापग्रहके अंशमें

अथवा अपने अंशमें हो तो यज्ञोपवीती द्विज सदा दरिद्र और दुःखी रहता है॥ ३६८॥ जब श्रवणादि नक्षत्रमें विद्यमान चन्द्रमा कर्कके अंश-विशेषमें स्थित हो तो ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेवाला द्विज वेद, शास्त्र तथा धन-धान्य-समृद्धिसे सम्पन्न होता है॥ ३६९॥ शुभ लग्न हो, शुभग्रहका अंश चल रहा हो, मृत्युस्थान शुद्ध हो तथा लग्न और मृत्यु-स्थान शुभग्रहोंसे संयुक्त हो अथवा उनपर शुभग्रहोंकी दृष्टि हो, अभीष्ट स्थानमें स्थित बृहस्पति, सूर्य और चन्द्रमा आदि पाँच बलवान् ग्रहोंसे लग्नस्थान संयुक्त या दृष्ट हो अथवा स्थान आदिके बलसे पूर्ण चार ही शुभग्रहयुक्त ग्रहोंद्वारा लग्नस्थान देखा जाता हो और वह इक्कीस महादोषोंसे रहित हो तो यज्ञोपवीत लेना शुभ है। शुभग्रहोंसे संयुक्त या दृष्ट सभी राशियाँ शुभ हैं॥ ३७०—३७२॥ वे शुभ राशियाँ शुभ ग्रहके नवांशमें हों तो व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत)-में ग्राह्य हैं, किंतु कर्कराशिका अंश शुभ ग्रहसे युक्त तथा दृष्ट हो तो भी कभी ग्रहण करने योग्य नहीं है॥ ३७३॥ इसलिये वृष और मिथुनके अंश तथा तुला और कन्याके अंश शुभ हैं। इस प्रकार लग्नगत नवांश होनेपर व्रतबन्ध उत्तम बताया गया है॥ ३७४॥ तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें पापग्रह हों, छठा, आठवाँ और बारहवाँ स्थान शुभग्रहसे खाली हो और चन्द्रमा छठे, आठवें, लग्न तथा बारहवें स्थानमें न हों तो उपनयन शुभ होता है॥ ३७५॥ चन्द्रमा अपने उच्च स्थानमें होकर भी यदि व्रती पुरुषके व्रतबन्ध-मुहूर्त-सम्बन्धी लग्नमें स्थित हो तो वह उस बालकको निर्धन और क्षयका रोगी बना देता है॥ ३७६॥ यदि सूर्य केन्द्रस्थानमें प्रकाशित हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाले बालकोंके पिताका नाश हो जाता है। पाँच दोषोंसे रहित लग्न उपनयनमें शुभदायक होता है॥ ३७७॥ वसन्त ऋतुके सिवा और कभी कृष्णपक्षमें, गलग्रहमें, अनध्यायके दिन, भद्रामें तथा षष्ठीको बालकका उपनयन-संस्कार नहीं होना चाहिये॥ ३७८॥ त्रयोदशीसे लेकर चार, सप्तमीसे लेकर तीन दिन और चतुर्थी ये आठ गलग्रह अशुभ कहे गये हैं॥ ३७९॥

(**क्षुरिका-बन्धनकर्म—**) अब मैं क्षत्रियोंके लिये क्षुरिका-बन्धन कर्मका वर्णन करूँगा, जो विवाहके पहले सम्पन्न होता है। विवाहके लिये कहे हुए मासोंमें, शुक्लपक्षमें, जबकि बृहस्पति, शुक्र और मङ्गल अस्त न हों, चन्द्रमा और ताराका बल प्राप्त हो, उस समय मौञ्जीबन्धनके लिये बतायी हुई तिथियोंमें, मङ्गलवारको छोड़कर शेष सभी दिनोंमें यह कर्म किया जाता है। कर्ताका लग्नगत नवांश यदि अष्टमोदयसे रहित न हो, अष्टम शुद्ध हो; चन्द्रमा छठे, आठवें और बारहवेंमें न होकर लग्नमें स्थित हों; शुभग्रह दूसरे, पाँचवें, नवें, लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थानोंमें हों; पापग्रह तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें हों तो देवताओं और पितरोंकी पूजा करके क्षुरिका-बन्धनकर्म करना चाहिये॥ ३८०—३८३॥ पहले देवताओंके समीप क्षुरिका (कटार)-की भलीभाँति पूजा करे। तत्पश्चात् शुभ लक्षणोंसे युक्त उस क्षुरिकाको उत्तम लग्नमें अपनी कटिमें बाँधे॥ ३८४॥ क्षुरिकाकी लम्बाईके आधे (मध्यभाग) पर जो विस्तारमान हो उससे क्षुरिकाके विभाग करे। वे छेदखण्ड (विभाग) क्रमसे ध्वज आदि आय कहलाते हैं। उनकी आठ संज्ञाएँ हैं—ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वा, वृष, गर्दभ, गज और ध्वाङ्क्ष। ध्वज नामक आयमें शत्रुका नाश होता है॥ ३८५॥ धूम्र आयमें घात, सिंह नामक आयमें जय, श्वा (कुत्ता) नामक आयमें रोग, वृष आयमें धनलाभ, गर्दभ आयमें अत्यन्त दुःखकी प्राप्ति, गज आयमें अत्यन्त प्रसन्नता और ध्वाङ्क्ष नामक आयमें धनका

नाश होता है। खड्ग और छुरीके मापको अपने अङ्गुलसे गिने॥ ३८६-३८७॥ मापके अङ्गुलोंमेंसे ग्यारहसे अधिक हो तो ग्यारह घटा दे। फिर शेष अङ्गुलोंके क्रमशः फल इस प्रकार हैं॥ ३८८॥ पुत्र-लाभ, शत्रुवध, स्त्रीलाभ, शुभगमन, अर्थहानि, अर्थवृद्धि, प्रीति, सिद्धि, जय और स्तुति॥ ३८९॥

छुरी या तलवारमें यदि ध्वज अथवा वृष आय-विभागके पूर्वभाग[1]में नष्ट (भङ्ग) हो, तथा सिंह और गज-आयके मध्यभागमें तथा कुक्कुर और काक-आयके अन्तिम भागमें एवं धूम्र और गर्दभ आयके अन्तिम भागमें नष्ट हो जाय तो शुभ नहीं होता है। (अतः ऐसी छुरी या तलवारका परित्याग कर देना चाहिये; यह बात अर्थतः सिद्ध होती है)॥ ३९ $\frac{1}{2}$॥

(**समावर्तन—**) उत्तरायणमें जब गुरु और शुक्र दोनों उदित हों, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, श्रवण, अनुराधा, रोहिणी—ये नक्षत्र हों तथा रवि, सोम, बुध, गुरु और शुक्रवारमेंसे कोई वार हो तो इन्हीं रवि आदि पाँच ग्रहोंकी राशि, लग्न और नवमांशमें, प्रतिपदा, पर्व, रिक्ता, अमावास्या, तथा सप्तमीसे तीन तिथि—इन सब तिथियोंको छोड़कर अन्य तिथियोंमें गुरुकुलसे अध्ययन समाप्त करके घरको लौटनेवाले जितेन्द्रिय द्विजकुमारका समावर्तन-संस्कार (मुण्डन-हवन आदि) करना चाहिये॥ ३९१—३९३ $\frac{1}{2}$॥

(**विवाहकथन—**) विप्रवर! सब आश्रमोंमें यह गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है। उसमें भी जब सुशीला धर्मपत्नी प्राप्त हो तभी सुख होता है। स्त्रीको सुशीलताकी प्राप्ति तभी होती है, जब विवाहकालिक लग्न शुभ हो। इसलिये मैं साक्षात् ब्रह्माजीद्वारा कथित लग्न-शुद्धिको विचार करके कहता हूँ॥ ३९४-३९५ $\frac{1}{2}$॥

प्रथमतः कन्यादान करनेवालोंको चाहिये कि वे किसी शुभ दिनको अपनी अञ्जलिमें पान, फूल, फल और द्रव्य आदि लेकर ज्यौतिषशास्त्रके ज्ञाता समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, प्रसन्नचित्त तथा सुखपूर्वक बैठे हुए विद्वान् ब्राह्मणके समीप जाय और उन्हें देवताके समान मानकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपनी कन्याके विवाह-लग्नके विषयमें पूछे॥ ३९६-३९७॥

(ज्यौतिषीको चाहिये कि उस समय लग्न और ग्रह स्पष्ट करके देखे—) यदि प्रश्नलग्नमें पापग्रह हो या लग्नसे सप्तम भावमें मङ्गल हो तो जिसके लिये प्रश्न किया गया है, उस कन्या और वरको ८ वर्षके भीतर ही घातक अरिष्ट प्राप्त होगा, ऐसा समझना चाहिये। यदि लग्नमें चन्द्रमा और उससे सप्तम भावमें मङ्गल हो तो ८ वर्षके भीतर ही उस कन्याके पतिको घातक कष्ट प्राप्त होगा—ऐसा समझे। यदि लग्नसे पञ्चम भावमें पापग्रह हो और वह नीचराशिमें पापग्रहसे देखा जाता हो तो वह कन्या कुलटा स्वभाववाली अथवा मृतवत्सा होती है, इसमें संशय नहीं है॥ ३९८—४००॥ यदि प्रश्नलग्नसे ३, ५, ७, ११ और १० वें भावमें चन्द्रमा हो तथा उसपर गुरुकी दृष्टि हो तो समझना चाहिये कि उस कन्याको शीघ्र ही पतिकी प्राप्ति होगी॥ ४०१॥ यदि प्रश्नलग्नमें तुला, वृष या कर्क राशि हो तथा वह शुक्र और चन्द्रमासे युक्त हो तो विवाहके विषयमें प्रश्न करनेपर वरके लिये कन्या (पत्नी) लाभ होता है अथवा सम राशि लग्न हो, उसमें समराशिका ही द्रेष्काण हो और सम राशिका नवमांश तथा उसपर चन्द्रमा और शुक्रकी दृष्टि हो तो वरको पत्नीकी प्राप्ति होती है॥ ४०२-४०३॥

---

१. छुरी या तलवारकी मुट्ठीकी ओर पूर्व और अग्रकी ओर अन्त समझना चाहिये।

इसी प्रकार यदि प्रश्नलग्नमें पुरुषराशि और पुरुषराशिका नवमांश हो तथा उसपर पुरुषग्रह (रवि, मङ्गल और गुरु)-की दृष्टि हो तो जिनके लिये प्रश्न किया गया है, उन कन्याओंको पतिकी प्राप्ति होती है ॥ ४०४ ॥

यदि प्रश्नसमयमें कृष्णपक्ष हो और चन्द्रमा सम राशिमें होकर लग्नसे छठे या आठवें भावमें पापग्रहसे देखा जाता हो तो (निकट भविष्यमें) विवाह-सम्बन्ध नहीं हो पाता है ॥ ४०५ ॥ यदि प्रश्नकालमें शुभ निमित्त और शुभ शकुन देखने-सुननेमें आवें तो वर-कन्याके लिये शुभ होता है तथा यदि निमित्त एवं शकुन आदि अशुभ हों तो अशुभ फल होता है ॥ ४०६ ॥

(कन्या-वरण—) पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण)-से शुद्ध दिनमें यदि वर और कन्याके चन्द्रबल तथा ताराबल प्राप्त हों तो विवाहके लिये विहित नक्षत्र या उसके मुहूर्तमें वरको चाहिये कि अपने कुलके श्रेष्ठ जनोंके साथ गीत, वाद्यकी ध्वनि और ब्राह्मणोंके आशीर्वचन (शान्ति-मन्त्रपाठ) आदिसे युक्त होकर विविध आभूषण, शुभ वस्त्र, फूल, फल, पान, अक्षत, चन्दन और सुगन्धादि लेकर कन्याके घरमें जाय और विनीत भावसे कन्याका वरण करे। (कन्याका वरण वरके बड़े भाई अथवा गुरुजनको करना चाहिये।) उसके बाद कन्याका पिता प्रसन्नचित्त होकर अभीष्ट वरको कन्यादान करे ॥ ४०७—४०९ ॥

कन्याके पिताको चाहिये कि अपनी कन्यासे श्रेष्ठ, कुल, शील, वयस्, रूप, धन और विद्यासे युक्त वरको वरके वयस्से छोटी रूपवती अपनी कन्या दे। कन्यादानसे पूर्व सब गुणोंकी आश्रयभूता, तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी, दिव्य गन्ध, माला और वस्त्रसे सुशोभित, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा सब आभूषणोंसे मण्डित, अमूल्य मणिमालाओंसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई, सहस्रों दिव्य सहेलियोंसे सुसेविता सर्वगुणसम्पन्ना शची (इन्द्राणी)-देवीकी पूजा करके उनसे प्रार्थना करे—'हे देवि! हे इन्द्राणि! हे देवेन्द्रप्रियभामिनि! आपको मेरा नमस्कार है। देवि! इस विवाहमें आप सौभाग्य, आरोग्य और पुत्र प्रदान करें।' इस प्रकार प्रार्थना करके पूजाके बाद विधानपूर्वक ऊपर कहे हुए गुणयुक्त वरके लिये अपनी कुमारी कन्याका दान करे ॥ ४१०—४१४ ॥

(कन्या-वरकी वर्षशुद्धि—) कन्याके जन्मसमयसे सम वर्षोंमें और वरके जन्मसमयसे विषम वर्षोंमें होनेवाला विवाह उन दोनोंके प्रेम और प्रसन्नताको बढ़ानेवाला होता है। इससे विपरीत (कन्याके विषम और वरके सम वर्षमें) विवाह वर-कन्या दोनोंके लिये घातक होता है ॥ ४१५ ॥

(विवाहविहित मास—) माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—ये चार मास विवाहमें श्रेष्ठ तथा कार्तिक और मार्गशीर्ष ये दो मास मध्यम हैं। अन्य मास निन्दित हैं ॥ ४१६ ॥

सूर्य जब आर्द्रा नक्षत्रमें प्रवेश करे तबसे दस नक्षत्रतक (अर्थात् आर्द्रासे स्वातीतकके नक्षत्रोंमें जबतक सूर्य रहें, तबतक) विवाह, देवताकी प्रतिष्ठा और उपनयन नहीं करने चाहिये। बृहस्पति और शुक्र जब अस्त हों, बाल अथवा वृद्ध हों तथा केवल बृहस्पति सिंहराशि या उसके नवमांशमें हों, उस समय भी ऊपर कहे हुए शुभ कार्य नहीं करने चाहिये ॥ ४१७-७१८ ॥

(गुरु तथा शुक्रके बाल्य और वृद्धत्व—) शुक्र जब पश्चिममें उदय होता है तो दस दिन और पूर्वमें उदय होता है तो तीन दिन तक बालक रहता है तथा जब पश्चिममें अस्त होनेको रहता है तो अस्तसे पाँच दिन पहले और पूर्वमें अस्त होनेसे

पंद्रह दिन पहले वृद्ध हो जाता है। गुरु उदयके बाद पंद्रह दिन बालक और अस्तसे पहले पंद्रह दिन वृद्ध रहता है॥ ४१९॥

तबतक भगवान् हृषीकेश शयनावस्था[1]में हों तबतक तथा भगवान्‌के उत्सव (उत्थान या जन्मदिन)-में भी अन्य मङ्गलकार्य नहीं करने चाहिये॥ ४२०॥ पहले गर्भके पुत्र और कन्याके जन्ममास, जन्मनक्षत्र और जन्म-तिथि-वारमें भी विवाह नहीं करना चाहिये। आद्य गर्भकी कन्या और आद्य गर्भके वरका परस्पर विवाह नहीं कराना चाहिये तथा वर-कन्यामें कोई एक ही ज्येष्ठ (आद्य गर्भका) हो तो ज्येष्ठ मासमें विवाह श्रेष्ठ है। यदि दोनों ज्येष्ठ हों तो ज्येष्ठ मासमें विवाह अनिष्टकारक कहा गया है॥ ४२१-४२२॥

(**विवाहमें वर्ज्य—**) भूकम्पादि उत्पात तथा सर्वग्रास सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हो तो उसके बाद सात दिनतकका समय शुभ नहीं है। यदि खण्डग्रहण हो तो उसके बाद तीन दिन अशुभ होते हैं। तीन दिनका स्पर्श करनेवाली (वृद्धि) तिथि, क्षयतिथि तथा ग्रस्तास्त (ग्रहण लगे चन्द्र, सूर्यका अस्त) हो तो पूर्वके तीन दिन अच्छे नहीं माने जाते हैं। यदि ग्रहण लगे हुए सूर्य, चन्द्रका उदय हो तो बादके तीन दिन अशुभ होते हैं। संध्यासमयमें ग्रहण हो तो पहले और बादके भी तीन-तीन दिन अनिष्टकारक हैं तथा मध्य रात्रिमें ग्रहण हो तो सात दिन (तीन पहलेके और तीन बादके और एक ग्रहणवाला दिन) अशुभ होते हैं॥ ४२३-४२४॥ मासके अन्तिम दिन, रिक्ता, अष्टमी, व्यतीपात और वैधृतियोग सम्पूर्ण तथा परिघ योगका पूर्वार्ध—ये विवाहमें वर्जित हैं॥ ४२५॥

(**विहित नक्षत्र—**) रेवती, रोहिणी, तीनों उत्तरा, अनुराधा, स्वाती, मृगशिरा, हस्त, मघा और मूल—ये ग्यारह नक्षत्र वेधरहित हों तो इन्हींमें स्त्रीका विवाह शुभ कहा गया है॥ ४२६॥ विवाहमें वरको सूर्यका और कन्याको बृहस्पतिका बल अवश्य प्राप्त होना चाहिये। यदि ये दोनों अनिष्टकारक हों तो यत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये॥ ४२७॥ गोचर, वेध और अष्टकवर्ग-सम्बन्धी बल उत्तरोत्तर अधिक है[2]। इसलिये गोचरबल स्थूल (साधारण) माना जाता है। अर्थात् ग्रहोंका अष्टकवर्ग-बल ग्रहण करना चाहिये। प्रथम तो वर-कन्याके चन्द्रबल और ताराबल देखने चाहिये। उसके बाद पञ्चाङ्ग (तिथि, वार आदि)-के बल देखे। तिथिमें एक, वारमें दो, नक्षत्रमें तीन, योगमें चार और करणमें पाँच गुने बल होते हैं। इन सबकी अपेक्षा मुहूर्त बली होता है। मुहूर्तसे भी लग्न, लग्नसे भी होरा (राश्यर्ध), होरासे द्रेष्काण, द्रेष्काणसे नवमांश, नवमांशसे भी द्वादशांश तथा उससे भी त्रिंशांश[3] बली होता है। इसलिये इन सबके बल देखने चाहिये॥ ४२८—४३१॥

विवाहमें शुभग्रहसे युक्त या दृष्ट होनेपर सब राशि प्रशस्त हैं। चन्द्रमा, सूर्य, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र आदि पाँच ग्रह जिस राशिके इष्ट हों, वह लग्न शुभप्रद होता है। यदि चार ग्रह भी बली हों तो भी उन्हें शुभप्रद ही समझना चाहिये॥ ४३२-४३३॥

मुने! जामित्र (लग्नसे सप्तम स्थान) शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो तथा लग्न इक्कीस दोषोंसे रहित हो तो उसे विवाहमें ग्रहण करना चाहिये। अब मैं

१. आषाढ़ शुक्ला ११ से कार्तिक शुक्ला ११ तक भगवान् हृषीकेशके शयनका काल है।

२. अर्थात् गोचरबल एक, वेधबल दो और अष्टकवर्ग-बल तीनके बराबर है।

३. जातक अध्यायमें देखिये। अभिप्राय यह है कि नक्षत्रविहित (गुणयुक्त) न मिले तो उसका मुहूर्त लेना चाहिये। यदि लग्नराशि निर्बल हो तो उसके नवमांश आदिका बल देखकर निर्बल लग्नको भी प्रशस्त समझना चाहिये।

उन इक्कीस दोषोंके नाम, स्वरूप और फलका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, सुनो— ॥ ४३४ $\frac{1}{2}$ ॥

(विवाहके इक्कीस दोष—) पञ्चाङ्ग-शुद्धिका न होना, यह प्रथम दोष कहा गया है। उदयास्तकी शुद्धिका न होना २, उस दिन सूर्यकी संक्रान्तिका होना ३, पापग्रहका षड्वर्गमें रहना ४, लग्नसे छठे भावमें शुक्रकी स्थिति ५, अष्टममें मङ्गलका रहना ६, गण्डान्त होना ७, कर्तरीयोग ८, बारहवें, छठे और आठवें चन्द्रमाका होना तथा चन्द्रमाके साथ किसी अन्य ग्रहका होना ९, वर-कन्याकी जन्मराशिसे अष्टम राशि लग्न हो या दैनिक चन्द्रराशि हो १०, विषघटी ११, दुर्मुहूर्त १२, वार-दोष १३, खार्जूर १४, नक्षत्रैकचरण १५, ग्रहण और उत्पातके नक्षत्र १६, पापग्रहसे विद्ध नक्षत्र १७, पापसे युक्त नक्षत्र १८, पापग्रहका नवमांश १९, महापात २० और वैधृति २१—विवाहमें ये २१ दोष कहे गये हैं ॥ ४३५—४३८ $\frac{1}{2}$ ॥

मुने! तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण—इन पाँचोंका मेल 'पञ्चाङ्ग' कहलाता है। उसकी शुद्धि 'पञ्चाङ्ग'शुद्धि कहलाती है। जिस दिन पञ्चाङ्गके दोष हों, उस दिन विवाहलग्न बनाना निरर्थक है। इस प्रकारका लग्न यदि पाँच इष्ट ग्रहोंसे युक्त हो तो भी उसको विषमिश्रित दूधके समान त्याग देना चाहिये ॥ ४३९-४४० $\frac{1}{2}$ ॥ लग्न या उसके नवमांश अपने-अपने स्वामीसे युक्त या दृष्ट न हों अथवा परस्पर (लग्नेशसे नवमांश और नवमांशपतिसे लग्नेश) युक्त या दृष्ट न हों अथवा अपने स्वामीके शुभग्रह मित्रसे युक्त या दृष्ट न हों तो वरके लिये घातक होते हैं[1]। इसी प्रकार लग्नसे सप्तम और उसके नवमांशमें भी ये दोनों यदि अपने-अपने स्वामीसे अथवा परस्पर युक्त या दृष्ट नहीं हों या अपने-अपने स्वामीके शुभ मित्रसे युक्त या दृष्ट न हों तो उस दशामें विवाह होनेपर वह वधूके लिये घातक है ॥ ४४१-४४२ $\frac{1}{2}$ ॥

सूर्यकी संक्रान्तिके समयसे पूर्व और पश्चात् सोलह-सोलह घड़ी विवाह आदि शुभ कार्योंमें त्याज्य है। लग्नका षड्वर्ग (राशि, होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश तथा त्रिंशांश) शुभ हो तो विवाह, देवप्रतिष्ठा आदि कार्योंमें श्रेष्ठ माना गया है ॥ ४४३-४४४ ॥

लग्नसे छठे स्थानमें शुक्र हो तो वह 'भृगुषष्ठ' नामक दोष कहलाता है। उच्चस्थ और शुभ ग्रहसे युक्त होनेपर भी उस लग्नको सदा त्याग देना चाहिये। लग्नसे अष्टम स्थानमें मङ्गल हो तो यह 'भौम महादोष' कहलाता है। यदि मङ्गल उच्चमें हो और तीन शुभ ग्रह लग्नमें हों तो इस लग्नका त्याग नहीं करना चाहिये (अर्थात् ऐसी स्थितिमें अष्टम मङ्गलका दोष नष्ट हो जाता है) ॥ ४४५-४४६ ॥

(गण्डान्त-दोष—) पूर्णा (५, १०, १५) तिथियोंके अन्त और नन्दा (१, ६, ११) तिथियोंकी आदिकी सन्धिमें दो घड़ी 'तिथिगण्डान्त-दोष' कहलाता है। यह जन्म, यात्रा, उपनयन और विवाहादि शुभ कार्योंमें घातक कहा गया है ॥ ४४७ ॥ कर्क लग्नके अन्त और सिंह लग्नके आदिकी सन्धिमें, वृश्चिक और धनुकी सन्धिमें तथा मीन और मेष लग्नकी सन्धिमें आधा घड़ी 'लग्नगण्डान्त' कहलाता है। यह भी घातक होता है ॥ ४४८ ॥ आश्लेषाके अन्तका चतुर्थ चरण और मघाका प्रथम चरण तथा ज्येष्ठाके अन्तकी १६ घड़ी और मूलका प्रथम चरण एवं रेवती नक्षत्रके अन्तकी ग्यारह घड़ी और अश्विनीका प्रथम चरण—इस प्रकार इन दो-दो नक्षत्रोंकी सन्धिका काल

१. यहाँ घातक शब्द अशुभ-सूचक समझना चाहिये अर्थात् ऐसे लग्नमें वरको अशुभ फल प्राप्त होता है।

'नक्षत्रगण्डान्त' कहलाता है। ये तीनों प्रकारके गण्डान्त महाक्रूर होते हैं॥ ४४७—४४९ १/२॥

(कर्तरीदोष—) लग्नसे बारहवें मार्गी और द्वितीयमें वक्री दोनों पापग्रह हों तो लग्नमें आगे-पीछे दोनों ओरसे जानेके कारण यह 'कर्तरीदोष' कहलाता है। इसमें विवाह होनेसे यह कर्तरीदोष वर-वधू दोनोंके गलेपर छुरी चलानेवाला (उनका अनिष्ट करनेवाला) होता है। ऐसे कर्तरीदोषसे युक्त लग्नका परित्याग कर देना चाहिये॥ ४५०-४५१॥

(लग्न-दोष—) यदि लग्नसे छठे, आठवें तथा बारहवेंमें चन्द्रमा हो तो यह 'लग्नदोष' कहलाता है। ऐसा लग्न शुभग्रहों तथा अन्य सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त होनेपर भी दोषयुक्त होता है। वह लग्न बृहस्पति और शुक्रसे युक्त हो तथा चन्द्रमा उच्च, नीच, मित्र या शत्रुराशिमें (कहीं भी) हो, तो भी यत्नपूर्वक त्याग देने योग्य है, क्योंकि यह सब गुणोंसे युक्त होनेपर भी वर-वधूके लिये 'घातक' कहा गया है॥ ४५२-४५३ १/२॥

(सग्रहदोष—) चन्द्रमा यदि किसी ग्रहसे युक्त हो तो 'सग्रह' नामक दोष होता है। इस दोषमें भी विवाह नहीं करना चाहिये। चन्द्रमा यदि सूर्यसे युक्त हो तो दरिद्रता, मङ्गलसे युक्त हो तो घात अथवा रोग, बुधसे युक्त हो तो अनपत्यता (संतान-हानि), गुरुसे युक्त हो तो दौर्भाग्य, शुक्रसे युक्त हो तो पति-पत्नीमें शत्रुता, शनिसे युक्त हो तो प्रव्रज्या (घरका त्याग), राहुसे युक्त हो तो सर्वस्वहानि और केतुसे युक्त हो तो कष्ट और दरिद्रता होती है॥ ४५४—४५७॥

(पापग्रहकी निन्दा और शुभग्रहोंकी प्रशंसा—) मुने! इस प्रकार सग्रहदोषमें चन्द्रमा यदि पापग्रहसे युक्त हो तो वर-वधू दोनोंके लिये घातक होता है। यदि वह शुभग्रहोंसे युक्त हो तो उस स्थितिमें यदि उच्च या मित्रकी राशिमें चन्द्रमा हो तो लग्न दोषयुक्त रहनेपर भी वर-वधूके लिये कल्याणकारी होता है। परंतु चन्द्रमा स्वोच्चमें या स्वराशिमें अथवा मित्रकी राशिमें रहनेपर भी यदि पापग्रहसे युक्त हो तो वर-वधू दोनोंके लिये घातक होता है॥ ४५८-४५९ १/२॥

(अष्टमराशि लग्नदोष—) वर या वधूके जन्मलग्नसे अथवा उनकी जन्मराशिसे अष्टमराशि विवाह-लग्नमें पड़े तो यह दोष भी वर और वधूके लिये घातक होता है। वह राशि या वह लग्न शुभग्रहसे युक्त हो तो भी उस लग्नको, उस नवमांशसे युक्त लग्नको अथवा उसके स्वामीको यत्नपूर्वक त्याग देना चाहिये॥ ४६०-४६१ १/२॥

(द्वादश राशिदोष) वर-वधूके जन्म-लग्न या जन्मराशिसे द्वादश राशि यदि विवाह-लग्नमें पड़े तो वर-वधूके धनकी हानि होती है। इसलिये उस लग्नको, उसके नवमांशको और उसके स्वामीको भी त्याग देना चाहिये॥ ४६२ १/२॥

(जन्मलग्न और जन्मराशिकी प्रशंसा—) जन्म-राशि और जन्मलग्नका उदय विवाहमें शुभ होता है तथा दोनोंके उपचय (३, ६, १०, ११) स्थान यदि विवाह-लग्नमें हो तो अत्यन्त शुभप्रद होते हैं॥ ४६३ १/२॥

(विषघटी ध्रुवाङ्क—) अश्विनीका ध्रुवाङ्क ५०, भरणीका २४, कृत्तिकाका ३०, रोहिणीका ५४, मृगशिराका १३, आर्द्राका २१, पुनर्वसुका ३०, पुष्यका २०, आश्लेषाका ३२, मघाका ३०, पूर्वाफाल्गुनीका २०, उत्तराफाल्गुनीका १८, हस्तका २१, चित्राका २०, स्वातीका १४, विशाखाका १४, अनुराधाका १०, ज्येष्ठाका १४, मूलका ५६, पूर्वाषाढ़का २४, उत्तराषाढ़का २०, श्रवणका १०, धनिष्ठाका १०, शतभिषाका १८, पूर्व भाद्रपदका १६, उत्तर भाद्रपदका २४ और रेवतीका ध्रुवाङ्क ३० है। इन अश्विनी आदि नक्षत्रोंके अपने-अपने

ध्रुवाङ्क तुल्य घड़ीके बाद ४ घड़ीतक विषघटी होती है। विवाह आदि शुभ कार्योंमें विषघटिकाओंका त्याग करना चाहिये[1] ॥ ४६४—४६८ ॥

रवि आदि वारोंमें जो मुहूर्त निन्दित कहा गया है, वह यदि अन्य लाख गुणोंसे युक्त हो तो भी विवाह आदि शुभ कार्योंमें वर्जनीय ही है ॥ ४६९ ॥ रवि आदि दिनोंमें जो-जो वार-दोष कहे गये हैं, वे अन्य सब गुणोंसे युक्त हों तो भी शुभ कार्यमें वर्जनीय हैं ॥ ४७० ॥

नक्षत्रके जिस चरणमें पूर्वोक्त 'एकार्गल दोष' हो, उस चरण (नवांश)-से युक्त जो लग्न हो उसमें यदि गुरु, शुक्रका योग हो तो भी विषयुक्त दूधके समान उसको त्याग देना चाहिये ॥ ४७१ ॥

ग्रहण तथा उत्पातसे दूषित नक्षत्रको तीन ऋतु (छः मास)-तक शुभ कार्यमें छोड़ देना चाहिये। जब चन्द्रमा उस नक्षत्रको भोगकर छोड़ दे तो वह नक्षत्र जली हुई लकड़ीके समान निष्फल हो जाता है अर्थात् दोष-कारक नहीं रह जाता। शुभ कार्योंमें ग्रहसे विद्ध और पापग्रहसे युक्त सम्पूर्ण नक्षत्रको मदिरामिश्रित पञ्चगव्यके समान त्याग देना चाहिये; परंतु यदि नक्षत्र शुभग्रहसे विद्ध हो तो उसका विद्ध चरणमात्र त्याज्य है, सम्पूर्ण नक्षत्र नहीं; किंतु पापग्रहसे विद्ध नक्षत्र शुभकार्यमें सम्पूर्ण रूपसे त्याग देने योग्य है ॥ ४७२—४७४ ॥

(**विहित नवमांश—**) वृष, तुला, मिथुन, कन्या और धनुका उत्तरार्ध तथा इन राशियोंके नवमांश विवाहलग्नमें शुभप्रद हैं। किसी भी लग्नमें अन्तिम नवमांश यदि वर्गोत्तम हो तभी उसे शुभप्रद समझना चाहिये[2]। अन्यथा विवाह-लग्नका अन्तिम नवमांश (२६ अंश ४० कलाके बाद) अशुभ होता है। यहाँ अन्य नवमांश नहीं ग्रहण करने चाहिये; क्योंकि वे 'कुनवांश' कहलाते हैं। लग्नमें कुनवांश हो तो अन्य सब गुणोंसे युक्त होनेपर भी वह त्याज्य है। जिस दिन महापात (सूर्य-चन्द्रमाका क्रान्ति-साम्य) हो, वह दिन भी शुभ कार्यमें छोड़ देने योग्य है; क्योंकि वह अन्य सब गुणोंसे युक्त होनेपर भी वर-वधूके लिये घातक होता है। इन दोषोंसे भिन्न विद्युत्, नीहार (कुहरा) और वृष्टि आदि दोष, जिनका अभी वर्णन नहीं किया गया है, 'स्वल्पदोष' कहलाते हैं ॥ ४७५—४७८ ॥

(**लघुदोष—**) विद्युत, नीहार, वृष्टि, प्रतिसूर्य (दो सूर्य-सा दीखना), परिवेष (घेरा), इन्द्रधनुष, घनगर्जन, लत्ता, उपग्रह[3], पात, मासदग्ध[4] तिथि, दग्ध, अन्ध, बधिर तथा पङ्गु—इन राशियोंके लग्न[5],

---

१. विशेष—यदि नक्षत्रका मान ६० घड़ी हो तब इतने ध्रुवाङ्क और उसके पंद्रहवें भाग चार घटीतक 'विषघटी' का अवस्थान मध्यममानके अनुसार कहा गया है। इससे यह स्वयं सिद्ध होता है कि यदि नक्षत्रका मान ६० घड़ीसे अधिक या अल्प होगा तो विषघटीका मान और ध्रुवाङ्क भी उसी अनुपातसे अधिक या कम हो जायगा तथा स्पष्ट भभोगमानका पंद्रहवाँ भाग ही विषघटीका स्पष्ट मान होगा।

मान लीजिये कि पुनर्वसुका भभोगमान ५६ घड़ी है तो त्रैराशिकसे अनुपात निकालिये। यदि ६० घड़ीमें ३० ध्रुवाङ्क तो इष्ट भभोग ५६ घड़ीमें क्या होगा? इस प्रकार ५६ से ३० को गुणा करके ६० के द्वारा भाग देनेसे लब्धि २८ पुनर्वसुका स्पष्ट ध्रुवाङ्क हुआ तथा भभोग ५६ का पंद्रहवाँ भाग ३ घड़ी ४४ पल स्पष्ट 'विषघटी' हुई। इसलिये २८ घड़ीके बाद ३ घड़ी ४ पलतक विषघटी रहेगी।

२. किसी भी राशिमें अपना ही नवमांश हो तो वह वर्गोत्तम कहलाता है। जैसे मेषमें मेषका नवमांश तथा वृषमें वृषका नवमांश इत्यादि।

३. सूर्य जिस नक्षत्रमें वर्तमान हो, उसमें ५, ७, ८, १०, १४, १५, १८, १९, २१, २२, २३, २४, २५—इन संख्याओंके किसी भी नक्षत्रमें चन्द्रमा हो तो 'उपग्रहदोष' कहलाता है।

४. सूर्य यदि धनु या मीनमें हो तो द्वितीया, वृष या कुम्भमें हो तो चतुर्थी, कर्क या मेषमें हो तो षष्ठी, कन्या या मिथुनमें हो तो अष्टमी, सिंह या वृश्चिकमें हो तो दशमी तथा तुला या मकरमें हो तो द्वादशी 'दग्ध तिथि' कहलाती है।

५. कुम्भ, मीन, वृष, मिथुन, मेष, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु और कर्क—ये क्रमशः चैत्र आदि मासोंमें 'दग्ध राशियाँ' हैं।

तुला और वृश्चिक—ये दोनों केवल दिनमें तथा धनु और मकर—ये दोनों केवल रात्रिमें 'बधिर' होते हैं। एवं मेष, वृष और सिंह—ये तीनों दिनमें तथा मिथुन, कर्क, कन्या—ये तीनों रात्रिमें 'अन्ध' होते हैं।

दिनमें कुम्भ और रात्रिमें मीन 'पङ्गु' होते हैं।

एवं छोटे-छोटे और भी अनेक दोष हैं; अब उनकी व्यवस्थाका प्रतिपादन किया जाता है॥ ४७९-४८०॥

विद्युत् (बिजली), नीहार (कुहरा या पाला), वृष्टि (वर्षा)—ये यदि असमयमें हों तभी दोष समझे जाते हैं। यदि समयपर हों (जैसे जाड़ेके दिनमें पाला पड़े, वर्षा ऋतुमें वर्षा हो तथा सघन मेघमें बिजली चमके, तो सब शुभ ही समझे जाते हैं॥ ४८१॥ यदि बृहस्पति, शुक्र अथवा बुध इनमेंसे एक भी केन्द्रमें हों तो इन सब दोषोंको नष्ट कर देते हैं। इसमें संशय नहीं है॥ ४८२॥

(**पञ्चशलाका-वेध—**) पाँच रेखाएँ पड़ी और पाँच रेखाएँ खड़ी खींचकर दो-दो रेखाएँ कोणोंमें खींचने (बनाने)-से पञ्चशलाका-चक्र[1] बनता है। इस चक्रके ईशान कोणवाली दूसरी रेखामें कृत्तिकाको लिखकर आगे प्रदक्षिण-क्रमसे रोहिणी आदि अभिजित्‌सहित सम्पूर्ण नक्षत्रोंका उल्लेख करे। जिस रेखामें ग्रह हो, उसी रेखाकी दूसरी ओरवाला नक्षत्र विद्ध[2] समझा जाता है॥ ४८३ १/२॥

(**लत्तादोष—**) सूर्य आदि[3] ग्रह क्रमशः अपने आश्रित नक्षत्रसे आगे और पीछे[4] १२, २२, ३, ७, ६, ५, ८ तथा ९ वें दैनिक नक्षत्रको लातोंसे दूषित करते हैं, इसलिये इसका नाम 'लत्तादोष' है।

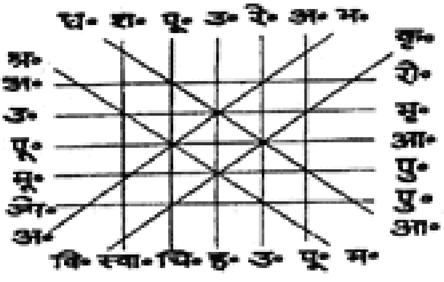
(**पातदोष—**) सूर्य जिस नक्षत्रमें हों उससे आश्लेषा, मघा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और श्रवणतककी जितनी संख्या हो, उतनी ही यदि अश्विनीसे दिन-नक्षत्रतक गिननेसे संख्या हो तो वह नक्षत्र पातदोषसे दूषित समझा जाता है॥ ४८४-४८५ १/२॥

(**परिहार—**) सौराष्ट्र (काठियावाड़) और शाल्वदेशमें लत्तादोष वर्जित है। कलिङ्ग (जगन्नाथपुरीसे कृष्णा नदीतकके भूभाग), वङ्ग (बङ्गाल), वाह्लिक (बलख) और कुरु (कुरुक्षेत्र) देशमें पातदोष त्याज्य हैं; अन्य देशोंमें ये दोष त्याज्य नहीं हैं॥ ४८६-४८७॥ मासदग्ध तिथि तथा दग्ध लग्न—ये मध्यदेश (प्रयागसे पश्चिम, कुरुक्षेत्रसे पूर्व, विन्ध्य और हिमालयके मध्य)में वर्जित हैं। अन्य देशोंमें ये दूषित नहीं हैं॥ ४८८॥ पङ्गु, अन्ध, काण, लग्न तथा मासोंमें जो शून्य राशियाँ कही गयी हैं, वे गौड़ (बङ्गालसे भुवनेश्वरतक) और मालव (मालवा) देशमें त्याज्य हैं। अन्य देशोंमें निन्दित नहीं हैं॥ ४८९॥

(**विशेष—**) अधिक दोषोंसे दुष्ट कालको तो ब्रह्माजी भी शुभ नहीं बना सकते हैं; इसलिये जिसमें थोड़ा दोष और अधिक गुण हों, ऐसा काल ग्रहण करना चाहिये॥ ४९०॥

(**वेदी और मण्डप-**) इस प्रकार वर-वधूके लिये शुभप्रद उत्तम समयमें श्रेष्ठ लग्नका निरीक्षण (खोज) करना चाहिये। तदनन्तर एक हाथ ऊँची, चार हाथ लंबी और चार हाथ चौड़ी उत्तर दिशामें नत (कुछ नीची) वेदी बनाकर सुन्दर चिकने चार खम्भोंका एक मण्डप तैयार करे, जिसमें चारों ओर सोपान (सीढ़ियाँ) बनायी गयी हों। मण्डप भी पूर्व-उत्तरमें निम्न हो। वहाँ चारों तरफ

१. पञ्चशलाकाचक्र—



२. जैसे—श्रवणमें कोई ग्रह हो तो मघा नक्षत्र विद्ध समझा जायगा।

३. सूर्य, पूर्ण चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु।

४. इनमें सूर्य अपनेसे आगे और पूर्ण चन्द्र पीछे, फिर मङ्गल आगे और बुध पीछेके नक्षत्रोंको दूषित करते हैं। ऐसा ही क्रम आगे भी समझना चाहिये।

कदलीस्तम्भ गड़े हों। वह मण्डप शुक आदि पक्षियोंके चित्रोंसे सुशोभित हो तथा वेदी नाना प्रकारके माङ्गलिक चित्रयुक्त कलशोंसे विचित्र शोभा धारण कर रही हो। भाँति-भाँतिके वन्दनवार तथा अनेक प्रकारके फूलोंके शृङ्गारसे वह स्थान सजाया गया हो। ऐसे मण्डपके बीच बनी हुई वेदीपर, जहाँ ब्राह्मणलोग स्वस्तिवाचनपूर्वक आशीर्वाद देते हों, जो पुण्यशीला स्त्रियों तथा दिव्य समारोहोंसे अत्यन्त मनोरम जान पड़ती हो तथा नृत्य, वाद्य और माङ्गलिक गीतोंकी ध्वनिसे जो हृदयको आनन्द प्रदान कर रही हो, वर और वधूको विवाहके लिये बिठावे॥ ४९१—४९५॥

(**वर-वधूकी कुण्डलीका मिलान—**) आठ प्रकारके भकूट, नक्षत्र, राशि, राशिस्वामी, योनि तथा वर्ण आदि सब गुण यदि ऋजु (अनुकूल या शुभ) हों तो ये पुत्र-पौत्रादिका सुख प्रदान करनेवाले होते हैं॥ ४९६॥

वर और कन्या दोनोंकी राशि और नक्षत्र भिन्न हों तो उन दोनोंका विवाह उत्तम होता है। दोनोंकी राशि भिन्न और नक्षत्र एक हो तो उनका विवाह मध्यम होता है और यदि दोनोंका एक ही नक्षत्र, एक ही राशि हो तो उन दोनोंका विवाह प्राणसंकट उपस्थित करनेवाला होता है॥ ४९७ $\frac{१}{२}$॥

(**स्त्रीदूर दोष—**) कन्याके नक्षत्रसे प्रथम नवक (नौ नक्षत्रों)-के भीतर वरका नक्षत्र हो तो यह 'स्त्रीदूर' नामक दोष कहलाता है; जो अत्यन्त निन्दित है। द्वितीय नवक (१० से १८ तक)-के भीतर हो तो मध्यम कहा गया है। यदि तृतीय नवक (१९ से २७ तक)-के भीतर हो तो उन दोनोंका विवाह श्रेष्ठ कहा गया है॥ ४९८ $\frac{१}{२}$॥

(**गणविचार—**) पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा—ये नक्षत्र मनुष्यगण हैं। श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, स्वाती, रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य और मृगशिरा—ये देवगण हैं तथा मघा, चित्रा, विशाखा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल और आश्लेषा—ये नक्षत्र राक्षसगण हैं॥ ४९९—५०१॥ यदि वर और कन्याके नक्षत्र किसी एक ही गणमें हों तो दोनोंमें परस्पर सब प्रकारसे प्रेम बढ़ता है। यदि एकका मनुष्यगण और दूसरेका देवगण हो तो दोनोंमें मध्यम प्रेम होता है तथा यदि एकका राक्षसगण और दूसरेका देवगण या मनुष्यगण हो तो वर-वधू दोनोंको मृत्युतुल्य क्लेश प्राप्त होता है॥ ५०२॥

(**राशिकूट—**) वर और कन्याकी राशियोंको परस्पर गिननेसे यदि वे छठी और आठवीं संख्यामें पड़ती हों तो दोनोंके लिये घातक हैं। यदि पाँचवीं और नवीं संख्यामें हों तो संतानकी हानि होती है। यदि दूसरी और बारहवीं संख्यामें हों तो वर-वधू दोनों निर्धन होते हैं। इनसे भिन्न संख्यामें हों तो दोनोंमें परस्पर प्रेम होता है॥ ५०३॥

(**परिहार—**) द्विद्वादश (२, १२) और नवपञ्चम (९, ५) दोषमें यदि दोनोंकी राशियोंका एक ही स्वामी हो अथवा दोनोंके राशिस्वामियोंमें मित्रता हो तो विवाह शुभ कहा गया है। परंतु षडष्टक (६, ८)-में दोनोंके स्वामी एक होनेपर भी विवाह शुभदायक नहीं होता है॥ ५०४॥

(**योनिकूट—**) १ अश्व, २ गज, ३ मेष, ४ सर्प, ५ सर्प, ६ श्वान, ७ मार्जार, ८ मेष, ९ मार्जार, १० मूषक, ११ मूषक, १२ गौ, १३ महिष, १४ व्याघ्र, १५ महिष, १६ व्याघ्र, १७ मृग, १८ मृग, १९ श्वान, २० वानर, २१ नकुल, २२ नकुल, २३ वानर, २४ सिंह, २५ अश्व, २६ सिंह, २७ गौ तथा २८ गज—ये क्रमशः अश्विनीसे लेकर रेवतीतक (अभिजित्सहित) अट्ठाईस नक्षत्रोंकी योनियाँ हैं॥ ५०५-५०६॥ इनमें श्वान और मृगमें, नकुल

और सर्पमें, मेष और वानरमें, सिंह और गजमें, गौ और व्याघ्रमें, मूषक और मार्जारमें तथा महिष और अश्वमें परस्पर भारी शत्रुता होती है॥ ५०७॥

(वर्णकूट—) मीन, वृश्चिक और कर्कराशि ब्राह्मण वर्ण हैं, इनके बादवाले क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण हैं[1]। (एक वर्णके वर और वधूमें तो विवाह स्वयंसिद्ध है ही) पुरुष-राशिके वर्णसे स्त्री-राशिका वर्ण हीन हो तो भी विवाह शुभ माना गया है। इससे विपरीत (अर्थात् पुरुषराशिके वर्णसे स्त्रीराशिका वर्ण श्रेष्ठ) हो तो अशुभ समझना चाहिये॥ ५०८॥

(नाडीविचार—) चार चरणवाले नक्षत्र (अश्विनी, भरणी, रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, श्रवण, शतभिषा, उत्तर भाद्रपद, रेवती—इन)-में उत्पन्न कन्याके लिये अश्विनीसे आरम्भ करके रेवतीतक तीन पर्वोंपर क्रम-उत्क्रम[2] से गिनकर नाड़ी समझे। तीन चरणवाले (कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ और पूर्व भाद्रपद) नक्षत्रोंमें उत्पन्न कन्याके लिये कृत्तिकासे लेकर भरणीतक क्रम-उत्क्रम[3] से चार पर्वोंपर गिनकर नाड़ीका ज्ञान प्राप्त करे तथा दो चरणोंवाले (मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा) नक्षत्रोंमें उत्पन्न कन्याकी नाड़ी जाननेके लिये मृगशिरासे लेकर रोहिणीतक पाँच पर्वोंपर क्रम-उत्क्रम[4]से गिने। यदि वर और वधू दोनोंके नक्षत्र एक पर्वपर पड़ें तो वे उनके लिये घातक हैं और भिन्न पर्वोंपर पड़ें तो उन्हें शुभ समझना चाहिये॥ ५०९ $\frac{1}{2}$॥

१. राशियोंके वर्णको स्पष्ट समझनेके लिये यह कोष्ठ देखें—

मीन	मेष	वृष	मिथुन
कर्क	सिंह	कन्या	तुला
वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ
ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र

२. त्रिनाडी—

१	अश्विनी	आर्द्रा	पुनर्वसु	उत्तराफाल्गुनी	हस्त	ज्येष्ठा	मूल	शतभिषा	पूर्व भाद्रपद
२	भरणी	मृगशिरा	पुष्य	पूर्वाफाल्गुनी	चित्रा	अनुराधा	पूर्वाषाढ़	धनिष्ठा	उत्तर भाद्रपद
३	कृत्तिका	रोहिणी	आश्लेषा	मघा	स्वाती	विशाखा	उत्तराषाढ़	श्रवण	रेवती

३. चतुर्नाडी—

१	कृत्तिका	मघा	पूर्वाफाल्गुनी	ज्येष्ठा	मूल	उत्तर भाद्रपद	रेवती
२	रोहिणी	आश्लेषा	उत्तराफाल्गुनी	अनुराधा	पूर्वाषाढ़	पूर्व भाद्रपद	अश्विनी
३	मृगशिरा	पुष्य	हस्त	विशाखा	उत्तराषाढ़	शतभिषा	भरणी
४	आर्द्रा	पुनर्वसु	चित्रा	स्वाती	श्रवण	धनिष्ठा	×

४. पञ्चनाडी—

१	मृगशिरा	चित्रा	स्वाती	शतभिषा	पूर्व भाद्रपद	×
२	आर्द्रा	हस्त	विशाखा	धनिष्ठा	उत्तर भाद्रपद	×
३	पुनर्वसु	उत्तराफाल्गुनी	अनुराधा	श्रवण	रेवती	×
४	पुष्य	पूर्वाफाल्गुनी	ज्येष्ठा	उत्तराषाढ़	अश्विनी	रोहिणी
५	आश्लेषा	मघा	मूल	पूर्वाषाढ़	भरणी	कृत्तिका

वर और कन्याकी कुण्डली मिलानेके लिये जो वश्य, योनि, राशिकूट, योनिकूट, वर्णकूट तथा नाडी आदिका वर्णन किया गया है, उन सबको सुगमतापूर्वक जानने तथा उनके गुणोंको समझनेके लिये निम्नाङ्कित चक्रोंपर दृष्टिपात कीजिये—

शतपदचक्र

नक्षत्र	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	आश्ले.	म.	पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.
चरण	चू.चे. चो.ला.	ली.लू. ले.लो.	अ.इ. उ.ए.	ओ. वा. वी.वू.	वे.वो. का.की.	कु.घ. ङ छ.	के.को. हा.ही.	हू.हे. हो.डा.	डी.डू. डे.डो.	मा.मी. मू.मे.	मो.टा. टी.टू.	टे.टो. पा.पी.	पू.ष. ण.ठ.	पे.पो. रा.री.
राशि	मे.	मे.	मे.१ वृ.३	वृ.	वृ.२ मि.२	मि.	मि.३ क.१	क.	क.	सिं.	सिं.	सिं.१ क.३	क.	क.२ तु.२
वर्ण	क्ष.	क्ष.	क्ष.१ वै.३	वै.	वै.२ शू.२	शू.	शू.३ ब्रा.१	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.	क्ष.१ वै.३	वै.	वै.२ शू.२
वश्य	च.	च.	च.	च.	च.२ न.२	न.	न.३ ज.१	ज.	ज.	व.	व.	व.१ न.३	न.	न.
योनि	अश्व.	गज.	छाग.	सर्प.	सर्प.	श्वान.	मार्जा-र.	छाग.	मार्जा-र.	मूषक.	मूषक.	गौ.	महिष.	व्याघ्र.
राशीश	मं.	मं.	मं.१ शु.३	शु.	शु.२ बु.२	बु.	बु.३ चं.१	चं.	चं.	सू.	सू.	सू.१ बु.३	बु.	बु.२ शु.२
गण	दे.	म.	रा.	म.	दे.	म.	दे.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.
नाड़ी	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.

नक्षत्र	स्वा.	वि.	अ.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा.	श्र.	ध.	श.	पू.भा.	उ.भा.	रे.	
चरण	रु.रे. रो.ता.	ती.तू. ते.तो.	ना.नी. नू.ने.	नो.या. यी.यू.	ये.यो. भा.भी.	भू. ध फ.ढ.	भे.भो. जा.जी.	खी.खू. खे.खो.	गा.गी. गू.गे.	गो.सा. सी.सू.	से.सो दा.दी.	दू.थ. झ.ञ.	दे.दो. चा.ची.	
राशि	तु.	तु.३ वृ.१	वृ.	वृ.	ध.	ध.	ध.१ म.३	म.	म.२ कुं.२	कुं.	कुं.३ मी.१	मी.	मी.	
वर्ण	शू.	शू.३ ब्रा.१	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.	क्ष.१ वै.३	वै.	वै.२ शू. २	शू.	शू.३ ब्रा.१	ब्रा.	ब्रा.	
वश्य	न.	न.३ की.१	की.	की.	न.	॥न. ३॥च.	च.	१॥च. २॥जा.	ज.२ न.२	न.	न. ३ ज.१	ज.	ज.	
योनि	महिष.	व्याघ्र.	मृग.	मृग	श्वान.	वानर.	नकुल.	वानर.	सिंह.	अश्व.	सिंह.	गौ.	गज.	
राशीश	शु.	शु.३ मं.१	मं.	मं.	बृ.	बृ.	बृ.१ शु.३	श.	श.	श.	श.३ बृ.१	बृ.	बृ.	
गण	दे.	रा.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	
नाड़ी	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	

६ गणगुण। वर				
		दे.	म.	रा.
कन्या	देव	६	५	१
	मनुष्य	६	६	०
	राक्षस	०	०	६

८ नाडी-गुण। वर				
		आ.	म.	अं.
कन्या	आदि	०	८	८
	मध्य	८	०	८
	अन्त	८	८	०

७ भकूटगुण

	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
मे.	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०
वृ.	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७
मि.	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७
क.	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०
सिं.	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०
क.	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७
तु.	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०
वृ.	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०
ध.	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७
म.	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७
कुं.	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०
मी.	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७

३ तारागुण। वर										
		१	२	३	४	५	६	७	८	९
कन्या	१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
	२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
	३	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
	४	३	३	१	३	१॥	३	१॥	३	३
	५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
	६	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
	७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
	८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
	९	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३

५ ग्रहमैत्रीगुण। वर								
		सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
कन्या	सूर्य	५	५	५	४	५	०	०
	चन्द्र	५	५	४	१	४	॥	॥
	मङ्गल	५	४	५	॥	५	३	॥
	बुध	४	१	॥	५	॥	५	४
	गुरु	५	४	५	॥	५	॥	३
	शुक्र	०	॥	३	५	॥	५	५
	शनि	०	॥	॥	४	३	५	५

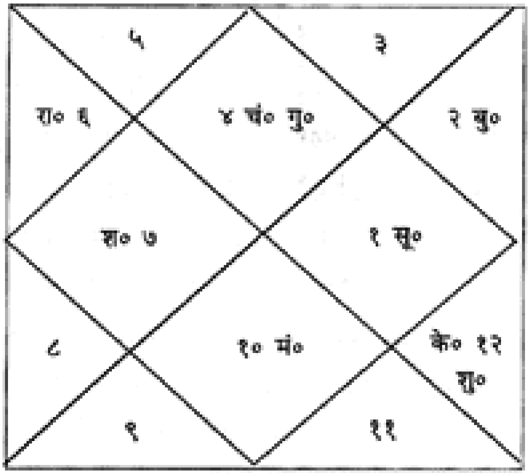
४ योनिगुण। वर														
	अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	मार्जार	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
अश्व	४	२	३	२	२	३	३	२	०	१	३	२	२	१
गज	२	४	३	२	२	३	३	३	३	१	३	२	२	०
मेष	३	३	४	२	२	३	३	३	३	१	३	०	१	१
सर्प	२	२	२	४	२	१	१	२	२	२	२	१	०	२
श्वान	२	२	२	२	४	१	१	२	२	२	०	२	२	२
मार्जार	३	३	३	१	१	४	०	३	३	२	३	२	२	२
मूषक	३	२	२	१	२	०	४	३	३	२	३	२	१	२
गौ	२	३	३	२	२	३	३	४	३	०	३	२	२	१
महिष	०	३	३	२	२	३	३	३	४	१	३	२	२	१
व्याघ्र	१	१	१	२	२	२	२	०	१	४	१	२	२	३
मृग	३	३	३	२	०	३	३	३	३	१	४	२	२	१
वानर	२	२	०	१	२	२	२	२	२	२	२	४	२	२
नकुल	२	२	२	०	२	२	१	२	२	२	२	२	४	२
सिंह	१	०	१	२	२	२	२	१	१	३	१	२	२	४

१ विवाहमें वर्णगुण। वर					
		ब्रा०	क्ष.	वै.	शू.
कन्या	ब्राह्मण	१	०	०	०
	क्षत्रिय	१	१	०	०
	वैश्य	१	१	१	०
	शूद्र	१	१	१	१

२ वश्यगुण। वर						
		च०	मा.	ज.	व.	की.
कन्या	चतुष्पद	२	१	१	०	१
	मानव	१	२	॥	०	१
	जलचर	१	॥	२	१	१
	वनचर	०	०	१	२	०
	कीट	१	१	१	०	२

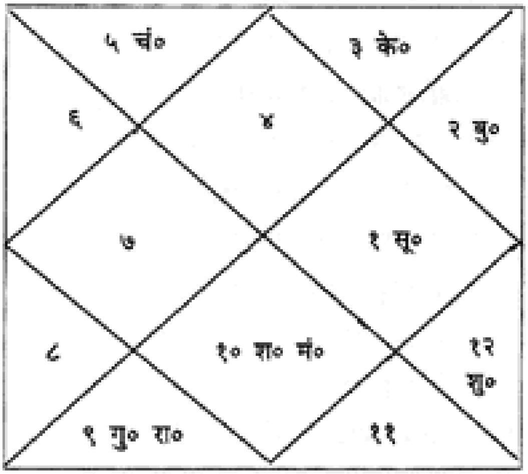
जन्मकालिक ग्रहोंकी स्थिति तथा जन्म-नक्षत्र-सम्बन्धी आठ प्रकारके कूटद्वारा वर-वधूकी कुण्डलीका मिलान किया जाता है। यदि जन्म-लग्न या जन्म-राशि (चन्द्रमा) से १, ४, ७, ८ या १२ वें स्थानमें मङ्गल या अन्य पापग्रह वरकी कुण्डलीमें हों तो पत्नीके लिये और कन्याकी कुण्डलीमें हों तो वरके लिये अनिष्टकारी होते हैं। यदि दोनोंकी कुण्डलियोंमें उक्त स्थानोंमें पापग्रहकी संख्या समान हो तो उक्त दोष नहीं माना जाता है। उदाहरणके लिये—

वरकी कुण्डली



पुनर्वसुके चतुर्थ चरणमें जन्म

कन्याकी कुण्डली



पूर्वाफाल्गुनीके प्रथम चरणमें जन्म

यहाँ वरकी कुण्डलीमें ४ थे और ७वें स्थानमें शनि और मङ्गल दो पापग्रह हैं तथा कन्याकी कुण्डलीमें भी ७ वें स्थानमें शनि, मङ्गल हैं, जिससे दोनोंके परस्पर माङ्गलिक दोष नष्ट होनेके कारण इन दोनोंका वैवाहिक सम्बन्ध श्रेष्ठ सिद्ध होता है। यहाँ भकूटके गुण इस प्रकार हैं—

	वर	कन्या	गुण
१ वर्ण—	ब्राह्मण	क्षत्रिय	१
२ वश्य—	जलचर	वनचर	०
३ तारा—	५	६	१॥
४ योनि—	मार्जार	मूषक	०
५ ग्रह (राशीश)—	चन्द्र	सूर्य	५
६ गण—	देव	मनुष्य	६
७ भकूट—	२	१२	०
८ नाड़ी—	१	२	८
			गुणोंका योग=२१॥

इस तरह नक्षत्रमेलापकमें भी गुणोंका योग २१॥ है। अठारहसे अधिक होनेके कारण इन दोनोंका विवाह-सम्बन्ध श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अन्य कुण्डलियोंसे भी ग्रह और नक्षत्रका मेल देखकर विवाहका निर्णय करना चाहिये।

(विवाहोंके भेद—) ऊपर बताये हुए शुभ समयमें (१) प्राजापत्य, (२) ब्राह्म, (३) दैव और (४) आर्ष—ये चार प्रकारके विवाह करने चाहिये। ये ही चारों विवाह उपर्युक्त फल देनेवाले होते हैं। इससे अतिरिक्त जो गान्धर्व, आसुर, पैशाच तथा राक्षस विवाह हैं, वे तो सब समय समान ही फल देनेवाले होते हैं॥ ५१०-५११॥

(अभिजित् और गोधूलि लग्न—) सूर्योदय-कालमें जो लग्न रहता है, उससे चतुर्थ लग्नका नाम अभिजित् है और सातवाँ गोधूलि-लग्न कहलाता है। ये दोनों विवाहमें पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाले होते हैं॥ ५१२॥ पूर्व तथा कलिङ्ग देशवासियोंके लिये गोधूलि-लग्न प्रधान है और अभिजित्-लग्न तो सब देशोंके लिये मुख्य कहा गया है, क्योंकि वह सब दोषोंका नाश करनेवाला है॥ ५१३॥

(अभिजित्-प्रशंसा—) सूर्यके मध्य आकाशमें जानेपर अभिजित् मुहूर्त होता है, वह समस्त दोषोंको नष्ट कर देता है, ठीक उसी तरह, जैसे त्रिपुरासुरको श्रीशिवजीने नष्ट किया था॥ ५१४॥

पुत्रका विवाह करनेके बाद छः मासोंके भीतर पुत्रीका विवाह नहीं करना चाहिये। एक पुत्र या पुत्रीका विवाह करनेके बाद दूसरे पुत्रका उपनयन भी नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार एक मङ्गल कार्य करनेके बाद छः मासोंके भीतर दूसरा मङ्गल कार्य नहीं करना चाहिये। एक गर्भसे उत्पन्न दो कन्याओंका विवाह यदि छः मासके भीतर हो तो निश्चय ही तीन वर्षके भीतर उनमेंसे एक विधवा होती है॥ ५१५-५१६॥ अपने पुत्रके साथ जिसकी पुत्रीका विवाह हो, फिर उसके पुत्रके साथ अपनी पुत्रीका विवाह करना 'प्रत्युद्वाह' कहलाता है। ऐसा कभी नहीं करना चाहिये तथा किसी एक ही वरको अपनी दो कन्याएँ नहीं देनी चाहिये। दो सहोदर वरोंको दो सहोदरा कन्याएँ नहीं देनी चाहिये। दो सहोदरोंका एक ही दिन (एक साथ) विवाह या मुण्डन नहीं करना चाहिये॥ ५१७ १/२॥

(गण्डान्त-दोष—) पूर्वकथित गण्डान्तमें यदि दिनमें बालकका जन्म हो तो वह पिताका, रात्रिमें जन्म हो तो माताका और संध्या (सायं या प्रातः) कालमें जन्म हो तो वह अपने शरीरके लिये घातक होता है। गण्डका यह परिणाम अन्यथा नहीं होता है। मूलमें उत्पन्न होनेवाली संतान पुत्र हो या कन्या, श्वशुरके लिये घातक होती है, किंतु मूलके चतुर्थ चरणमें जन्म लेनेवाला बालक श्वशुरका नाश नहीं करता है तथा आश्लेषाके प्रथम चरणमें जन्म लेनेवाला बालक भी पिताका या श्वशुरका विनाश करनेवाला नहीं होता है। ज्येष्ठाके अन्तिम चरणमें उत्पन्न बालक ही श्वशुरके लिये घातक होता है, कन्या नहीं। किसी प्रकार पूर्वाषाढ़ या मूलमें उत्पन्न कन्या भी माता या पिताका नाश करनेवाली नहीं होती है। ज्येष्ठा नक्षत्रमें उत्पन्न कन्या अपने पतिके बड़े भाईके लिये और विशाखामें जन्म लेनेवाली कन्या अपने देवरके लिये घातक होती है॥ ५१८—५२१॥

(वधू-प्रवेश—) विवाहके दिनसे ६, ८, १० और ७वें दिनमें वधू-प्रवेश (पतिगृहमें प्रथम प्रवेश) हो तो वह सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला होता है। द्वितीय वर्ष, जन्म-राशि, जन्म-लग्न और जन्म-दिनको छोड़कर अन्य समयमें सम्मुख शुक्र रहनेपर भी वैवाहिक यात्रा (वधू-प्रवेश) शुभ होती है॥ ५२२-५२३॥

(देव-प्रतिष्ठा—) उत्तरायणमें, बृहस्पति और शुक्र उदित हों तो चैत्रको छोड़कर माघ आदि पाँच मासोंके शुक्लपक्षमें और कृष्णपक्षमें भी आरम्भसे आठ दिनतक सब देवताओंकी स्थापना शुभदायक होती है। जिस देवताकी जो तिथि है,

उसमें उस देवताकी और २, ३, ५, ६, ७, १०, ११, १२, १३ तथा पूर्णिमा—इन तिथियोंमें सब देवताओंकी स्थापना शुभ होती है। तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, अश्विनी, रोहिणी, शतभिषा, श्रवण, अनुराधा और धनिष्ठा—इन नक्षत्रोंमें तथा मङ्गलवारको छोड़कर अन्य वारोंमें देव-प्रतिष्ठा करनी चाहिये। स्थापना करनेवाले (यजमान)-के लिये सूर्य, तारा और चन्द्रमा बलवान् हों, उस दिनके पूर्वाह्णमें, शुभ समय, शुभ लग्न और शुभ नवमांशमें तथा यजमानकी जन्मराशिसे अष्टम राशिको छोड़कर अन्य लग्नोंमें देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभदायक होती है॥५२४—५२९॥

मेष आदि सब राशियाँ शुभ ग्रहसे युक्त या दृष्ट हों तो देवस्थापनके लिये श्रेष्ठ समझी जाती हैं। प्रत्येक कार्यमें पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण) शुभ होने चाहिये और लग्नसे अष्टम स्थान भी शुभ (ग्रहवर्जित) होना आवश्यक है॥५३०॥ (१) लग्नमें चन्द्रमा, सूर्य, मङ्गल, राहु, केतु और शनि कर्ताके लिये घातक होते हैं। अन्य (बुध, गुरु और शुक्र) लग्नमें धन, धान्य और सब सुखोंको देनेवाले होते हैं। (२) द्वितीय भावमें पापग्रह अनिष्ट फल देनेवाले और शुभग्रह धनकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। (३) तृतीय भावमें शुभ और पाप सब ग्रह पुत्र-पौत्रादि सुखको बढ़ानेवाले होते हैं। (४) चतुर्थ भावमें शुभग्रह शुभफल और पापग्रह पाप-फलको देते हैं। (५) पञ्चम भावमें पापग्रह कष्टदायक और शुभग्रह पुत्रादि सुख देनेवाले होते हैं। (६) षष्ठ भावमें शुभग्रह शत्रुको बढ़ानेवाले और पापग्रह शत्रुके लिये घातक होते हैं। (७) सप्तम भावमें पापग्रह रोगकारक और शुभग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। (८) अष्टम भावमें शुभग्रह और पापग्रह सभी कर्ता (यजमान)-के लिये घातक होते हैं। (९) नवम भावमें पापग्रह हों तो वे धर्मको नष्ट करनेवाले हैं और शुभग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। (१०) दशम भावमें पापग्रह दुःखदायक और शुभग्रह सुयशकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। (११) एकादश स्थानमें पाप और शुभ सब ग्रह सब प्रकारसे लाभकारक ही होते हैं। (१२) लग्नसे द्वादश स्थानमें पाप या शुभ सभी ग्रह व्यय (खर्च)-को बढ़ानेवाले होते हैं॥५३१—५३६॥

(प्रतिष्ठामें अन्य विशेष बात—) प्रतिष्ठा करानेवाले पुरोहित (या आचार्य)-को अर्थज्ञान न हो तो यजमानका अनिष्ट होता है। मन्त्रोंका अशुभ उच्चारण हो तो ऋत्विजों (यज्ञ करानेवालों)-का और कर्म विधिहीन हो तो कर्ताकी स्त्रीका अनिष्ट होता है। इसलिये नारद! देव-प्रतिष्ठाके समान दूसरा शत्रु भी नहीं है। यदि लग्नमें अधिक गुण हों और थोड़े-से दोष हों तो उसमें देवताओंकी प्रतिष्ठा कर लेनी चाहिये। इससे कर्ता (यजमान)-के अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि होती है। मुने! अब मैं संक्षेपसे ग्राम, मन्दिर तथा गृह आदिके निर्माणकी बात बताता हूँ॥५३७—५३९॥

(गृहनिर्माणके विषयमें ज्ञातव्य बातें—) गृह आदि बनाना हो तो पहले गन्ध, वर्ण, रस तथा आकृतिके द्वारा क्षेत्र (भूमि)-की परीक्षा कर लेनी चाहिये। यदि उस स्थानकी मिट्टीमें मधु (शहद)-के समान गन्ध हो तो ब्राह्मणोंके, पुष्पसदृश गन्ध हो तो क्षत्रियोंके, आम्ल (खटाई)-के समान गन्ध हो तो वैश्योंके और मांसकी-सी गन्ध हो तो वह स्थान शूद्रोंके बसनेयोग्य जानना चाहिये। वहाँकी मिट्टीका रंग श्वेत हो तो ब्राह्मणोंके, लाल हो तो क्षत्रियोंके, पीत (पीला) हो तो वैश्योंके और कृष्ण (काला) हो तो वह शूद्रोंके निवासके योग्य है। यदि वहाँके मिट्टीका स्वाद मधुर हो तो ब्राह्मणोंके, कड़ुवा (मिर्चके समान) हो तो क्षत्रियोंके, तिक्त हो तो वैश्योंके और कषाय (कसैला) स्वाद हो तो उस स्थानको शूद्रोंके निवास करनेयोग्य समझना चाहिये॥५४०-५४१॥ ईशान, पूर्व और उत्तर दिशामें

प्लव (नीची) भूमि सबके लिये अत्यन्त वृद्धि देनेवाली होती है। अन्य दिशाओंमें प्लव (नीची) भूमि सबके लिये हानि करनेवाली होती है॥५४२॥

(**गृहभूमि-परीक्षा—**) जिस स्थानमें घर बनाना हो वहाँ अरत्नि (कोहिनीसे कनिष्ठा अंगुलितक) के बराबर लम्बाई, चौड़ाई और गहराई करके कुण्ड बनावे। फिर उसे उसी खोदी हुई मिट्टीसे भरे। यदि भरनेसे मिट्टी शेष बच जाय तो उस स्थानमें वास करनेसे सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। यदि मिट्टी कम हो जाय तो वहाँ रहनेसे सम्पत्तिकी हानि होती है। यदि सारी मिट्टीसे वह कुण्ड भर जाय तो मध्यम फल समझना चाहिये॥५४३॥ अथवा उसी प्रकार अरत्निके मापका कुण्ड बनाकर सायंकाल उसको जलसे पूरित कर दे और प्रात:काल देखे; यदि कुण्डमें जल अवशिष्ट हो तो उस स्थानमें वृद्धि होगी। यदि कीचड़ (गीली मिट्टी) ही बची हो तो मध्यम फल है और यदि कुण्डकी भूमिमें दरार पड़ गयी हो तो उस स्थानमें वास करनेसे हानि होगी॥५४४॥

मुने! इस प्रकार निवास करनेयोग्य स्थानकी भलीभाँति परीक्षा करके उक्त लक्षणयुक्त भूमिमें दिक्‌साधन (दिशाओंका ज्ञान) करनेके लिये समतल भूमिमें वृत्त (गोल रेखा) बनावे। वृत्तके मध्य भागमें द्वादशाङ्गुल शङ्कु (बारह विभाग या पर्वसे युक्त एक सीधी लकड़ी)-की स्थापना करे और दिक्‌साधनविधिसे दिशाओंका ज्ञान करे। फिर कर्ताके नामके अनुसार षड्‌वर्ग शुद्ध क्षेत्रफल (वास्तुभूमिकी लम्बाई-चौड़ाईका गुणनफल) ठीक करके अभीष्ट लम्बाई-चौड़ाईके बराबर (दिशासाधित रेखानुसार) चतुर्भुज बनावे। उस चतुर्भुज रेखामार्गपर सुन्दर प्राकार (चहारदीवारी) बनावे। लम्बाई और चौड़ाईमें पूर्व आदि चारों दिशाओंमें आठ-आठ द्वारके भाग होते हैं। प्रदक्षिणक्रमसे उनके निम्नाङ्कित फल हैं। (जैसे पूर्वभागमें उत्तरसे दक्षिणतक) १- हानि, २- निर्धनता, ३- धनलाभ, ४- राजसम्मान, ५- बहुत धन, ६- अति चोरी, ७- अति क्रोध तथा ८- भय—ये क्रमशः आठ द्वारोंके फल हैं। दक्षिण दिशामें क्रमशः १- मरण, २- बन्धन, ३- भय, ४- धनलाभ, ५- धनवृद्धि, ६- निर्भयता, ७- व्याधिभय तथा ८- निर्बलता—ये (पूर्वसे पश्चिमतकके) आठ द्वारोंके फल हैं। पश्चिम दिशामें क्रमशः १- पुत्रहानि, २- शत्रुवृद्धि, ३- लक्ष्मीप्राप्ति, ४- धनलाभ, ५- सौभाग्य, ६- अति दौर्भाग्य, ७- दुःख तथा ८- शोक—ये दक्षिणसे उत्तरतकके आठ द्वारोंके फल हैं। इसी प्रकार उत्तर दिशामें (पश्चिमसे पूर्वतक) १- स्त्री-हानि, २- निर्बलता, ३- हानि, ४- धान्यलाभ, ५- धनागम, ६-सम्पत्ति-वृद्धि, ७- भय तथा ८- रोग—ये क्रमशः आठ द्वारोंके फल हैं॥५४५—५५२॥

इसी तरह पूर्व आदि दिशाओंके गृहादिमें भी द्वार और उसके फल समझने चाहिये। द्वारका जितना विस्तार (चौड़ाई) हो, उससे दुगुनी ऊँची किवाड़ें बनाकर उन्हें घरमें (चहारदीवारीके) दक्षिण या पश्चिम भागमें लगावे॥५५३॥ चहारदीवारीके भीतर जितनी भूमि हो, उसके इक्यासी पद (समान खण्ड) बनावे। उनके बीचके नौ खण्डोंमें ब्रह्माका स्थान समझे। यह गृहनिर्माणमें अत्यन्त निन्दित है। चहारदीवारीसे मिले हुए जो चारों ओरके ३२ भाग हैं, वे पिशाचांश कहलाते हैं। उनमें घर बनाना दुःख, शोक और भय देनेवाला होता है। शेष अंशों (पदों)-में घर बनाये जायँ तो पुत्र, पौत्र और धनकी वृद्धि करनेवाले होते हैं॥५५४-५५५ $\frac{१}{२}$॥

वास्तुभूमिकी दिशा-विदिशाओंकी रेखा वास्तुकी शिरा कहलाती है। एवं ब्रह्मभाग, पिशाचभाग तथा शिराका जहाँ-जहाँ योग हो, वहाँ-वहाँ वास्तुकी मर्मसन्धि समझनी चाहिये। वह मर्मसन्धि गृहारम्भ तथा गृह-प्रवेशमें अनिष्टकारक समझी जाती है॥५५६-५५७ $\frac{१}{२}$॥

(**गृहारम्भमें प्रशस्त मास—**) मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण और कार्तिक—ये मास गृहारम्भमें पुत्र, आरोग्य और धन देनेवाले होते हैं॥५५८ $\frac{१}{२}$॥

(दिशाओंमें वर्ग और वर्गेश—) पूर्व आदि आठों दिशाओंमें क्रमशः अकारादि आठ वर्ग होते हैं। इन दिशावर्गोंके क्रमशः गरुड, मार्जार, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, गज और शशक (खरगोश)—ये योनियाँ होती हैं। इन योनि-वर्गोंमें अपने पाँचवें वर्गवाले परस्पर शत्रु होते हैं[१] ॥ ५५९-५६० ॥

(जिस ग्राममें या जिस दिशामें घर बनाना हो, वह साध्य तथा घर बनानेवाला साधक, कर्ता और भर्ता आदि कहलाता है। इसको ध्यानमें रखना चाहिये।) साध्य (ग्राम)-की वर्ग-संख्याको लिखकर, उसके पीछे (बायें भागमें) साधककी वर्ग-संख्या लिखे। उसमें आठका भाग देकर जो शेष बचे, वह साधकका धन होता है। इसके विपरीत विधिसे (अर्थात् साधककी वर्ग-संख्याके बायें भागमें साध्यकी वर्ग-संख्या रखकर जो संख्या बने, उसमें आठसे भाग देकर शेष) साधकका ऋण होता है। इस प्रकार ऋणकी संख्या अल्प और धन-संख्या अधिक हो तो शुभ माने (अर्थात् उस ग्राम या उस दिशामें बनाया हुआ घर रहने योग्य है, ऐसा समझे)[२] ॥ ५६१ (क-ख) ॥

इसी प्रकार साधकके नक्षत्र साध्यके नक्षत्रतक गिनकर जो संख्या हो उसको चारसे गुणा करके गुणनफलमें सातसे भाग दे तो शेष साधकका धन होता है ॥ ५६२ ॥

(वास्तुभूमि तथा घरके धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार और अंशके ज्ञानका साधन—) वास्तुभूमि या घरकी चौड़ाईको लम्बाईसे गुणा करनेपर गुणनफल 'पद' कहलाता है। उस (पद)-को (६ स्थानोंमें

---

१. दिशा और वर्ग जाननेका चक्र, यथा—

		पूर्व १		
८ ईशान	शवर्ग शशक	अवर्ग गरुड़	कवर्ग मार्जार	अग्नि २
७ उत्तर	यवर्ग गज		चवर्ग सिंह	दक्षिण ३
६ वायु	पवर्ग मूषक	तवर्ग सर्प	टवर्ग श्वान	नैर्ऋत्य ४
		पश्चिम ५ ४		

उदाहरण—अवर्ग (अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ)-की पूर्व दिशा और गरुडयोनि है। वहाँसे क्रमशः दिशा गिननेपर पाँचवीं दिशा (पश्चिम)-में तवर्ग और सर्प इस अवर्ग एवं गरुडका शत्रु है। इस प्रकार परस्पर सम्मुख दिशामें शत्रुता होती है। इसी तरह कवर्ग (क ख ग घ ङ)-की दिशा अग्निकोण और योनि मार्जार (बिलाव) है। चवर्ग (च छ ज झ ञ)-की दक्षिण दिशा और सिंह योनि है। टवर्ग (ट ठ ड ढ ण)-की नैर्ऋत्य दिशा और श्वान योनि है। तवर्ग (त थ द ध न)-की पश्चिम दिशा और सर्प योनि है। पवर्ग (प फ ब भ म)-की वायुकोण दिशा और मूषक (चूहा) योनि है। यवर्ग (य र ल व)-की उत्तर दिशा और गज (हाथी) योनि है। शवर्ग (श ष स ह)-की ईशान दिशा और शशक (खरगोश) योनि है। इसका प्रयोजन यह है कि अपने-अपने नामके आदि अक्षरसे अपना वर्ग समझकर दिशा और योनिका ज्ञान करे। शत्रु-दिशामें अपने रहनेके लिये घर न बनावे। अर्थात् उस दिशाके घरमें स्वयं वास न करे तथा शत्रुवर्गवाले गाँवमें जाकर वास न करे इत्यादि। इसके सिवा, विशेष प्रयोजन मूलमें कहे गये हैं।

२. उदाहरण—विचार करना है कि 'जयनारायण' नामक व्यक्तिको गोरखपुरमें बसने या व्यापार करनेमें किस प्रकारका लाभ होगा? तो साध्य (गोरखपुर)-की वर्ग-संख्या २ के बायें भागमें साधक (जयनारायण)-की वर्ग-संख्या ३ रखनेसे ३२ हुआ। इसमें ८ से भाग देनेपर शून्य अर्थात् ८ बचा, यह साधक (जयनारायण)-का धन हुआ तथा इससे विपरीत वर्ग-संख्या २३को रखकर इसमें ८ का भाग देनेसे शेष ७ बचा। यह साधक (जयनारायण)-का ऋण हुआ। यहाँ ऋण ७ से धन अधिक है; अतः जयनारायणके लिये गोरखपुर निवास करनेयोग्य है—यह सिद्ध हुआ। तात्पर्य यह कि जयनारायणको गोरखपुरमें ८ लाभ और ७ खर्च होता रहेगा।

रखकर) क्रमशः ८, ३, ९, ८, ९, ६ से गुणा करे और गुणनफलमें क्रमशः १२, ८, ८, २७, ७, ९ से भाग दे। फिर जो शेष बचें, वे क्रमशः धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार तथा अंश होते हैं। धन अधिक हो तो वह घर शुभ होता है। यदि ऋण अधिक हो तो अशुभ होता है तथा विषम (१, ३, ५, ७) आय शुभ और सम (२, ४, ६, ८) आय अशुभ होता है। घरका जो नक्षत्र हो, वहाँसे अपने नामके नक्षत्रतक गिनकर जो संख्या हो, उसमें ९ से भाग दे। फिर यदि शेष (तारा) ३ बचे तो धनका नाश होता है। ५ बचे तो यशकी हानि होती है और ७ बचे तो गृहकर्ताका ही मरण होता है। घरकी राशि और अपनी राशि गिननेपर परस्पर २, १२ हो तो धनहानि होती है; ९, ५ हो तो पुत्रकी हानि होती है और ६, ८ हो तो अनिष्ट होता है; अन्य संख्या हो तो शुभ समझना चाहिये। सूर्य और मङ्गलके वार तथा अंश हो तो उस घरमें अग्निभय होता है। अन्य वार-अंश हो तो सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंकी सिद्धि होती है[1] ॥ ५६३—५६७ ॥

(वास्तुपुरुषकी स्थिति—) भादों आदि तीन-तीन मासोंमें क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंकी ओर मस्तक करके बायीं करवटसे सोये हुए महासर्पस्वरूप 'चर' नामक वास्तुपुरुष प्रदक्षिणक्रमसे विचरण करते रहते हैं। जिस समय जिस दिशामें वास्तुपुरुषका मस्तक हो, उस समय उसी दिशामें घरका दरवाजा बनाना चाहिये। मुखसे विपरीत दिशामें घरका दरवाजा बनानेसे रोग, शोक और भय होते हैं। किंतु यदि घरमें चारों दिशाओंमें द्वार हो तो यह दोष नहीं होता है ॥ ५६८—५७० ॥

गृहारम्भकालमें नींवके भीतर हाथभरके गड्ढेमें स्थापित करनेके लिये सोना, पवित्र स्थानकी रेणु (धूलि), धान्य और सेवारसहित ईंट घरके भीतर संग्रह करके रखे। घरकी जितनी लंबाई हो, उसके मध्यभागमें वास्तुपुरुषकी नाभि रहती है। उसके तीन अङ्गुल नीचे (वास्तुपुरुषके पुच्छभागकी ओर) कुक्षि रहती है। उसमें शङ्कुका न्यास करनेसे पुत्र आदिकी वृद्धि होती है ॥ ५७१-५७२ ॥

(शङ्कुप्रमाण—) खदिर (खैर), अर्जुन, शाल (शाखू), युगपत्र (कचनार) रक्तचन्दन, पलाश, रक्तशाल, विशाल आदि वृक्षोंसे किसीकी लकड़ीसे शङ्कु बनता है। ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये क्रमशः २४, २३, २० और १६ अङ्गुलके शङ्कु होने चाहिये। उस शङ्कुके बराबर-बराबर तीन भाग करके ऊपरवाले भागमें चतुष्कोण, मध्यवाले भागमें अष्टकोण और नीचेवाले (तृतीय) भागमें बिना कोणका (गोलाकार) उसका स्वरूप होना उचित है। इस प्रकार उत्तम लक्षणोंसे युक्त कोमल और छेदरहित शङ्कु शुभ दिनमें बनावे। उसको षड्वर्गद्वारा शुद्ध सूत्रसे सूत्रित[2] भूमि (गृहक्षेत्र)-में मृदु, ध्रुव क्षिप्रसंज्ञक

---

१. उदाहरण—मान लीजिये, घरकी लंबाई २५ हाथ और चौड़ाई १५ हाथ है तो इनको परस्पर गुणा करनेसे ३७५ यह पद हुआ। इसको ८ से गुणा करनेपर गुणनफल ३००० हुआ। इसमें १२ का भाग देनेपर शेष ० अर्थात् १२ धन हुआ। फिर पदको ३ से गुणा किया तो ११२५ हुआ। इसमें ८से भाग देकर शेष ५ ऋण हुआ। पुनः पद ३७५ को ९ से गुणा किया तो ३३७५ हुआ। इसमें ८ से भाग देनेपर शेष ७ आय हुआ। इसी तरह पदको ८ से गुणा करनेपर ३००० हुआ। इसमें २७ से भाग दिया तो शेष ३ नक्षत्र हुआ। फिर पदको ९ से गुणा किया तो ३३७५ हुआ। इसमें ७ से भाग देनेपर शेष १ वार हुआ। पुनः पद ३७५ को ६ से गुणा किया तो २२५० हुआ। इसमें ९ से भाग देनेपर शेष ० अर्थात् ९ अंश हुआ। यहाँ सब वस्तुएँ शुभ हैं, केवल वार १ रवि हुआ। इसलिये इस प्रकारके घरमें सब कुछ रहते हुए भी अग्निका भय रहेगा; ऐसा समझना चाहिये; इसलिये ऐसा पद देखकर लेना चाहिये, जिसमें सर्वथा शुभ हो।

२. पूर्वोक्त आय और षड्वर्गादिसे शोधित गृहके चारों ओरकी लंबाई-चौड़ाईके प्रमाण-तुल्य सूत्रसे घिरी हुई भूमिको ही यहाँ सूत्रित कहा है।

नक्षत्रोंमें, अमावास्या और रिक्ताको छोड़कर अन्य तिथियोंमें, रविवार, मङ्गलवार तथा चर लग्नको छोड़कर अन्य वारों और अन्य (स्थिर या द्विस्वभाव) लग्नोंमें, जब पापग्रह लग्नमें न हो, अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) हो; शुभ राशि लग्न हो और उसमें शुभ नवमांश हो, उस लग्नमें शुभग्रहका संयोग या दृष्टि हो; ऐसे समय (सुलग्न)-में ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन कराते हुए माङ्गलिक वाद्य और सौभाग्यवती स्त्रियोंके मङ्गलगीत आदिके साथ मुहूर्त बतानेवाले दैवज्ञ (ज्योतिषके विद्वान् ब्राह्मण) के पूजन (सत्कार)-पूर्वक कुक्षिस्थानमें शङ्कुकी स्थापना करे। लग्नसे केन्द्र और त्रिकोणमें शुभ ग्रह तथा ३, ६, ११ में पापग्रह और चन्द्रमा हो तो यह शङ्कुस्थापन श्रेष्ठ है॥५७३—५७९ $\frac{१}{२}$ ॥

घरके छः भेद होते हैं—१- एकशाला, २- द्विशाला, ३- त्रिशाला, ४- चतुश्शाला, ५- सप्तशाला तथा ६- दशशाला। इन छहों शालाओंमेंसे प्रत्येकके १६ भेद होते हैं। उन सब भेदोंके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१- ध्रुव, २- धान्य, ३- जय, ४- नन्द, ५- खर, ६- कान्त, ७- मनोरम, ८ सुमुख, ९ दुर्मुख, १० क्रूर, ११ शत्रुद, १२ स्वर्णद, १३ क्षय, १४ आक्रन्द, १५ विपुल और १६ वाँ विजय नामक गृह होता है। चार अक्षरोंके प्रस्तारके भेदसे क्रमशः इन गृहोंकी गणना करनी चाहिये॥५८०—५८२ $\frac{१}{२}$ ॥

(प्रस्तारभेद—) प्रथम ४ गुरु (ऽ) चिह्न लिखकर उनमें प्रथम गुरुके नीचे लघु (।) चिह्न लिखे। फिर आगे जैसा ऊपर हो उसी प्रकारके गुरु या लघु चिह्न लिखना चाहिये। फिर उसके नीचे (तीसरी पङ्क्तिमें) प्रथम गुरु चिह्नके नीचे लघु चिह्न लिखकर आगे (दाहिने भागमें) जैसे ऊपर गुरु या लघु हो वैसा ही चिह्न लिखे तथा पीछे (बायें भागमें) गुरु चिह्नसे पूरा करे। इसी प्रकार पुनः-पुनः तबतक लिखता जाय जबतक कि पंक्ति (प्रस्तार)-में सब चिह्न लघु न हो जाय। इस प्रकार चार दिशा होनेके कारण ४ अक्षरोंसे १६ भेद होते हैं। प्रत्येक भेदमें चारों चिह्नोंको प्रदक्षिणक्रमसे पूर्व आदि दिशा समझकर जहाँ-जहाँ लघु चिह्न पड़े, वहाँ-वहाँ घरका द्वार और अलिन्द (द्वारके आगेका भाग=चबूतरा) बनाना चाहिये। इस प्रकार पूर्वादि दिशाओंमें अलिन्दके भेदोंसे १६ प्रकारके घर होते हैं[१]॥५८३-५८४ $\frac{१}{२}$ ॥

१. प्रस्तारस्वरूप—

संख्या	स्वरूप				नाम	द्वारकी दिशा
	पूर्व,	दक्षिण,	पश्चिम,	उत्तर		
१	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ध्रुव	ऊर्ध्व (ऊपर)
२	।	ऽ	ऽ	ऽ	धान्य	पूर्व
३	ऽ	।	ऽ	ऽ	जय	दक्षिण
४	।	।	ऽ	ऽ	नन्द	पूर्व-दक्षिण
५	ऽ	ऽ	।	ऽ	खर	पश्चिम
६	।	ऽ	।	ऽ	कान्त	पूर्व-पश्चिम
७	ऽ	।	।	ऽ	मनोरम	दक्षिण-पश्चिम
८	।	।	।	ऽ	सुमुख	पूर्व-दक्षिण-पश्चिम
९	ऽ	ऽ	ऽ	।	दुर्मुख	उत्तर
१०	।	ऽ	ऽ	।	क्रूर	पूर्व-उत्तर
११	ऽ	।	ऽ	।	शत्रुद	दक्षिण-उत्तर
१२	।	।	ऽ	।	स्वर्णद	पूर्व-दक्षिण-उत्तर
१३	ऽ	ऽ	।	।	क्षय	पश्चिम-उत्तर
१४	।	ऽ	।	।	आक्रन्द	पूर्व-पश्चिम-उत्तर
१५	ऽ	।	।	।	विपुल	दक्षिण-पश्चिम-उत्तर
१६	।	।	।	।	विजय	पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर

वास्तुभूमिकी पूर्वदिशामें स्नानगृह, अग्निकोणमें पाकगृह (रसोईघर), दक्षिणमें शयनगृह, नैर्ऋत्यकोणमें शस्त्रागार, पश्चिममें भोजनगृह, वायुकोणमें धन-धान्यादि रखनेका घर, उत्तरमें देवताओंका गृह और ईशानकोणमें जलका गृह (स्थान) बनाना चाहिये तथा आग्नेयकोणसे आरम्भ करके उक्त दो-दो घरोंके बीच क्रमशः मन्थन (दूध-दहीसे घृत निकालने)-का, घृत रखनेका, पैखानेका, विद्याभ्यासका, स्त्रीसहवासका, औषधका और शृङ्गारकी सामग्री रखनेका घर बनाना शुभ कहा गया है। अतः इन सब घरोंमें उन-उन सब वस्तुओंको रखना चाहिये॥ ५८५—५८८ $\frac{१}{२}$ ॥

(आयोंके नाम और दिशा—) पूर्वादि आठ दिशाओंमें क्रमसे ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृक्ष, खर (गदहा), गज और ध्वांक्ष (काक)—ये आठ आय होते हैं॥ ५८९ $\frac{१}{२}$ ॥

(घरके समीप निन्द्य वृक्ष—) पाकर, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा तथा काँटेवाले और दुग्धवाले सब वृक्ष, पीपल, कपित्थ (कैथ), अगस्त्य वृक्ष, सिन्धुवार (निर्गुण्डी) और इमली—ये सब वृक्ष घरके समीप निन्दित कहे गये हैं। विशेषतः घरके दक्षिण और पश्चिम-भागमें ये सब वृक्ष हों तो धन आदिका नाश करनेवाले होते हैं॥ ५९०-५९१ $\frac{१}{२}$ ॥

(गृह-प्रमाण-) घरके स्तम्भ (खम्भे) घरके पैर होते हैं। इसलिये वे समसंख्या (४, ६, ८ आदि)-में होनेपर ही उत्तम कहे गये हैं; विषम संख्यामें नहीं। घरको न तो अधिक ऊँचा ही करना चाहिये, न अधिक नीचा ही। इसलिये अपनी इच्छा (निर्वाह)-के अनुसार भित्ति (दीवार) की ऊँचाई करनी चाहिये। घरके ऊपर जो घर (दूसरा मंजिल) बनाया जाता है, उसमें भी इस प्रकारका विचार करना चाहिये। घरोंकी ऊँचाईके प्रमाण आठ प्रकारके कहे गये हैं, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१-पाञ्चाल, २-वैदेह, ३-कौरव, ४-कुजन्यक[१], ५-मागध, ६-शूरसेन, ७ गान्धार और ८ आवन्तिक। जहाँ घरकी ऊँचाई उसकी चौड़ाईसे सवागुनी अधिक होती है, वह भूतलसे ऊपरतकका पाञ्चालमान कहलाता है, फिर उसी ऊँचाईको उत्तरोत्तर सवागुनी बढ़ानेसे वैदेह आदि सब मान होते हैं। इनमें पाञ्चालमान तो सर्वसाधारण जनोंके लिये शुभ है। ब्राह्मणोंके लिये आवन्तिकमान, क्षत्रियोंके लिये गान्धारमान तथा वैश्योंके लिये कौजन्यमान है। इस प्रकार ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये यथोत्तर गृहमान समझना चाहिये तथा दूसरे मंजिल और तीसरे मंजिलके मकानमें भी पानीका बहाव पहले बताये अनुसार ही बनाना चाहिये[२]॥ ५९२—५९८ ॥

(घरमें प्रशस्त आय—) ध्वज अथवा गज आयमें ऊँट और हाथीके रहनेके लिये घर बनवावे तथा अन्य सब पशुओंके घर भी उसी (ध्वज और गज) आयमें बनाने चाहिये। द्वार, शय्या, आसन, छाता और ध्वजा—इन सबोंके निर्माणके लिये सिंह, वृष अथवा ध्वज आय होने चाहिये॥ ५९९ $\frac{१}{२}$ ॥

अब मैं नूतनगृहमें प्रवेशके लिये वास्तुपूजाकी विधि बताता हूँ—घरके मध्यभागमें तन्दुल (चावल)-पर पूर्वसे पश्चिमकी ओर एक-एक हाथ लम्बी दस रेखाएँ खींचे। फिर उत्तरसे दक्षिणकी ओर भी उतनी ही लम्बी-चौड़ी दस रेखाएँ बनावे। इस

१. मूलमें 'कुजन्यकम्' पाठ है; परंतु कुजन्य कोई प्रसिद्ध देश नहीं है; इसलिये प्रतीत होता है कि यहाँ 'कान्यकुब्जकम्' के स्थानमें 'कुब्जकन्यकम्' था। फिर लेखकादिके दोषसे 'कुजन्यकम्' हो गया है।

२. पूर्व या उत्तर प्लवभूमिमें घर बनाना प्रशस्त कहा गया है। यदि नीचेके तल्लेमें पूर्व दिशामें जलस्राव हो तो ऊपरके मंजिलमें भी पूर्व दिशामें ही जलस्राव होना चाहिये।

प्रकार उसमें बराबर-बराबर ८१ पद (कोष्ठ) होते हैं। उनमें आगे बताये जानेवाले ४५ देवताओंका यथोक्त स्थानमें नामोल्लेख करे। बत्तीस देवता बाहर (प्रान्तके कोष्ठोंमें) और तेरह देवता भीतर पूजनीय होते हैं। उन ४५ देवताओंके स्थान और नामका क्रमशः वर्णन करता हूँ। किनारेके बत्तीस कोष्ठोंमें ईशान कोणसे आरम्भ करके क्रमशः बत्तीस देवता पूज्य हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—कृपीट योनि (अग्नि) १, पर्जन्य २, जयन्त, ३, इन्द्र ४, सूर्य ५, सत्य ६, भृश ७, आकाश ८, वायु ९, पूषा १०, अनृत (वितथ) ११, गृहक्षत[1] १२, यम १३, गन्धर्व १४, भृङ्गराज १५, मृग १६, पितर १७, दौवारिक १८, सुग्रीव १९, पुष्प-दन्त २०, वरुण २१, असुर २२, शेष २३, राजयक्ष्मा[2] २४, रोग २५, अहि २६, मुख्य २७, भल्लाटक २८, सोम २९, सर्प ३०, अदिति ३१ और दिति ३२,—ये चारों किनारोंके देवता हैं। ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायुकोणके देवोंके समीप क्रमशः आप ३३, सावित्र ३४, जय ३५, तथा रुद्र ३६ के पद हैं। ब्रह्माके चारों ओर पूर्व आदि आठों दिशाओंमें क्रमशः अर्यमा ३७, सविता ३८, विवस्वान् ३९, विबुधाधिप ४०, मित्र ४१, राजयक्ष्मा ४२, पृथ्वीधर ४३, आपवत्स ४४ हैं और मध्यके नव पदोंमें (४५) ब्रह्माजीको स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार सब पदोंमें ये पैंतालीस देवता पूजनीय होते हैं। जैसे ईशान-कोणमें आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि और दिति—ये पाँच देव एकपद होते हैं, उसी प्रकार अन्य कोणोंके पाँच-पाँच देवता भी एक-पदके भागी हैं। अन्य जो बाह्य-पङ्क्तिके (जयन्त, इन्द्र आदि) बीस देवता हैं, वे सब द्विपद दो-दो पदोंके भागी) हैं तथा ब्राह्मसे पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें जो अर्यमा, विवस्वान्, मित्र और पृथ्वीधर—ये चार देवता हैं, वे त्रिपद (तीन-तीन पदोंके भागी) हैं, अतः वास्तु-विधिके ज्ञाता विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ब्रह्माजीसहित इन एकपद, द्विपद तथा त्रिपद देवताओंका वास्तुमन्त्रोंद्वारा दूर्वा, दही, अक्षत, फूल, चन्दन, धूप, दीप और नैवेद्यादिसे विधिवत् पूजन करे। अथवा ब्राह्ममन्त्रसे आवाहनादि षोडश (या पञ्च) उपचारोंद्वारा उन्हें दो श्वेत वस्त्र समर्पित करे[3] ॥ ६००—६१३ ॥ नैवेद्यमें तीन प्रकारके

१-२. अन्य संहितामें १२ वाँ बृहत्क्षत; २४ वाँ पापयक्ष्मा कहा गया है।

३. एकाशीतिपद वास्तुचक्र—

शिखी १	पर्जन्य २	जयन्त ३	इन्द्र ४	सूर्य ५	सत्य ६	भृश ७	आकाश ८	वायु ९
दिति ३२	आप ३३	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	सावित्र ३४	पूषा १०
अदिति ३१	अदिति	४४ आपवत्स	अर्यमा	३७ अर्यमा	अर्यमा	३८ सविता	वितथ	वितथ ११
सर्प ३०	सर्प	पृथ्वीधर				विवस्वान्	गृहक्षत	गृहक्षत १२
सोम २९	सोम	पृथ्वीधर ४३		४५ ब्रह्मा		विवस्वान् ३९	यम	यम १३
भल्लाटक २८	भल्लाटक	पृथ्वीधर				विवस्वान्	गन्धर्व	गन्धर्व १४
मुख्य २७	मुख्य	राजयक्ष्मा ४२	मित्र	मित्र ४१	मित्र	विबुधाधिप ४०	भृङ्ग	भृङ्ग १५
अहि २६	रुद्र ३६	शेष	असुर	वरुण	पुष्पदन्त	सुग्रीव	जय ३५	मृग १६
रोग २५	राजयक्ष्मा २४	शेष २३	असुर २२	वरुण २१	पुष्पदन्त २०	सुग्रीव १९	दौवारिक १८	पितर १७

(भक्ष्य, भोज्य, लेह्य) अन्न माङ्गलिक गीत और वाद्यके साथ अर्पण करे। अन्तमें ताम्बूल (पान-सोपारी) अर्पण करके वास्तुपुरुषकी इस प्रकार प्रार्थना करे॥ ६१४॥

वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूशय्यानिरत प्रभो।
मद्‌गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा॥

'भूमिशय्यापर शयन करनेवाले वास्तुपुरुष! आपको मेरा नमस्कार है। प्रभो! आप मेरे घरको धन-धान्य आदिसे सम्पन्न कीजिये।'

इस प्रकार प्रार्थना करके देवताके समक्ष पूजा करानेवाले (पुरोहित)-को यथाशक्ति दक्षिणा दे तथा अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें भी दक्षिणा दे। जो मनुष्य सावधान होकर गृहारम्भ या गृहप्रवेशके समय इस विधिसे वास्तुपूजा करता है, वह आरोग्य, पुत्र, धन और धान्य प्राप्त करके सुखी होता है। जो मनुष्य वास्तुपूजा न करके नये घरमें प्रवेश करता है, वह नाना प्रकारके रोग, क्लेश और संकट प्राप्त करता है॥ ६१५—६१८॥

जिसमें किंवाड़ें न लगी हों, जिसे ऊपरसे छत आदिके द्वारा छाया न गया हो तथा जिसके लिये (पूर्वोक्त रूपसे वास्तुपूजन करके) देवताओंको बलि (नैवेद्य) और ब्राह्मण आदिको भोजन न दिया गया हो, ऐसे नूतन गृहमें कभी प्रवेश न करे; क्योंकि वह विपत्तियोंकी खान (स्थान) होता है॥ ६१९॥

(यात्रा-प्रकरण—) अब मैं जिस प्रकारसे यात्रा करनेपर वह राजा तथा अन्य जनोंके लिये अभीष्ट फलकी सिद्धि करानेवाली होती है, उस विधिका वर्णन करता हूँ। जिनके जन्म-समयका ठीक-ठीक ज्ञान है, उन राजाओं तथा अन्य जनोंको उस विधिसे यात्रा करनेपर उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जिन मनुष्योंका जन्मसमय अज्ञात है, उनको तो घुणाक्षर[1] न्यायसे ही कभी फलकी प्राप्ति हो जाती है, तथापि उनको भी प्रश्नलग्नसे तथा निमित्त और शकुन आदिद्वारा शुभाशुभ देखकर यात्रा करनेसे अभीष्ट फलका लाभ होता है॥ ६२०-६२१॥

(यात्रामें निषिद्ध तिथियाँ—) षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा और शुक्लपक्षकी प्रतिपदा—इन तिथियोंमें यात्रा करनेसे दरिद्रता तथा अनिष्टकी प्राप्ति होती है॥ ६२२॥

(विहित नक्षत्र—) अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, रेवती, अश्विनी, श्रवण, पुष्य और धनिष्ठा—इन नक्षत्रोंमें यदि अपने जन्म-नक्षत्रसे सातवीं, पाँचवीं और तीसरी तारा न हो तो यात्रा अभीष्ट फलको देनेवाली होती है॥ ६२३॥

(दिशाशूल—) शनि और सोमवारके दिन पूर्व दिशाकी ओर न जाय, गुरुवारको दक्षिण न जाय, शुक्र और रविवारको पश्चिम न जाय तथा बुध और मङ्गलको उत्तर दिशाकी यात्रा न करे॥ ६२४॥ ज्येष्ठा, पूर्वभाद्रपद, रोहिणी और उत्तराफाल्गुनी—ये नक्षत्र क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें शूल होते हैं।

(सर्वदिग्गमन नक्षत्र—) अनुराधा, हस्त, पुष्य और अश्विनी—ये चार नक्षत्र सब दिशाओंकी यात्रामें प्रशस्त हैं॥ ६२५॥

(दिग्द्वार-नक्षत्र—) कृत्तिकासे आरम्भ करके सात-सात नक्षत्रसमूह पूर्वादि दिशाओंमें रहते हैं। तथा अग्निकोणसे वायुकोणतक परिघदण्ड रहता

१. जैसे घुण (कीटविशेष) काठको खोदता रहता है तो उससे कहीं अकारादि अक्षरका स्वरूप अकस्मात् बन जाता है; उसी प्रकार जो अपने जन्मसमयसे अपरिचित हैं, वे लग्न आदिको न जानकर भी यात्रा करते-करते कभी संयोगवश शुभ फलके भागी हो जाते हैं।

है; अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिये, जिससे परिघदण्डका लङ्घन न हो[1] ॥ ६२६ ॥

पूर्वके नक्षत्रोंमें अग्निकोणकी यात्रा करे। इसी प्रकार दक्षिणके नक्षत्रोंमें अग्निकोण तथा पश्चिम और उत्तरके नक्षत्रोंमें वायुकोणकी यात्रा कर सकते हैं।

(दिशाओंकी राशियाँ—) पूर्व आदि चार दिशाओंमें मेष आदि १२ राशियाँ पुनः पुनः (तीन आवृत्तिसे) आती हैं[2] ॥ ६२७ ॥

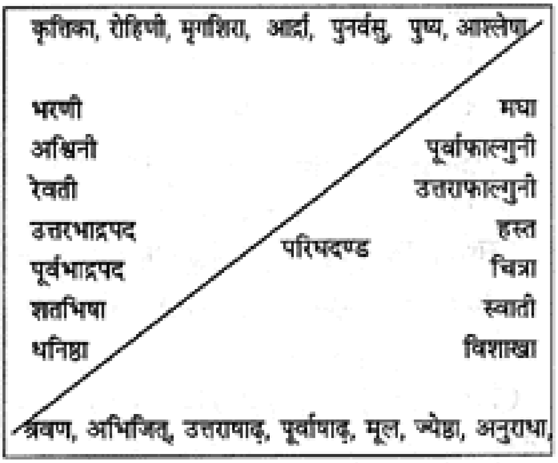
(लालाटिकयोग—) जिस दिशामें यात्रा करनी हो, उस दिशाका स्वामी ललाटगत (सामने) हो तो यात्रा करनेवाला लौटकर नहीं आता है। पूर्व दिशामें यात्रा करनेवालेको लग्नमें यदि सूर्य हो तो वह ललाटगत माना जाता है। यदि शुक्र लग्नसे ग्यारहवें या बारहवें स्थानमें हों तो अग्निकोणमें यात्रा करनेसे, मङ्गल दशम भावमें हो तो दक्षिणयात्रा करनेसे, राहु नवें और आठवें भावमें हो तो नर्ऋत्य कोणकी यात्रासे, शनि सप्तम भावमें हो तो पश्चिम-यात्रासे, चन्द्रमा पाँचवें और छठे भावमें हो तो वायुकोणकी यात्रासे, बुध चतुर्थ भावमें हो तो उत्तरकी यात्रासे, गुरु तीसरे और दूसरे भावमें हो तो ईशानकोणकी यात्रा करनेसे ललाटगत होते हैं। जो मनुष्य जीवनकी इच्छा रखता हो, वह इस ललाटयोगको त्यागकर यात्रा करे ॥ ६२८—६३२ ॥

लग्नमें वक्रगति ग्रह या उसके षड्वर्ग (राशि-होरादि) हों तो यात्रा करनेवाले राजाओंकी पराजय होती है ॥ ६३३ ॥

जब जिस अयन[3] में सूर्य और चन्द्रमा दोनों हों, उस समय उस दिशाकी यात्रा शुभ फल देनेवाली होती है। यदि दोनों भिन्न अयनमें हों तो जिस अयनमें सूर्य हों उधर दिनमें तथा जिस अयनमें चन्द्रमा हों उधर रात्रिमें यात्रा शुभ होती

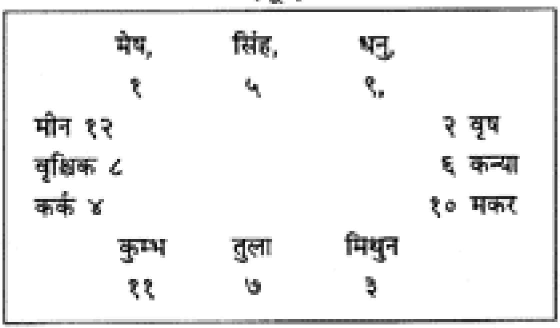
१. पूर्व नक्षत्रमें पश्चिम या दक्षिण जानेसे परिघदण्डका लङ्घन होगा। चक्र देखिये—

(पूर्व)



२. दिग्राशिबोधक चक्र—

(पूर्व)



३. मकरसे ६ राशि उत्तरायण है। इनमें सूर्य-चन्द्रमा हों तो उत्तरकी यात्रा शुभ होती है, क्योंकि दोनों सम्मुख होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा दाहिने भागमें पड़ें तो भी यात्रा शुभ हो सकती है। इसलिये उस समय पश्चिम-यात्रा भी शुभ ही समझनी चाहिये एवं कर्कसे छः राशि दक्षिणायन समझें।

है। अन्यथा यात्रा करनेसे यात्रीकी पराजय होती है॥ ६३४॥

(शुक्रदोष—) शुक्र अस्त हों तो यात्रामें हानि होती है। यदि वह सम्मुख हो तो यात्रा करनेसे पराजय होती है। सम्मुख शुक्रके दोषको कोई भी ग्रह नहीं हटा सकता है। किंतु वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, भरद्वाज और गौतम—इन पाँच गोत्रवालोंको सम्मुख शुक्रका दोष नहीं होता है। यदि एक ग्रामके भीतर ही यात्रा करनी हो या विवाहमें जाना हो या दुर्भिक्ष होनेपर अथवा राजाओंमें युद्ध होनेपर तथा राजा या ब्राह्मणोंका कोप होनेपर कहीं जाना पड़े तो इन अवस्थाओंमें सम्मुख शुक्रका दोष नहीं होता है। शुक्र यदि नीच राशिमें या शत्रुराशिमें अथवा वक्रगति या पराजित[१] हो तो यात्रा करनेवालोंकी पराजय होती है। यदि शुक्र अपनी उच्चराशि (मीन)-में हो तो यात्रामें विजय होती है॥ ६३५—६३८)

अपने जन्मलग्न या जन्मराशिसे अष्टम राशि या लग्नमें तथा शत्रुकी राशिसे छठी राशिमें या लग्नमें अथवा इन सबोंके स्वामी जिस राशिमें हों, उस लग्न या राशिमें यात्रा करनेवालेकी मृत्यु होती है। परंतु यदि जन्मलग्नराशिपति और अष्टम राशिपतिमें परस्पर मैत्री हो तो उक्त अष्टमराशिजन्य दोष स्वयं नष्ट हो जाता है॥ ६३९-६४०॥

द्विस्वभाव लग्न यदि पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो तो यात्रामें पराजय होती है तथा स्थिर राशि पापग्रहसे युक्त न हो तो वह यात्रालग्नमें अशुभ है। यदि स्थिर राशिलग्नमें शुभग्रहका योग या दृष्टि हो तो शुभ फल होता है॥ ६४१॥

धनिष्ठा नक्षत्रके उत्तरार्धसे आरम्भ करके (रेवतीपर्यन्त) पाँच नक्षत्रोंमें गृहार्थ तृण-काष्ठोंका संग्रह, दक्षिणकी यात्रा, शय्या (तकिया, पलङ्ग आदि)-का बनाना, घरको छवाना आदि कार्य नहीं करने चाहिये॥ ६४२॥

यदि यात्रालग्नमें जन्मलग्न, जन्मराशि या इन दोनोंके स्वामी हों अथवा जन्मलग्न या जन्मराशिसे ३, ६, ११, १० वीं राशि हो तो शत्रुओंका नाश होता है॥ ६४३॥

यदि शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, कुम्भ) तथा दिग्द्वार (यात्राकी दिशा)-की राशि लग्नमें हो अथवा किसी भी लग्नमें शुभग्रहके वर्ग (राशि-होरादि) हों तो यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुओंका नाश होता है॥ ६४४॥

शत्रुके जन्मलग्न या जन्मराशिसे अष्टम राशि या उन दोनोंके स्वामी जिस राशिमें हों वह राशि यात्रालग्नमें हो तो शत्रुका नाश होता है॥ ६४५॥

मीन लग्नमें या लग्नगत मीनके नवमांशमें यात्रा करनेसे मार्ग (रास्ता) टेढ़ा हो जाता है। (अर्थात् बहुत घूमना पड़ता है।) तथा कुम्भलग्न और लग्नगत कुम्भका नवमांश भी यात्रामें अत्यन्त निन्दित है॥ ६४६॥

जलचर राशि (कर्क, मीन) या जलचर राशिका नवमांश लग्नमें हो तो नौकाद्वारा नदी-नद आदि मार्गसे यात्रा शुभ होती है॥ ६४६ $\frac{1}{2}$॥

(लग्नभावोंकी संज्ञा—) १- मूर्ति (तन), २- कोष (धन), ३- धन्वी (पराक्रम, भ्राता), ४- वाहन (सवारी, माता), ५- मन्त्र (विद्या, संतान), ६- शत्रु (रोग, मामा), ७- मार्ग (यात्रा, पति-पत्नी), ८- आयु (मृत्यु), ९- मन (अन्तःकरण, भाग्य), १०- व्यापार (व्यवसाय, पिता), ११- प्राप्ति (लाभ), १२- अप्राप्ति (व्यय)—ये क्रमसे लग्न आदि १२ स्थानोंकी संज्ञाएँ हैं॥ ६४७-६४८॥

१. जब मङ्गलादि ग्रहोंमें किन्हीं दो ग्रहोंकी एक राशिमें अंशकला बराबर हो तो दोनोंमें युद्ध समझा जाता है। उन दोनोंमें जो उत्तर रहता है, वह विजयी तथा दक्षिण रहनेवाला पराजित होता है।

पापग्रह (शनि, रवि, मङ्गल, राहु तथा केतु—ये) तीसरे और ग्यारहवेंको छोड़कर अन्य सब भावोंमें जानेसे भावफलको नष्ट कर देते हैं[1]। तीसरे और ग्यारहवें भावमें जानेसे वे इन दोनों भावोंको पुष्ट करते हैं। सूर्य और मङ्गल ये दोनों दशम भावको भी नष्ट नहीं करते, अपितु दशम भावमें जानेसे उस भावफल (व्यापार, पिता, राज्य तथा कर्म)-को पुष्ट ही करते हैं और शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु तथा शुक्र) जिस भावमें जाते हैं, उस भावफलको पुष्ट ही करते हैं; केवल षष्ठ (६) भावमें जानेसे उस भावफल (शत्रु और रोग)-को नष्ट करते हैं॥ ६४९॥ शुभ ग्रहोंमें शुक्र सप्तम भावको और चन्द्रमा लग्न एवं अष्टम (१, ८) को पुष्ट नहीं करते हैं। (अपितु नष्ट ही करते हैं।)

(अभिजित्-प्रशंसा—) अभिजित् मुहूर्त (दिनका मध्यकाल-१२ बजेसे १ घड़ी आगे और १ घड़ी पीछे) अभीष्ट फल सिद्ध करनेवाला योग है। यह दक्षिण दिशाकी यात्रा छोड़कर अन्य दिशाओंकी यात्रामें शुभ फल देता है। इस (अभिजित् मुहूर्त)-में पञ्चाङ्ग (तिथि-वारादि) शुभ न हो तो भी यात्रामें वह उत्तम फल देनेवाला होता है॥ ६५०-६५१॥

(यात्रा-योग—) लग्न और ग्रहोंकी स्थितिसे नाना प्रकारके यात्रा-योग होते हैं। अब उन योगोंका वर्णन करता हूँ, क्योंकि राजाओं (क्षत्रियों)-को योगबलसे ही अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। ब्राह्मणोंको नक्षत्रबलसे तथा अन्य मनुष्योंको मुहूर्तबलसे इष्टसिद्धि होती है। तत्करोंको शकुनबलसे अपने अभीष्टकी प्राप्ति होती है॥ ६५२½॥ शुक्र, बुध और बृहस्पति—इन तीनमेंसे कोई भी यदि केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो 'योग' कहलाता है। यदि उनमेंसे दो ग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो 'अधियोग' कहलाता है तथा यदि तीनों लग्नसे केन्द्र (१, ४, ७, १०) या त्रिकोण (९, ५)-में हों तो योगधियोग कहलाता है॥ ६५३½॥ योगमें यात्रा करनेवालोंका कल्याण होता है। अधियोगमें यात्रा करनेसे विजय प्राप्त होती है और योगधियोगमें यात्रा करनेवालेको कल्याण, विजय तथा सम्पत्तिका भी लाभ होता है॥ ६५४½॥ लग्नसे दसवें स्थामें चन्द्रमा, षष्ठ स्थानमें शनि और लग्नमें सूर्य हों तो इस समयमें यात्रा करनेवाले राजाको विजय तथा शत्रुकी सम्पत्ति भी प्राप्त होती है॥ ६५५½॥ शुक्र, रवि, बुध, शनि और मङ्गल—ये पाँचों ग्रह क्रमसे लग्न चतुर्थ, सप्तम, तृतीय और षष्ठ भावमें हों तो यात्रा करनेवाले राजाके सम्मुख आये हुए शत्रुगण आगमें पड़ी हुई लाहकी भाँति नष्ट हो जाते हैं॥ ६५६½॥ बृहस्पति लग्नमें और अन्य ग्रह यदि दूसरे और ग्यारहवें भावमें हों तो इस योगमें यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुओंकी सेना यमराजके घर पहुँच जाती है॥ ६५७½॥ यदि लग्नमें शुक्र, ग्यारहवेंमें रवि और चतुर्थ भावमें चन्द्रमा हो तो इस योगमें यात्रा करनेवाला राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे हाथियोंके झुंडको सिंह॥ ६५८½॥

अपने उच्च (मीन)-में स्थित शुक्र लग्नमें हो अथवा अपने उच्च (वृष)-का चन्द्रमा लाभ (११) भावमें स्थित हो तो यात्रा करनेवाला नरेश अपने शत्रुकी सेनाको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे भगवान् श्रीकृष्णने पूतनाको नष्ट किया था॥ ६५९½) यदि यात्राके समय शुभग्रह केन्द्रमें या त्रिकोणमें हों तथा पापग्रह तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें हों तो यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुकी लक्ष्मी अभिसारिकाकी भाँति उसके समीप आ जाती है॥ ६६०½॥ गुरु, रवि और

१. जैसे पापग्रह लग्न (तनुभाव)-में रहता है तो शरीरमें कष्ट-पीड़ा देता है तथा धन-भावमें धनका नाश करता है। किंतु जब तीसरेमें रहता है तो पराक्रमको और ग्यारहवें रहता है तो लाभको पुष्ट करता है।

चन्द्रमा—ये क्रमशः लग्न, ६ और ८ में हों तो यात्रा करनेवाले राजाके सामने दुर्जनोंकी मैत्रीके समान शत्रुओंकी सेना नहीं ठहरती है॥ ६६१ १/२॥ यदि लग्नसे ३, ६, ११ में पापग्रह हों और शुभ-ग्रह बलवान् होकर अपने उच्चादि स्थानमें (स्थित) हों तो शत्रुकी भूमि यात्रा करनेवाले राजाके हाथमें आ जाती है॥ ६६२ १/२॥ अपने उच्च (कर्क)-में स्थित बृहस्पति यदि लग्नमें हों और चन्द्रमा ११ भावमें स्थित हों तो यात्रा करनेवाला नरेश अपने शत्रुको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे त्रिपुरासुरको श्रीशिवजीने नष्ट किया था॥ ६६३ १/२॥ शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ) राशिमें स्थित शुक्र यदि लग्नमें हों और गुरु ग्यारहवें स्थानमें हों तो यात्रा करनेवाला पुरुष तारकासुरको कार्तिकेयकी भाँति अपने शत्रुको नष्ट कर देता है॥ ६६ १/२॥ गुरु लग्नमें और शुक्र किसी केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो यात्री नरेश अपने शत्रुओंको वैसे ही भस्म कर देता है, जैसे वनको दावानल॥ ६६५ १/२॥ यदि बुध लग्नमें और अन्य शुभग्रह किसी केन्द्रमें हों तथा नक्षत्र भी अनुकूल हो तो उसमें यात्रा करनेवाला राजा अपने शत्रुओंको वैसे ही सोख लेता है, जैसे सूर्यकी किरणें ग्रीष्म-ऋतुमें क्षुद्र नदियोंको सोख लेती है॥ ६६६ १/२॥ सम्पूर्ण शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तथा सूर्य या चन्द्रमा ग्यारहवें भावमें स्थित हों तो यात्रा करनेवाला नरेश अन्धकारको सूर्यकी भाँति अपने शत्रुको नष्ट कर देता है॥ ६६७ १/२॥

शुभग्रह यदि अपनी राशिमें स्थित होकर केन्द्र (१, ४, ७, १०), त्रिकोण (५, ९) तथा आय (११) भावमें हो तो यात्रा करनेवाला राजा रूईको अग्निके समान अपने शत्रुओंको जलाकर भस्म कर देता है॥ ६६८ १/२) चन्द्रमा दसवें भावमें और बृहस्पति केन्द्रमें हों तो उसमें यात्रा करनेवाला राजा अपने सम्पूर्ण शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे प्रणवसहित पञ्चाक्षर-मन्त्र (**ॐ नमः शिवाय**) पाप-समूहका नाश कर देता है॥ ६६९ १/२॥ अकेला शुक्र भी यदि वर्गोत्तम नवमांशगत लग्नमें स्थित हो तो उसमें भी यात्रा करनेसे राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे पापोंको श्रीभगवान्‌का स्मरण॥ ६७० १/२॥ शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तथा चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवमांशमें हो तो यात्रा करनेसे राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार सपरिवार नष्ट करता है, जैसे इन्द्र पर्वतोंको ॥ ६७१ १/२॥ बृहस्पति अथवा शुक्र अपने मित्रकी राशिमें होकर केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो ऐसे समयमें यात्रा करनेवाला भूपाल सर्पोंको गरुड़के समान अपने शत्रुओंको अवश्य नष्ट कर देता है॥ ६७२ १/२॥ यदि एक भी शुभग्रह वर्गोत्तम नवमांशमें स्थित होकर केन्द्रमें हो तो यात्रा करने-वाला नरेश पाप-समूहोंको गङ्गाजीके समान अपने शत्रुओंको क्षणभरमें नष्ट कर देता है॥ ६७३ १/२॥ जो राजा शत्रुओंको जीतनेके लिये उपर्युक्त राजयोगोंमें यात्रा करता है, उसका कोपानल शत्रुओंकी स्त्रियोंके अश्रुजलसे शान्त होता है॥ ६७४ १/२॥ आश्विन मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथि 'विजया' कहलाती है। उसमें जो यात्रा करता है, उसे अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त होती है अथवा शत्रुओंसे सन्धि (मेल) हो जाती है। किसी भी दशामें उसकी पराजय नहीं होती है॥ ६७५ १/२॥

(मनोजय-प्रशंसा—) यात्रा आदि सभी कार्योंमें निमित्त और शकुन आदि (लग्न एवं ग्रहयोग)-की अपेक्षा भी मनोजय (मनको वशमें तथा प्रसन्न रखना) प्रबल है। इसलिये मनस्वी पुरुषोंके लिये यत्नपूर्वक फलसिद्धिमें मनोजय ही प्रधान कारण होता है॥ ६७६ १/२॥

(यात्रामें प्रतिबन्ध—) यदि घरमें उत्सव, उपनयन, विवाह, प्रतिष्ठा या सूतक उपस्थित हो तो जीवनकी इच्छा रखनेवालोंको बिना उत्सवको समाप्त किये यात्रा नहीं करनी चाहिये॥ ६७७$\frac{1}{2}$)

(यात्रामें अपशकुन—) यात्राके समय यदि परस्पर दो भैंसों या चूहोंमें लड़ाई हो, स्त्रीसे कलह हो या स्त्रीका मासिक धर्म हुआ हो, वस्त्र आदि शरीरसे खिसककर गिर पड़े, किसीपर क्रोध हो जाय या मुखसे दुर्वचन कहा गया हो तो उस दशामें राजाको यात्रा नहीं करनी चाहिये॥ ६७८$\frac{1}{2}$ ॥

(दिशा, वार तथा नक्षत्र दोहद[1]—) यदि राजा घृतमिश्रित अन्न खाकर पूर्व दिशाकी यात्रा करे, तिलचूर्ण मिलाया हुआ अन्न खाकर दक्षिण दिशाको जाय और घृतमिश्रित खीर खाकर उत्तर दिशाकी यात्रा करे तो निश्चय ही वह शत्रुओंपर विजय पाता है। रविवारको सज्जिका (मिसिरी और मसाला मिला हुआ दही), सोमवारको खीर, मङ्गलवारको काँजी, बुधवारको दूध, गुरुवारको दही, शुक्रवारको दूध तथा शनिवारको तिल और भात खाकर यात्रा करे तो शत्रुओंको जीत लेता है। अश्विनीमें कुल्माष (उड़दका एक भेद), भरणीमें तिल, कृत्तिकामें उड़द, रोहिणीमें गायका दही, मृगशिरामें गायका घी, आर्द्रामें गायका दूध, आश्लेषामें खीर, मघामें नीलकण्ठका दर्शन, हस्तमें षाष्टिक्य (साठी धान्य)-के चावलका भात, चित्रामें प्रियङ्गु (कँगनी), स्वातीमें अपूप (मालपूआ), अनुराधामें फल (आम, केला आदि), उत्तराषाढ़में शाल्य (अगहनी धानका चावल), अभिजित्में हविष्य, श्रवणमें कृशरान्न (खिचड़ी), धनिष्ठामें मूँग, शतभिषामें जौका आटा, उत्तरभाद्रपदमें खिचड़ी तथा रेवतीमें दही-भात खाकर राजा यदि हाथी, घोड़े, रथ या नरयान (पालकी)-पर बैठकर यात्रा करे तो वह शत्रुओंपर विजय पाता है और उसका अभीष्ट सिद्ध होता है॥ ६७९—६८४॥

(यात्राविधि—) प्रज्वलित अग्निमें तिलोंसे हवन करके जिस दिशामें जाना हो, उस दिशाके स्वामीको उन्हींके समान रङ्गवाले वस्त्र, गन्ध तथा पुष्प आदि उपचार अर्पण करके उन दिक्पालोंके मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक उनका पूजन करे। फिर अपने इष्टदेव और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लेकर राजाको यात्रा करनी चाहिये॥ ६८५$\frac{1}{2}$ ॥

(दिक्पालोंके स्वरूपका ध्यान—) (१ पूर्व दिशाके स्वामी) देवराज इन्द्र शचीदेवीके साथ ऐरावतपर आरूढ़ हो बड़ी शोभा पा रहे हैं। उनके हाथमें वज्र है। उनकी कान्ति सुवर्ण-सदृश है तथा वे दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। (२ अग्निकोणके अधीश्वर) अग्निदेवके सात हाथ, सात जिह्वाएँ और छः मुख हैं। वे भेड़पर सवार हैं, उनकी कान्ति लाल है, वे स्वाहादेवीके प्रियतम हैं तथा स्रुक्-स्रुवा और नाना प्रकारके आयुध धारण करते हैं। (३ दक्षिण दिशाके स्वामी) यमराजका दण्ड ही अस्त्र है। उनकी आँखें लाल हैं और वे भैंसेपर आरूढ़ हैं। उनके शरीरका रङ्ग कुछ लाली लिये हुए साँवला है। वे ऊपरकी ओर मुँह किये हुए हैं तथा शुभस्वरूप हैं। (४ नैर्ऋत्यकोणके अधिपति) निर्ऋतिका वर्ण नील है। वे अपने हाथोंमें ढाल और तलवार

१. दोहद—जिसे जिस वस्तुकी विशेष चाह होती है, जिसकी प्राप्तिसे मन प्रसन्न हो जाता है, वह उसका 'दोहद' कहलाता है। पूर्व दिशाकी अधिष्ठात्रीदेवी चाहती है कि लोग घृतमिश्रित अन्न खायँ। रविवारका अधिपति चाहता है कि लोग रसाला (सिखरन—मिसिरी और मसाला मिला हुआ दही) खायँ इत्यादि। इसी प्रकार अन्य वारादिमें भी जानना चाहिये। दोहद-भक्षण करनेसे उस वार आदिका दोष नष्ट हो जाता है।

लिये रहते हैं; मनुष्य ही उनका वाहन है। उनकी आँखें भयंकर तथा केश ऊपरकी ओर उठे हुए हैं। वे सामर्थ्यशाली हैं और उनकी गर्दन बहुत बड़ी है। (५ पश्चिम दिशाके स्वामी) वरुणकी अङ्गकान्ति पीली है। वे नागपाश धारण करते हैं। ग्राह उनका वाहन है। वे कालिकादेवीके प्राणनाथ हैं और रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। (६ वायव्य कोणके अधिपति) वायुदेव काले रङ्गके मृगपर आरूढ़ हैं। अञ्जनीके पति हैं, वे समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप हैं। उनकी दो भुजाएँ हैं और वे हाथमें दण्ड धारण करते हैं। इस प्रकार उनका ध्यान और पूजन करे। (७ उत्तर दिशाके स्वामी) कुबेर घोड़ेपर सवार हैं। उनकी दो भुजाएँ हैं। वे हाथमें कलश धारण करते हैं। उनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके सदृश है। वे चित्रलेखादेवीके प्राणवल्लभ तथा यक्षों और गन्धर्वोंके राजा हैं। (८ ईशानकोणके स्वामी) गौरीपति भगवान् शङ्कर हाथमें पिनाक लिये वृषभपर आरूढ़ हैं। वे सबसे श्रेष्ठ देवता हैं। उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है। माथेपर चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित होता है और सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करते हैं। (इस प्रकार इन सब दिक्पालोंका ध्यान और पूजन करना चाहिये) ॥ ६८६—६९३½ ॥

(प्रस्थानविधि—) यदि किसी आवश्यक कार्यवश निश्चित यात्रा-लग्नमें राजा स्वयं न जा सके तो छत्र, ध्वजा, शस्त्र, अस्त्र या वाहनमेंसे किसी एक वस्तुको यात्राके निर्धारित समयमें घरसे निकालकर जिस दिशामें जाना हो, उसी दिशाकी ओर दूर रखा दे। अपने स्थानसे निर्गमस्थान (प्रस्थान रखनेकी जगह) २०० दण्ड (चार हाथकी लग्गी)-से दूर होना उचित है। अथवा चालीस या कम-से-कम बारह दण्डकी दूरी होनी आवश्यक है। राजा स्वयं प्रस्तुत होकर जाय तो किसी एक स्थानमें सात दिन न ठहरे। अन्य (राज-मन्त्री तथा साधारण) जन भी प्रस्थान करके एक स्थानमें छः या पाँच दिन न ठहरे। यदि इससे अधिक ठहरना पड़े तो उसके बाद दूसरा शुभ मुहूर्त और उत्तम लग्न विचारकर यात्रा करे ॥ ६९४—६९६½ ॥

असमयमें (पौषसे चैत्रपर्यन्त) बिजली चमके, मेघकी गर्जना हो या वर्षा होने लगे तथा त्रिविध (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) उत्पात होने लग जाय तो राजाको सात राततक अन्य स्थानोंकी यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ६९७½ ॥

(शकुन—) यात्राकालमें रला नामक पक्षी, चूहा, सियारिन, कौआ तथा कबूतर—इनके शब्द वामभागमें सुनायी दें तो शुभ होता है। छछुंदर, पिंगला (उल्लू), पल्ली और गदहा—ये यात्राके समय वामभागमें हों तो श्रेष्ठ हैं। कोयला, तोता और भरदूल आदि पक्षी यदि दाहिने भागमें आ जायँ तो श्रेष्ठ हैं। काले रंगको छोड़कर अन्य सब रंगोंके चौपाये यदि वाम भागमें दीख पड़ें तो श्रेष्ठ हैं तथा यात्रासमयमें कृकलास (गिरगिट) का दर्शन शुभ नहीं है ॥ ६९८—७०० ॥

यात्राकालमें सूअर, खरगोश, गोधा (गोह) और सर्पोंकी चर्चा शुभ होती है, किंतु किसी भूली हुई वस्तुको खोजनेके लिये जाना हो तो इनकी चर्चा अच्छी नहीं होती है। वानर और भालुओंकी चर्चाका विपरीत फल होता है ॥ ७०१ ॥

यात्रामें मोर, बकरा, नेवला, नीलकण्ठ और कबूतर दीख जायँ तो इनके दर्शनमात्रसे शुभ होता है; परंतु लौटकर अपने नगरमें आने या घरमें प्रवेश करनेके समय ये दर्शन दें तो सब अशुभ ही समझना चाहिये। यात्राकालमें रोदन शब्दरहित कोई शव (मुर्दा) सामने दीख पड़े तो यात्राके उद्देश्यकी सिद्धि होती है। परंतु लौटकर घर आने तथा नवीन गृहमें प्रवेश करनेके समय यदि रोदन शब्दके साथ मुर्दा दीख पड़े तो वह घातक होता है ॥ ७०२-७०३ ॥

(अपशकुन—) यात्राके समय पतित, नपुंसक, जटाधारी, पागल, औषध आदि खाकर वमन (उलटी) करनेवाला, शरीरमें तेल लगानेवाला, वसा, हड्डी, चर्म, अङ्गार (ज्वालारहित अग्नि), दीर्घ रोगी, गुड़, कपास (रूई), नमक, प्रश्न (पूछने या टोकनेका शब्द), तृण, गिरगिट, बन्ध्या स्त्री, कुबड़ा, गेरुआ वस्त्रधारी, खुले केशवाला, भूखा तथा नंगा—ये सब सामने उपस्थित हो जायँ तो अभीष्ट-सिद्धि नहीं होती है ॥ ७०४-७०५ ॥

(शुभ शकुन—) प्रज्वलित अग्नि, सुन्दर घोड़ा, राजसिंहासन, सुन्दरी स्त्री, चन्दन आदिकी सुगन्ध, फूल, अक्षत, छत्र, चामर, डोली या पालकी, राजा, खाद्य पदार्थ, ईख, फल, चिकनी मिट्टी, अन्न, शहद, घृत, दही, गोबर, चूना, धुला हुआ वस्त्र, शङ्ख, श्वेत बैल, ध्वजा, सौभाग्यवती स्त्री, भरा हुआ कलश, रत्न (हीरा, मोती आदि), भृङ्गार (गड़ुआ), गौ, ब्राह्मण, नगाड़ा, मृदङ्ग, दुन्दुभि, घण्टा तथा वीणा (बाँसुरी) आदि वाद्योंके शब्द, वेदमन्त्र एवं मङ्गल गीत आदिके शब्द—ये सब यात्राके समय यदि देखने या सुननेमें आवें तो यात्रा करनेवाले लोगोंके सब कार्य सिद्ध करते हैं ॥ ७०६—७०९ ॥

(अपशकुन-परिहार—) यात्राके समय प्रथम बार अपशकुन हो तो खड़ा होकर इष्टदेवका स्मरण करके फिर चले। दूसरा अपशकुन हो तो ब्राह्मणोंकी पूजा (वस्त्र, द्रव्य आदिसे उनका सत्कार) करके चले। यदि तीसरी बार अपशकुन हो जाय तो यात्रा स्थगित कर देनी चाहिये ॥ ७१० ॥

(छींकके फल—) यात्राके समय सभी दिशाओंकी छींक निन्दित है। गौकी छींक घातक होती है, किंतु बालक, वृद्ध, रोगी या कफवाले मनुष्यकी छींक निष्फल होती है ॥ ७११ ॥

परस्त्रियोंका स्पर्श करनेवाला तथा ब्राह्मण और देवताके धनका अपहरण करनेवाला तथा अपने छोड़े हुए हाथी और घोड़ेको बाँध लेनेवाला, शत्रु यदि सामने आ जाय तो राजा उसे अवश्य मार डाले; परंतु स्त्रियों तथा शस्त्रहीन मनुष्योंपर कदापि हाथ न उठावे ॥ ७१२ ॥

(गृह-प्रवेश—) नये घरमें प्रथम बार प्रवेश करना हो तो उत्तरायणके शुभ मुहूर्तमें करे। पहले दिन विधिपूर्वक वास्तु-पूजा और बलि (नैवेद्य) अर्पण करके गृहमें प्रवेश करना चाहिये ॥ ७१३ ॥

(गृह-प्रवेशमें विहित मास—) माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—इन चार मासोंमें गृहप्रवेश श्रेष्ठ होता है। तथा अगहन और कार्तिक इन दो मासोंमें मध्यम होता है।

(विहित नक्षत्र—) मृगशिरा, पुष्य, रेवती, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा और स्थिर-संज्ञक (तीनों उत्तरा और रोहिणी) नक्षत्रोंमें बृहस्पति और शुक्र दोनों उदित हों तब रवि और मङ्गलको छोड़कर अन्य वारोंमें रिक्ता (४, ९, १४) तथा अमावास्या छोड़कर अन्य तिथियोंमें दिन या रात्रिके समय गृहप्रवेश शुभप्रद होता है। चन्द्रबल और ताराबलसहित उपद्रवरहित दिनके पूर्वाह्न भागमें स्थिर राशिके नवमांशयुक्त स्थिर लग्नमें जब लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) हो, शुभग्रह त्रिकोण या केन्द्रमें हों, पापग्रह ३, ६, ११ भावोंमें हों और चन्द्रमा लग्न, १२, ८, ६ इनसे भिन्न स्थानोंमें हों, तब गृह-प्रवेश करनेवाले यजमानकी जन्मराशि, जन्मलग्न या इन दोनोंसे उपचय (३, ६, १०, ११ वाँ) राशिके गृह-प्रवेश लग्नमें विद्यमान होनेपर सब प्रकारके सुख और सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। अन्यथा इससे विपरीत समयमें गृह-प्रवेश किया जाय तो शोक और निर्धनता प्राप्त होती है ॥ ७१४—७१९ ॥

(प्रवेश-विधि—) जिस नूतन गृहमें प्रवेश करना हो, उसको चित्र आदिसे सजाकर तथा

पुष्प-तोरण आदिसे अलंकृत करके वेद-ध्वनि, शान्तिपाठ, सौभाग्यवती स्त्रियोंके माङ्गलिक गीत तथा वाद्य आदिके शब्दोंके साथ सूर्यको वाम भागमें रखकर जलसे भरे हुए कलशको आगे करके उसमें प्रवेश करना चाहिये॥ ७२०॥

(वृष्टि-विचार—) वर्षा-प्रवेश (आर्द्रा नक्षत्रमें सूर्यके प्रवेश)-के समय यदि शुक्लपक्ष हो, चन्द्रमा जलचर राशिमें या लग्नसे केन्द्र (१, ४, ७, १०)-में स्थित होकर शुभग्रहसे देखे जाते हों तो अधिक वृष्टि होती है। यदि उस समय चन्द्रमापर पापग्रहकी दृष्टि हो तो दीर्घकालमें अल्पवृष्टि समझनी चाहिये। (इससे सिद्ध होता है कि यदि चन्द्रमापर पाप और शुभ दोनों ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मध्यम वृष्टि होती है।) जिस प्रकार चन्द्रमासे फल कहा गया है, उसी प्रकार उस समय शुक्रसे भी समझना चाहिये। (अर्थात् सूर्यके आर्द्रा-प्रवेशके समय चन्द्रमा और शुक्र दोनोंकी स्थिति देखकर तारतम्यसे फल समझना चाहिये)॥ ७२१-७२२॥

वर्षाकालमें आर्द्रासे स्वातीतक सूर्यके रहनेपर चन्द्रमा यदि शुक्रसे सप्तम स्थानमें अथवा शनिसे पञ्चम, नवम तथा सप्तम स्थानमें हो, उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि पड़े तो उस समय अवश्य वर्षा होती है॥ ७२३॥

यदि बुध और शुक्र समीपवर्ती (एक राशिमें स्थित) हों तो तत्काल वर्षा होती है। किंतु उन दोनों (बुध और शुक्र)-के बीचमें सूर्य हों तो वृष्टिका अभाव होता है॥ ७२४॥

यदि मघा आदि पाँच नक्षत्रोंमें शुक्र पूर्व दिशामें उदित हों और स्वातीसे तीन नक्षत्रों (स्वाती, विशाखा, अनुराधा)-में शुक्र पश्चिम दिशामें उदित हों तो निश्चय ही वर्षा होती है। इससे विपरीत हो तो वर्षा नहीं समझनी चाहिये॥ ७२५॥

यदि सूर्यके समीप (एक राशिके भीतर होकर) कोई ग्रह आगे या पीछे पड़ते हों तो वे वर्षा अवश्य करते हैं; किंतु उनकी गति वक्र न हुई हो तभी ऐसा होता है॥ ७२६॥

दक्षिण गोल (तुलासे मीनतक)-में शुक्र यदि सूर्यसे वाम भागमें पड़े तो वृष्टिकारक होता है। उदय या अस्तके समय यदि आर्द्रामें सूर्यका प्रवेश हो तो भी वर्षा होती है॥ ७२७॥

यदि सूर्यका आर्द्रा-प्रवेश सन्ध्याके समय हो तो शस्य (धान)-की वृद्धि होती है। यदि रात्रिमें हो तो मनुष्योंको सब प्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त होती है। यदि प्रवेशकालमें चन्द्रमा, गुरु, बुध एवं शुक्रसे आर्द्रा भेदित हो तो क्रमशः अल्पवृष्टि, धान्य-हानि, अनावृष्टि और धान्य-वृद्धि होती है; इसमें संशय नहीं है। यदि ये चारों चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र प्रवेश-लग्नसे केन्द्रमें पड़ते हों तो ईति (खेतीके टिड्डी आदि सब उपद्रव)-का नाश होता है॥ ७२८-७२९॥

यदि सूर्य पूर्वाषाढ़ नक्षत्रमें प्रवेशके समय मेघोंसे आच्छन्न हों तो आर्द्रासे मूलतक प्रतिदिन वर्षा होती है॥ ७३०॥

यदि रेवतीमें सूर्यके प्रवेश करते समय वर्षा हो जाय तो उससे दस नक्षत्र (रेवतीसे आश्लेषा)-तक वर्षा नहीं होती है। सिंह-प्रवेशमें लग्न यदि मङ्गलसे भिन्न (भेदित) हो, कर्क-प्रवेशमें अभिन्न हो एवं कन्या-प्रवेशमें भिन्न हो तो उत्तम वृष्टि होती है॥ ७३१ $\frac{१}{२}$॥ उत्तर भाद्रपद पूर्वधान्य, रेवती परधान्य तथा भरणी सर्वधान्य नक्षत्र है। अश्विनीको सर्वधान्योंका नाशक नक्षत्र कहा गया है। वर्षाकाल (चातुर्मास्य)-में पश्चिम उदित हुए शुक्र यदि गुरुसे सप्तम राशिमें निर्बल हों तो आर्द्रासे सात नक्षत्रतक प्रतिदिन अतिवृष्टि होती है। चन्द्रमण्डलमें परिवेष (घेरा) हो और उत्तर दिशामें बिजली

दीख पड़े या मेढकोंके शब्द सुनायी पड़ें तो निश्चय ही वर्षा होती है। पश्चिम भागमें लटका हुआ मेघ यदि आकाशके बीचमें होकर दक्षिण दिशामें जाय तो शीघ्र वर्षा होती है। बिलाव अपने नाखूनोंसे धरतीको खोदे, लोहे (तथा ताँबे और कांसी आदि)-में मल जमने लगे अथवा बहुत-से बालक मिलकर सड़कोंपर पुल बाँधें तो ये वर्षाके सूचक चिह्न हैं।

चींटीकी पङ्क्ति छिन्न-भिन्न हो जाय, आकाशमें बहुतेरे जुगुनू दीख पड़ें तथा सर्पोंका वृक्षपर चढ़ना और प्रसन्न होना देखा जाय तो ये सब दुर्वृष्टि-सूचक हैं।

उदय या अस्त-समयमें यदि सूर्य या चन्द्रमाका रंग बदला हुआ जान पड़े या उनकी कान्ति मधुके समान दीख पड़े तथा बड़े जोरकी हवा चलने लगे तो अतिवृष्टि होती है॥ ७३२—७३८$\frac{1}{2}$॥

(पृथ्वीके आधार कूर्मके अङ्ग-विभाग—) कूर्मदेवता पूर्वकी ओर मुख करके स्थित हैं, उनके नव अङ्गोंमें इस भारत भूमिके नौ विभाग करके प्रत्येक खण्डमें प्रदक्षिणक्रमसे विभिन्न मण्डलों (देशों)-को समझे। अन्तर्वेदी (मध्यभाग)-में पाञ्चालदेश स्थित है, वही कूर्मभगवान्‌का नाभिमण्डल है। मगध और लाट देश पूर्व दिशामें विद्यमान हैं, वे ही उनका मुखमण्डल हैं। स्त्री, कलिङ्ग और किरात देश भुजा हैं। अवन्ती, द्रविड और भिल्लदेश उनका दाहिना पार्श्व हैं। गौड, कौंकण, शाल्व, आन्ध्र और पौण्ड्र देश—ये सब देश दोनों अगले पैर हैं। सिन्ध, काशी, महाराष्ट्र तथा सौराष्ट्र देश पुच्छ-भाग हैं। पुलिन्द चीन, यवन और गुर्जर—ये सब देश दोनों पिछले पैर हैं। कुरु, काश्मीर, मद्र तथा मत्स्य-देश वाम पार्श्व हैं। खस (नेपाल) अङ्ग, वङ्ग, वाह्लीक और काम्बोज—ये दोनों हाथ हैं॥ ७३९—७४४॥

इन नवों अङ्गोंमें क्रमशः कृत्तिका आदि तीन-तीन नक्षत्रोंका न्यास करे। जिस अङ्गके नक्षत्रमें पापग्रह रहते हैं, उस अङ्गके देशोंमें तबतक अशुभ फल होता है और जिस अङ्गके नक्षत्रोंमें शुभग्रह रहते हैं, उस अङ्गके देशोंमें शुभ फल होते हैं॥ ७४५॥

(मूर्ति-प्रतिमा-विकार—) देवताओंकी प्रतिमा यदि नीचे गिर पड़े, जले, बार-बार रोये, गावे, पसीनेसे तर हो जाय, हँसे, अग्नि, धुआँ, तेल, शोणित, दूध या जलका वमन करे, अधोमुख हो जाय, एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चली जाय तथा इसी तरहकी अनेक अद्भुत बातें दीख पड़ें तो यह प्रतिमा-विकार कहलाता है। यह विकार अशुभ फलका सूचक होता है।

(विविध विकार—) यदि आकाशमें गन्धर्वनगर (ग्रामके समान आकार), दिनमें ताराओंका दर्शन, उल्कापतन, काष्ठ, तृण और शोणितकी वर्षा, गन्धर्वोंका दर्शन, दिग्दाह, दिशाओंमें धूम छा जाना, दिन या रात्रिमें भूकम्प होना, बिना आगके स्फुलिङ्ग (अङ्गार) दीखना, बिना लकड़ीके आगका जलना, रात्रिमें इन्द्रधनुष या परिवेष (घेरा) दीखना पर्वत या वृक्षादिके ऊपर उजला कौआ दिखायी देना तथा आगकी चिनगारियोंका प्रकट होना आदि बातें दिखायी देने लगें, गौ, हाथी और घोड़ोंके दो या तीन मस्तकवाला बच्चा पैदा हो, प्रातःकाल एक साथ ही चारों दिशाओंमें अरुणोदय-सा प्रतीत हो, गाँवमें गीदड़ोंका दिनमें बास हो, धूम-केतुओंका दर्शन होने लगे तथा रात्रिमें कौओंका और दिनमें कबूतरोंका क्रन्दन हो तो ये भयंकर उत्पात हैं। वृक्षोंमें बिना समयके फूल या फल दीख पड़ें तो उस वृक्षको काट देना चाहिये और उसकी शान्ति कर लेनी चाहिये। इस प्रकारके और भी जो बड़े-बड़े उत्पात दृष्टिगोचर होते हैं, वे स्थान (देश या ग्राम)-का नाश करनेवाले होते हैं। कितने ही उत्पात घातक होते हैं; कितने ही शत्रुओंसे भय उपस्थित करते हैं। कितने ही उत्पातोंसे भय, यश, मृत्यु, हानि, कीर्ति, सुख-दुःख और

ऐश्वर्यकी भी प्राप्ति होती है। यदि वल्मीक (दीमककी मिट्टीके ढेर)-पर शहद दीख पड़े तो धनकी हानि होती है। द्विजश्रेष्ठ! इस तरहके सभी उत्पातोंमें यत्नपूर्वक कल्पोक्त विधिसे शान्ति अवश्य कर लेनी चाहिये। नारदजी! इस प्रकार संक्षेपसे मैंने ज्यौतिषशास्त्रका वर्णन किया है। अब वेदके छहों अङ्गोंमें श्रेष्ठ छन्द:शास्त्रका परिचय देता हूँ॥ ७४६—७५८॥
(पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५६)

छन्द:शास्त्रका संक्षिप्त परिचय[1]

सनन्दनजी कहते हैं—नारद! छन्द दो प्रकारके बताये जाते हैं—वैदिक[2] और लौकिक[3]। मात्रा और वर्णके भेदसे वे लौकिक या वैदिक छन्द भी पुन: दो-दो प्रकारके हो जाते हैं (मात्रिक[4] छन्द और वर्णिक[5] छन्द)॥ १॥ छन्द:शास्त्रके विद्वानोंने मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण और नगण तथा गुरु एवं लघु—इन्हींको छन्दोंकी सिद्धिमें कारण बताया है॥ २॥ जिसमें सभी अर्थात् तीनों अक्षर गुरु हों उसे मगण (ऽऽऽ) कहा गया है। जिसका आदि अक्षर लघु (और शेष दो अक्षर गुरु) हो, वह यगण (।ऽऽ) माना गया है। जिसका मध्यवर्ती अक्षर लघु हो, वह रगण (ऽ।ऽ) और जिसका अन्तिम अक्षर गुरु हो, वह सगण (॥ऽ) है॥ ३॥ जिसमें अन्तिम अक्षर लघु हो, वह तगण (ऽऽ।) कहा गया है, जहाँ मध्य गुरु हो, वह जगण (।ऽ।) और

१. शास्त्रकारोंने द्विजातियोंके लिये छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके अध्ययनका आदेश दिया है। उन्हीं अङ्गोंमेंसे छन्द भी एक अङ्ग है। इसे वेदका चरण माना गया है—'छन्दः पादौ तु वेदस्य।' (पा० शि० ४१) 'अनुष्टुभा यजति, बृहत्या गायति, गायत्र्या स्तौति।' (पिं० सूत्रवृत्ति अध्याय १) (अनुष्टुप्से यजन करे, बृहती छन्दद्वारा गान करे, गायत्री छन्दसे स्तुति करे) इत्यादि विधियोंका श्रवण होनेसे छन्दका ज्ञान परम आवश्यक सिद्ध होता है। छन्द न जाननेसे प्रत्यवाय भी होता है; जैसा कि छान्दोग ब्राह्मणका वचन है—'यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतविनियोगेन ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्यापयति वा स स्थाणुं वर्च्छति गर्तं वा पद्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति यातयामान्यस्य छन्दांसि भवन्ति।' (पिं० सूत्रवृत्ति अध्याय १) (जो ऋषि, छन्द, देवता तथा विनियोगको जाने बिना ब्राह्मणमन्त्रसे यज्ञ कराता और शिष्योंको पढ़ाता है, वह ठूँठे काठके समान हो जाता है, नरकमें गिरता है, वेदोक्त आयुका पूरा उपभोग न करके बीचमें ही मृत्युको प्राप्त होता है अथवा महान् पापका भागी होता है। उसके किये हुए समस्त वेदपाठ यातयाम (प्रभाव-शून्य व्यर्थ) हो जाते हैं); इसलिये छन्दका ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये। इसीके लिये इस छन्द:शास्त्रका आरम्भ हुआ है।

२. वेदमन्त्रोंमें जो गायत्री, अनुष्टुप्, बृहती और त्रिष्टुप् आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं, उनको वैदिक छन्द कहते हैं। यथा—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्।

—यह गायत्री छन्द है।

३. इतिहास, पुराण, काव्य आदिके पद्योंमें प्रयुक्त जो छन्द हैं, वे लौकिक कहे गये हैं। यथा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:॥

—यह 'श्लोक' अनुष्टुप् छन्द है।

४. परिगणित मात्राओंसे पूर्ण होनेवाले छन्दोंको 'मात्रिक' कहते हैं। जैसे—आर्या छन्दके प्रथम और तृतीय पाद बारह मात्राओंसे, द्वितीय पाद अठारह मात्राओंसे और चतुर्थ पाद पन्द्रह मात्राओंसे पूर्ण होते हैं। आर्याके पूर्वार्ध सदृश उत्तरार्ध भी हो तो 'गीति' और उत्तरार्ध-सदृश पूर्वार्ध हो तो 'उपगीति' छन्द होते हैं।

आर्याका उदाहरण—

वृन्दावने सलीलं वल्गुद्रुमकाण्डनिहिततनुयष्टि:। स्मेरमुखार्पितवेणु: कृष्णो यदि मनसि क: स्वर्ग:॥

५. परिगणित अक्षरोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दोंको 'वर्णिक' कहते हैं। यथा—

जयन्ति गोविन्दमुखारविन्दे मरन्दसान्द्राधरमन्दहासा:। चित्ते चिदानन्दमयं तमोघ्नममन्दमिन्दुद्रवमुद्गिरन्त:॥

—यह इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्राके मेलसे बना हुआ उपजाति नामक छन्द है।